भारत रत्न

भारत रत्न

बलबीर सक्सेना

प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली-110030

अम्मा को

जिनसे मैंने हिन्दी पढना-लिखना सीखा है

आमुख

महापुरुषो के जीवन दशन समाज एव राष्ट के प्रति समर्पित होने की प्रेरणा दत हैं। जिस देश मे अपने महापुरुषो का स्मरण नही होता और जो अपनी समृद्धि प्राचीन परम्परा के अग्रदूतो की उपक्षा करता है वह राष्ट्र अवनत हो जाता है, पराभव को प्राप्त हो जाता है।

अत हमारे दश की राम, कृष्ण, महावीर बुद्ध, अशोक, शिवा, प्रताप, रणजीत सिंह, दयानन्द तिलक, गोखले, गाधी, टैगोर की उज्ज्वल परम्परा पर चलने वाले भारत रत्नो की जीवनियो का अध्ययन युवा पीढी के लिए प्रेरणा का स्रोत होगा।

पिछली शताब्दी म हमारे दश ने अनेक महापुरुषो को जन्म दिया। ससार के अन्य देशो म भी महापुरुष जन्मे। जब भारत स्वतन्त्र हुआ और उसके बाद अग्रेजो की रायसाहब खासाहब, रायबहादुर, सर आदि उपाधियो को अस्वीकार किया गया तो अपने महापुरुषो को सम्मानित करने के लिए भारत सरकार न पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्मविभूषण तथा भारत रत्न अलकरणो का प्रारम्भ किया। इन सम्मानपूण उपाधियो मे सर्वोत्तम है—भारत रत्न'।

अब तक 1954 से लगाकर जब कि प्रथम बार यह अलकरण प्रारम्भ हुए 21 महान् जनो को 'भारत रत्न' से विभूषित किया जा चुका है। ये हैं—सवश्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, डा० सवपल्ली राधाकृष्णन, डॉ० चन्द्रशेखर वेंकट रमण, प० जवाहरलाल नेहरू डॉ० भगवान दास, डॉ० एम० विश्वेश्वरैया, प० गोविंद वल्लभ पत, डॉ० घोंधू केशव कर्वे, डॉ० विधानच द्र राय, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद,

डा० जाकिर हुसैन, डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे, लाल बहादुर शास्त्री, श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री वराह गिरि वेंकट गिरि, कुमारस्वामी कामराज, मदर टैरेसा, आचार्य विनोबा भावे, अब्दुल गफ्फार खां और एम० जी० रामचंद्रन।

श्री बलबीर सक्सेना ने इन सभी महापुरुषों की जीवनियां बड़े श्रम एवं यत्न के साथ लिखी हैं। लेखक ने दिल्ली, बम्बई, पुणे, कलकत्ता तथा हैदराबाद के अनेक ग्रन्थालयों से सामग्री एकत्र की है। इन सभी विभूतियों की जीवनियां इस पुस्तक में संग्रहीत हैं।

मुझे आशा एवं विश्वास है कि यह पुस्तक युवक युवतियों में ऐसी प्रेरणा देगी जो राष्ट्र की सेवा में रत हो सकेंगे। शिक्षा-संस्थाओं एवं विद्यार्थियों में यह अवश्य समादृत होगी।

मैं श्री सक्सेना को इस साहित्य सृजन के लिए बधाई देता हूं।

—अक्षयकुमार जैन

सी 47, गुलमोहर पार्क
नई दिल्ली 110049

भूमिका

टी० एस० एलियट की कविता 'वेस्टलैंड' का काट छाट करते समय आलोचक विद्वान पौण्ड ने उनसे कहा था "वह काम करने से क्या लाभ जिसे दूसरे हमसे ज्यादा अच्छी तरह कर रहे है, कोई और बात करो"

शायद इसी बात को ध्यान मे रखते हुए कुछ दिनो लिखने अथवा लिखकर प्रकाशित करने से मैं सकोच करता रहा। मेरा पहला उपन्यास 'गगन की गुफाए' इतना पहले (1959) प्रकाशित हुआ कि वह वास्तव मे समय के गगन की गुफाओ मे विलीन हो गया और अब उसके सम्बन्ध मे कुछ भी लिखना अधेरे मे कुछ टटोलना जैसा होगा।

पिछले कई वर्षों से यही विचार मेरे मन प्राण पर छाया रहा कि यदि कथा उपन्यास की अपेक्षा जीवनिया लिखी जाए तो मैं अपने पाठको के प्रति अधिक न्याय कर सकूगा।

मुझे याद पडता है कि जब मैं नवीं दसवीं कक्षा मे था तब हमारे अग्रेजी पाठ्यक्रम मे एक पुस्तक थी—'नोबिल लाइव्ज'। उसमे उत्साही एव रोमाचपूर्ण काय करने वाले प्राय सभी पश्चिमी साहसी महापुरुषो की जीवनिया थी। इटली के महान क्रान्तिकारी गैरीबाल्डी, दक्षिणी ध्रुव के अन्वेषणकर्ता कप्तान कुक दक्षिण अफ्रीका मे गए समाजसेवी डेविड लैविंगस्टन आदि आज तक मुझे याद है। वे सभी रोमाचपूर्ण अनुकरणीय और शिक्षाप्रद जीवनिया थी जिन्हे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने हम भारतीय विद्यार्थियो के पाठ्यक्रम मे इसी उद्देश्य से दिया था कि उन्हे पढकर हममे भी वैसा ही साहस और उत्साह जागत हो।

परोक्ष रूप से वही 'नोबिल लाइव्ज' मेरे लिए 'भारत रत्न' लिखने की प्रेरणा बनी। मुझे आशा है कि ये भारत रत्न स्वतन्त्र भारत के विद्यार्थियों को अवश्य ही अनुप्राणित करेंगे। साथ ही सरकार से अनुरोध है कि इस पुस्तक को लाखों छात्र छात्राओं को पढ़कर सुलभ बनाए क्योंकि इसे लिखते समय मेरे सम्मुख मेरे देश के वे ही लाखों छात्र छात्राएं थीं जो इससे लाभान्वित होंगी। आज का युवा कल का राष्ट्र निर्माता है। यदि उन्हें मानवीय मूल्यों के संवर्धन में सहयोगी बनना है तो मेरे विचार से प्रत्येक नागरिक के साथ सम्पूर्ण नागरिकों का सर्वांगीण उत्कर्ष ही लोकतन्त्र की चरम उपलब्धियां है। मुझे विश्वास है कि 'भारत रत्न' से इसी महान उद्देश्य की पूर्ति होगी।

इस सम्पूर्ण प्रयास के पीछे प्रेरणा के रूप में रहे श्री बलदेव सहाय जिन्होंने पग पग पर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। मैं उनका कितना ऋणी हूं बता नहीं सकता। इनके अतिरिक्त मुझे अपने सहयोगियों, अधिकारियों और मित्रों से भी हर प्रकार का सहयोग मिला है। मैं उनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं। फिर भी श्री अनिल भारती और प्रवीण प्रकाशन के गुप्ताजी की विशेष कृपा मुझ पर रही जिसके कारण प्रस्तुत पुस्तक पाठकों तक पहुंच पाई। मैं उनके प्रति भी अपनी विशेष कृतज्ञता व्यक्त करता हूं।

विख्यात पत्रकार और नवभारत टाइम्स के भूतपूर्व सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन ने इस पुस्तक को ओजपूर्ण आमुख से अलंकृत किया है। उनके प्रति मैं अत्यन्त आभारी हूं।

प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री एकत्रित करने में मुझे भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के पुस्तकालय दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी लाजपत भवन पुस्तकालय पुणे व बम्बई विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों भारतीय उर्वरक निगम की लायब्रेरी इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस बंगलौर तथा हिन्दुस्तान फर्टिलाइजर कार्पोरेशन के जन सम्पर्क एवं प्रशासन विभागों के कर्मचारियों व अधिकारियों एक्सप्रेस पत्र समूह के सम्पादन विभाग से अपार सहयोग प्राप्त हुआ है। मैं उन सभी सुहृद मित्रों एवं सहयोगियों का आभारी हूं। इस पुस्तक में उपयोग किए गए चित्र मुझ

सूचना एव प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्ली स्थित पश्चिम बगाल के जन-सम्पर्क अधिकारी श्री सफदर हाशमी महाराष्ट्र के नई दिल्ली स्थित परिचय केन्द्र के जन-सम्पर्क अधिकारी श्री एस० जी० जोशी तथा उत्तर प्रदेश सरकार क जन-सम्पर्क निदेशक श्री जी० पी० शुक्ल की कृपा स प्राप्त हो पाए हैं। मैं उन सभी महानुभावो के प्रति कृतज्ञ हू।

एम० एस० एसोसिएट्स के मेरे मित्र सवश्री मण्डल एव दत्ता ने आवरण पृष्ठ बनाने की पेशकश कर मुझे अभिभूत कर दिया। उनक इस अपनत्व के लिए मैं अत्यन्त आभारी हू।

'भारत रत्न' अपने पाठको के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं अपना राष्ट्रीय दायित्व निभा रहा हू। यदि इसे पढकर मेरे देश की युवा पीढी अपने देश के स्वतन्त्रता सनानियो, मनीषियो, राष्ट्र निर्माताओ एव मा भारती की रत्न सतानो से कुछ भी शिक्षा ग्रहण कर सके तो मैं समझूगा कि मेरा यह अनक वर्षों का प्रयास सफल हुआ।

—बलबीर सक्सेना

सी 49, जगपुरा विस्तार
नई दिल्ली 110014

क्रम

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

—1954

धारा के विपरीत बहना अथवा तैरना कितने साहस और धय का काम होता है, वही जानते है जो यह काम करत हो या कर चुके हा परन्तु उनको क्या कहा जाए जो अपने अटल विश्वास और चट्टानी इरादा पर हिमालय के समान सदा ही अडिग डटे रहत हैं, चाह कितना ही भयानक तूफान क्या न आए। इसी प्रकार क अजेय प्रकृति के धनी थे 20वी सदी के चाणक्य चक्रवर्ती राजगोपालाचाम जिन्होने अपने सिद्धान्त और विश्वास के सम्मुख समस्त दश की विचारधारा का मुकाबला किया और बाद मे पता चला कि वे कितने सही थे।

स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानिया म राजाजी का विशिष्ट स्थान है। कभी-कभी तो उन्होने अपन विचारो के लिए गाधी जी का भी विरोध किया और काग्रेस स अलग तक हा गए। सितम्बर, 39 म द्वितीय महायुद्ध छिड गया था। अग्रेजो ने भारत को भी उस युद्ध म बिना उसकी राय जान शामिल कर लिया। काग्रेस को यह मनमानी पसन्द नही आई। विराध के रूप म उसने मन्त्रिमण्डलो से त्यागपत्र दे दिया। रामगढ काग्रेस म युद्ध के खिलाफ प्रस्ताव भी पारित किया गया और सत्याग्रह करन का फैसला किया गया। सबसे पहले सत्याग्रही के रूप म विनोबा और दूसरे जवाहरलाल गिरफ्तार हुए। सभी नताओ के साथ राजाजी भी बन्द कर दिए गए। परन्तु इस पर भी राजाजी का अन्तर्मन उक्त प्रस्ताव से सहमत न हुआ। उनकी राय म युद्ध मे तानाशाही शक्तिया के खिलाफ भारत को अग्रेजो का

साथ दना चाहिए था। 1942 में कांग्रेस के 'भारत छोडो' प्रस्ताव क प्रति भी उनका मन नही माना। इस सकट के समय का लाभ लेने के व खिलाफ थे और इसी कारण व बम्बई के उस एतिहासिक अधिवशन म शामिल नही हुए। इसी प्रकार उन्होने कांग्रेस और मुस्लिम लीग मे समझौता करान की भी कोशिश की। उनके मतानुसार सुरक्षा, विदशी सम्बन्ध और यातायात केन्द्र के अधीन रहे और जहा मुस्लिम आबादी ज्यादा हो वहा लीग मन्त्रिमण्डल बना ले। यही राजाजी फार्मूला के नाम स प्रसिद्ध हुआ। इसमें शत यह थी कि दश की स्वतन्त्रता के मामले मे लीग कांग्रेस का समयन कर। शिमला-वार्ता इसी फार्मूले के अन्तगत हुई जो सफल नही हो पाई।

मनसुहाती बात कहन वाले तो बहुत मिल जाते हैं पर कटु सत्य वक्ता और श्रोता दाना के लिए कठिन होता है। राजाजी का सत्य कभी-कभी इतना कडवा होता था कि उसे गले के नीचे उतारने के लिए गाधी जी तक के लिए भी कठिन हा जाता था। पाकिस्तान के प्रश्न पर भी राजाजी न पूरे दश के विचारो के विरुद्ध कहा कि उस मान लेना चाहिए, और स्पष्ट है कि पाकिस्तान मान लिया गया। पाकिस्तान के सनिक तानाशाह जनरल अय्यूब खा न उनकी 93वी वषगाठ पर अपना सन्देश भेजते हुए कहा था, 'अगर राजाजी की बात मानी जाती तो भारत और पाकिस्तान मे हालत इतनी बुरी न रहती।" इसी सन्दभ म राजाजी न स्वय 'स्वराज्य' मे लिखा था, 'शिखर वाता शीघ्र हो जब तक शिमला समझौते पर पूरी तरह से अमल नही किया जाता भारत पाकिस्तान दानो देशो के सम्मुख आर्थिक व राजनीतिक विनाश की चुनौती बना रहेगा " सम्भवत यह लेख उनका अन्तिम ही था। काश्मीर के मामले म भी राजाजी धारा के विपरीत बहे।

ऐसे विवादास्पद नेता का जन्म 8 दिसम्बर 1878 मे मद्रास प्रान्त (अब तमिलनाडु) मे सेलम जिले के थोरापल्ली गाव के एक उच्च वैष्णव ब्राह्मण परिवार म हुआ। यह जमाना वह था जब समस्त भारत मे और विशेष रूप स दक्षिण भारत म छुआछूत का बडा बोलबाला था। वहा तो किसी किसी सडक पर उनका निकलना तक मना था। सख्त आज्ञा थी कि सडको पर सफाई वगरा सुबह होने से पहले हो जाए ताकि सफाई करने

वाले महतरो (हरिजन शब्द तो बाद में प्रचलित हुआ) की छाया भी ब्राह्मणों तथा अन्य अभिजात लोगों पर न पड़े। ऐसे समय में राजाजी जैसे नक्षत्र का उदय होना अत्यन्त आवश्यक था। उनके पिता श्री नल्लन चक्रवर्ती सेलम में ही मुंसिफ थे और अपनी न्यायप्रियता के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। इसके अतिरिक्त व संस्कृति के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। श्री नल्लन चक्रवर्ती ने अपने सुपुत्र को प्रारम्भिक शिक्षा गांव में दिलाने के पश्चात् बंगलौर भेजा जहां राजाजी ने इण्टरमीडिएट पास किया। उसके पश्चात राजाजी ने मद्रास प्रेसीडेंसी कॉलेज से बी० ए० और बी० एल० की परीक्षाए पास की। राजाजी ने, जब वकालत पढ़ रहे थे, स्वामी विवेकानन्द को सुना और उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। यही प्रभाव उन पर जीवन भर छाया रहा।

व्यक्तिगत जीवन में राजाजी एक शुद्ध, सात्विक और धर्मपरायण व्यक्ति थे परन्तु ब्राह्मण होते हुए भी उनमें धर्म का पाखण्ड और संकुचित दृष्टिकोण बिल्कुल नहीं था। उनकी दिनचर्या किसी भी संन्यासी से कम नहीं रही। प्रातः नियत समय पर उठना पूजा-पाठ कर नित लिखने-पढ़ने बैठ जाना। शायद इसी कारण 94 वर्ष की लम्बी आयु उन्हें मिली और जीवन भर वे पूरी तरह शारीरिक और बौद्धिक दृष्टि से स्वस्थ रहे। यह सौभाग्य बिरलों को ही मिलता है।

सरस्वती के इस वरद पुत्र ने अपनी रचनाओं से मां शारदे का भण्डार खूब भरा है। राजनैतिक प्रश्नों के अतिरिक्त धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों पर भी राजाजी ने पर्याप्त लिखा। गीता, रामायण और महाभारत के अनुवाद उन्होंने अपने ढंग से किए। मौलिक साहित्य भी देश को दिया। छोटी छोटी कहानियां लिखने में तो राजाजी की भारतीय साहित्य में मिसाल ही नहीं। मोपासां और खलील जिब्रान की तरह जीवन के गहन से गहन तत्त्व पर बड़ी सरल भाषा में उन्होंने लिखा। साहित्य अकादमी ने उन्हें उनकी तमिल पुस्तक 'चक्रवर्ती थिरुमगम' पर सम्मानित भी किया है। एक बार जब स्कूलों में धर्मशिक्षा को अनिवार्य करने की बात चली तब राजाजी द्वारा रचित धार्मिक साहित्य ही मात्र विकल्प आया था पर पता नहीं वह योजना कागज तक ही कैसे सीमित रह गई। किन्तु इतना तो

विश्वास है कि आज नहीं तो कल राजाजी के साहित्य का राष्ट्रीय सम्मान अवश्य दिया जाएगा। उन्होंने कुछ दिनों तक गांधी जी के 'यंग इण्डिया' का सम्पादन भी किया।

सेलम में आकर राजाजी ने स्वतन्त्र रूप से वकालत शुरू कर दी जो उस समय के रिवाज के बिल्कुल विपरीत था। उस समय किसी भी नए वकील को अपने से वरिष्ठ वकील के साथ कुछ समय काम करना पड़ता था परन्तु राजाजी ने यह परम्परा तोड़ दी और अकेले ही मुकदमे लेने शुरू कर दिए। और सभी पुराने वकीलों की आशा के विपरीत उनकी वकालत चमक भी उठी। नाम और पैसा दोनों उनके गुलाम बन गए। साथ ही राजाजी ने अदालत के बाहर सामाजिक जीवन में भी दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी।

दूसरा विस्फोट तब हुआ जब राजाजी ने धार्मिक पाखण्ड और छुआछूत के विरुद्ध आवाज उठाई। सारा ब्राह्मण समाज उनके इस विद्रोहपूर्ण विस्फोट से चकित ही नहीं हुआ बल्कि उनसे रुष्ट भी हो गया। पहले तो उन्हें समझाया गया कि वे अपनी हरकतों से बाज आएं परन्तु राजाजी ने जो ठान ली वह तो पत्थर की लकीर थी। फलस्वरूप उनका समाज में बहिष्कार कर दिया गया। यहां तक कि जब उनके पिताश्री का देहान्त हुआ तो कोई भी उनके दाह संस्कार में शामिल नहीं हुआ। परन्तु राजाजी अटल चट्टान की तरह अडिग रहे और उन्होंने इस बहिष्कार की जरा भी चिन्ता नहीं की बल्कि और भी दृढ़ हो गए और अपनी समाज सेवी प्रतिभा के कारण सेलम नगरपालिका के अध्यक्ष चुन लिये गए। फिर तो उन्हें अपनी योजनाएं कार्यान्वित करने का खुला अवसर मिल गया। दो वर्षों के अपने कार्यकाल में ही उन्होंने अछूत सम्बन्धी कई सुधार कर डाले। सड़कों पर अछूतों को निकलने की आज्ञा मिल गई। नगरपालिका के नलों से उन्हें पानी मिलने लगा और मन्दिरों के आसपास भी उनका निकलना बैठना कानूनी तौर से जारी हो गया। इस कायाकल्प से सेलम के ब्राह्मणों में जितना असन्तोष उभरा उससे ज्यादा उत्साह दिखाई दिया उनमें जो बरसों से दबाया जा रहा था जिनका दिन के उजाले में निकलना तक हराम था और जिनकी छाया से भी परहेज किया जाता था।

काग्रेस म वह पहले ही (1904) मे शामिल हो चुके थे। सूरत अधिवेशन म उन्होने लोकमान्य तिलक का समथन किया था। बाद म श्रीमती एनी बेसेंट की होमरूल लीग मे भी सक्रियता से काम किया। 'हिन्दू' के सम्पादक स्वर्गीय श्री कस्तूरीरगम आयगर के आग्रह से राजाजी मद्रास चले गय और वहीं हाईकोट मे वकालत शुरू कर दी। वही 1919 म उनकी भेंट महात्मा गाधी से हुई। गाधीजी न उन दिनो असहयोग आन्दोलन का नया विचार देश के समक्ष रखा था। उसी का समझाने के लिए गाधीजी को श्री आयगर के द्वारा उन्होने मद्रास आमन्त्रित किया था। मजे की बात यह कि दो दिन तक राजाजी के यहा ही ठहरने के पश्चात गाधीजी का मालूम हो पाया कि वह जिनके यहा ठहरे थे उनके आग्रह से ही आयगर ने गाधीजी को मद्रास आमन्त्रित किया था। दो दिनो का परिचय धीरे-धीरे घनिष्ठता मे बदल गया और गाधीजी न ही श्री राजगोपालाचाय को 'राजाजी' के नाम से पुकारना शुरू किया। 'रॉलेट एक्ट' के विरुद्ध देश-व्यापी हडताल के साथ साथ उपवास और प्राथनाओ की योजना राजाजी की थी जो बाद मे बडी सफल सिद्ध हुई। 1920 मे नागपुर अधिवेशन म असहयोग का प्रस्ताव सवसम्मति से स्वीकार कर लिया गया और उसी आह्वान पर देशबन्धु चितरजन दास पडित मोतीलाल नेहरू आदि अनेक प्रसिद्ध वकील तथा अन्य सरकारी कार्मिक अपना अपना पेशा छोडकर देश की लडाई मे आ मिले। राजाजी इस पक्ति म सबस आग थे। अगले वप 1921 म राजाजी काग्रेस के महामन्त्री बनाए गये। राजाजी ने असहयोग आन्दोलन म देश के सभी नेताओ के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर भाग लिया और पहली बार जेलयात्रा की।

गया अधिवेशन बडा ऐतिहासिक और स्मरणीय रहा। देशबन्धु चितरजन दास की अध्यक्षता म आयोजित इस अधिवेशन म सबसे बडा प्रश्न था—सत्याग्रह और असहयोग के कायक्रम की अपेक्षा कौंसिलो और विधान सभाओ म जाकर सरकार का खुला मुकाबला क्यो न किया जाय। अध्यक्ष चितरजनदास स्वय इसके पक्ष मे थे साथ म सहमत थे पण्डित मोतीलाल नेहरू और सत्यमूर्ति आदि। परन्तु राजाजी ने डटकर प्रस्ताव का विरोध किया। प्रस्ताव मत के लिए प्रस्तुत किया गया। बहुत ज्यादा

मता स राजाजी विजयी हुए और राजाजी का अखिल भारतीय नताओ म गिना जाने लगा। उन्ह काग्रेस की कायकारिणी म शामिल कर लिया गया।

परन्तु काकीनाडा काग्रेस म जब कौंसिलो मे जान का प्रश्न फिर उठा तब उनका मत पिछड गया और काग्रस ने कासिलो म अपन प्रतिनिधि भेजना स्वीकार कर लिया। फिर भी राजाजी अडिग रहे। काग्रस क कौसिलो म जाने और शक्तिशाली होन पर भी उन्ह यह सब जचा नहीं। वह तिरुचेनगोडा नामक गांव म चले गय और अपना काम अलग करने लग गए। वहा उन्होने गाधी आश्रम की स्थापना की और हरिजनोद्धार, नशा बन्दी और खादी का काम शुरू कर दिया। आसपास के इलाको म घूम घूमकर उपयुक्त सामाजिक कायक्रम का प्रचार किया और काम चलाया। गाधीजी द्वारा स्थापित अखिल भारतीय चरखा सघ का भी काम किया और प्राहिबिशन लीग ऑफ इण्डिया के मत्री का काम भी करत रहे।

उनका कहना था, सरकारी कोष भरने के लिए यदि शराब की खुली बिक्री और लाटरी की आमदनी पर रोक नही लगाई गई तो क्या कल को उससे भी निम्न कोई और तरीके सरकार की आय के लिए स्वीकार किए जा सकत हैं? शराब से होने वाली आय का कमी पूरी करने के लिए ही राजाजी के सुझाव पर बिक्री कर सबसे पहले मद्रास मे लगा था जो धीरे धीरे सारे भारत म फलकर नियमित आय का साधन बन गया।

नमक सत्याग्रह के दिनो म जब महात्मा गाधी ने साबरमती आश्रम स 20 दिन पैदल चलकर दाण्डी यात्रा की और नमक बनाकर नमक कानून तोडा तब राजाजी ने तिरुचिरापल्ली स 15 दिन पैदल चलकर वेदारण्यम म समुद्र तट पर नमक बनाया और गिरफ्तार हुए।

जमाना गोलमज कान्फ्रेंस के बाद का था। अग्रज सरकार चुनाव क लिए हरिजनो को पथक अधिकार दने का इरादा कर रही थी। उसके विरोध म गाधीजी ने यरवदा जल म आमरण अनशन शुरू कर दिया था और ब्रिटिश सरकार ने झुककर इरादा छोड दिया था। इस नाजुक समय पर राजाजी न हरिजनो के नेता डॉक्टर अम्बेडकर स गाधी जी का समझौता कराया।

राजाजी का सारा सामाजिक काय अधूरा ही रह जाता है यदि यह न बताया जाए कि उन्होन दक्षिण जैस अहिन्दी प्रदश म हिन्दी का प्रचार भी

किया और दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की नींव भी डाली। राजाजी जब मद्रास प्रांत के मुख्यमन्त्री बने तब उन्होंने ही सब स्कूलों में हिंदी को अनिवार्य बना दिया। उन्हीं राजाजी ने स्वतन्त्रता के पश्चात् हिंदी का कड़ा विरोध किया केवल इसलिए कि उन्हें आभास हुआ कि हिंदी अहिंदी-भाषियों पर थोपी जा रही है।

1946 में जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार बनी तब राजाजी को भी आमन्त्रित किया गया और उन्हें उद्योग व वाणिज्य मन्त्री बना दिया गया। तत्पश्चात शिक्षा व वित्त भी उन्हें दिए गये।

और स्वराज्य मिल जाने पर भारत का सर्वप्रथम भारतीय गवर्नर जनरल के पद पर उन्हें सुशोभित किया गया। इससे पूर्व वे बंगाल के गवर्नर भी रह चुके थे जो उन दिनों साम्प्रदायिक दंगों के कारण अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण और नाजुक क्षेत्र माना जाता था। वहां राजाजी ने बड़ी योग्यता से उसे सम्हाला। गवर्नर जनरल का पद देते हुए उनके भूतपूर्व गवर्नर जनरल लार्ड माउंटबेटन ने कहा था, "मेरे उत्तराधिकारी नए गवर्नर जनरल एक महान राजनीतिज्ञ हैं और आकर्षक व्यक्तित्व के मालिक हैं व भारत के प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल होने के बिलकुल उपयुक्त हैं।"

दो वर्षों के पश्चात् उन्होंने अवकाश प्राप्त कर लिया परन्तु यह अवकाश केवल गवर्नर जनरल के पद से ही था। केवल सात महीनों में ही उनकी कमी महसूस होने लगी और प्रधानमन्त्री नेहरू ने उन्हें फिर अपने मन्त्रिमण्डल में आमन्त्रित कर लिया और दिसम्बर 50 में सरदार पटेल के निधन के पश्चात् तो उन्हें गृह मन्त्रालय सौंप दिया गया। यहां भी उनकी अडिग प्रकृति आड़े आई और कुछ मतभेद हो जाने के कारण लगभग एक वर्ष (नवम्बर 51) में ही उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया।

कहते हैं 'हातिम' की विशेषता यह थी कि वह नेकी करता था और नदी में डाल देता था। राजाजी की आदत भी कुछ ऐसी ही थी। वह कभी भी ऐसे मौके पर पीछे नहीं रहे सिर्फ उन्हें यह जंच जाना चाहिए था कि काम उनके मतानुसार सही है। 1952 के आम चुनाव के समय मद्रास राज्य में कांग्रेस की हालत बहुत ही नाजुक थी। ऐसे समय में कांग्रेस की डूबती नाव को सम्हालने के लिए राजाजी को पुकारा गया और राजाजी

तेज दौड़ पड़े जैसे भगवान विष्णु गज की आवाज सुनकर गरुड़ छोड़ नंगे पाँव दौड़ पड़े थे। राजाजी ने कांग्रेस को बचा लिया और वहाँ उसे दृढ़ बना कर दो वर्ष बाद फिर हट जाना मुनासिब समझा।

और उस समय, 76 वर्ष की आयु में, वह हिमालय की भाँति उठकर फिर खड़े हो गये। स्वतन्त्र पार्टी बनाई, लाइसेंस-कोटा परमिट के राज में पनप रहे भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाई, और 1967 के आम चुनाव में लोक सभा में एक प्रमुख विरोधी-दल के रूप में स्वतन्त्र पार्टी को प्रस्तुत कर दिया। साथ ही निरन्तर 'स्वराज्य' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक के माध्यम से 'डियर रीडर' के अन्तर्गत अपने देशवासियों से सम्पर्क बनाये रहे जो सम्पर्क उनके जीवन के अन्तिम साँस तक बना रहा।

25 दिसम्बर 1972[1] के दिन भगवान ईसा की जन्म तिथि के पुण्य अवसर पर राजाजी सबका दर्द अपने आप में आत्मसात् किये हुए 94 वर्ष की आयु में सदा सदा के लिए हमसे बिछुड़ गये। सेलम जिले के थोरापल्ली गाँव के मुन्सिफ श्री नल्लन चक्रवर्ती के घर का यह चिराग बुझकर भी सारे विश्व को आलोकित कर गया। किन्तु आज भी और आने वाली पीढ़ियाँ भी उनके निर्भीक, स्वतन्त्र, प्रगतिशील और अडिग विचारों वाले व्यक्तित्व से प्रभावित एवं लाभान्वित होती रहेंगी। राष्ट्र की महत्वपूर्ण सेवा को देखते हुए राष्ट्र ने उन्हें भारत रत्न की उपाधि से सम्मानित कर गौरव का अनुभव किया (श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने एक लेख में लिखा था—"व्यक्तिगत जीवन में राजाजी शराब मांस और सिगरेट आदि से अलग रहे उनकी सदा यही इच्छा थी कि देशवासी विशेषकर युवा पीढ़ी इन बुरी आदतों से दूर ही रहें।"

1 गोपालदास के अनुसार 24 दिसम्बर 1972 धर्मयुग 28 11 82 से 4 12 82 तक के अंक।

सर्वपल्ली राधाकृष्णन—1954
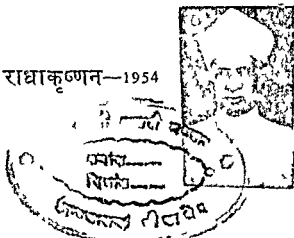
"जब तक दार्शनिक राजा न हो और संसार के राजाओ तथा राजकुमारो म दर्शन की भावना और शक्ति न आए और उन्हे जन साधारण के साथ रहने का अवसर न मिले तब तक मानव वश से विषमताए एव बुराइया नही जा सकती " यह था अमर दार्शनिक प्लेटो का सपना जिसे साकार किया भारत के महान् दार्शनिक विचारक राजर्षि डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने जब उन्होंने भारत के राष्ट्रपति का सर्वोच्च पद ग्रहण किया।

डाक्टर राधाकृष्णन का जन्म मद्रास से 65 किलामीटर दूर स्थित तिरुत्तणी ग्राम म 5 सितम्बर, 1888 को एक साधारण परिवार म हुआ था। आरम्भ की शिक्षा सयोगवश तिरुत्तणी और तिरुपति के ईसाई मिशनरी पाठशालाओ म हुई और धर्म का बीज तभी से उनके तरुण मन मे पड़ता चला गया। कौन जानता था कि इन तीर्थों मे पला पढ़ा बालक एक दिन ससार का महान दार्शनिक और वेदान्त का गूढ विचारक बन जायगा और हिन्दू धर्म की वास्तविक आत्मा के प्रकाश से समस्त ससार को प्रदीप्त कर देगा।

21 वर्ष की अल्पायु म ही राधाकृष्णन को मद्रास प्रेसीडेंसी कॉलेज के दर्शन विभाग म प्राध्यापक नियुक्त कर दिया गया। तब से भारत के उपराष्ट्रपति का पद सभालने तक डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन निरन्तर अध्यापन कार्य करते रहे और भारतीय दर्शन तथा हिन्दू धर्म पढ़ाते रहे।

इसी कारण भारत म 5 सितम्बर अध्यापक दिवस के रूप म मनाया जाता है जो उनका जन्म दिन है।

1918 म मसूर विश्वविद्यालय ने राधाकृष्णन जी को दशन के प्रोफसर के पद पर आमन्त्रित कर लिया। इन्ही दिनो आपने एक पुस्तक लिखी— 'दि रन ऑफ रिलीजन इन काण्टेम्पारेरी फिलासफी' (समकालीन दशन म धम का आधिपत्य) इस पुस्तक से भारत म ही नही अपितु विदेशो म भी डॉक्टर साहब आकषण के केन्द्र बन गए।

तत्पश्चात् कलकत्ता विश्वविद्यालय म बादशाह जाज पचम के नाम स मानसिक तथा आचार विज्ञान की पीठिका पर डॉक्टर राधाकृष्णन को बुला लिया गया। यह पीठिका भारत म दशन साहित्य के सम्बन्ध म अत्यन्त महत्वपूण मानी जाती थी।

डॉक्टर राधाकृष्णन के लेख ससार की सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओ म सम्मान सहित प्रकाशित किए जाते थे। हिब्बट जनरल' म आपके प्रकाशित लेखो से उसके सम्पादक श्री एल० पी० जैक्स प्रभावित हुए और उन्होने डॉक्टर साहब को आक्सफोड के मैनचेस्टर कॉलिज म व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया। डॉक्टर साहब के इन व्याख्यानो के पश्चात प्रकाश म आई आपकी प्रसिद्ध पुस्तक— द हिन्दू व्यू आफ लाइफ' (जीवन का हिन्दू दृष्टिकोण) और तभी से ससार मे डॉक्टर सवपल्ली राधाकृष्णन एक अद्वितीय दाशनिक के रूप मे प्रतिष्ठित हो गए।

डाक्टर साहब ने अध्यापक होने के कारण हिन्दू दशन की इस ढग स सरल व मन म उतरने वाली व्याख्या की कि उससे पाश्चात्य जगत हिन्दू धम व दशन की ओर आकृष्ट हुआ। स्वामी विवेकानन्द के पश्चात मात्र वही भारतीय दाशनिक थे जिन्होने हिन्दू धम को उचित ढग स समझाया। इस रूप म उनकी भूमिका शकराचाय जैसी रही। उपनिषदो की परम्परा पर चलते हुए उन्होने अपना विषय सरल दृष्टात देकर समझाया जिसस श्रोता आसानी से उन्हें समझ सके। डॉक्टर साहब म विवेचन और सश्लेषण दोनो की अटूट क्षमता थी। हिन्दू धम मे फैली सारी गलतफहमियां भारत के इस आधुनिक राजर्षि ने एसे दूर कर दी कि पश्चिम के विद्वानो को हिन्दू दशन के सम्बन्ध म उनका लोहा मानना पड गया। उन्होने पूव और पश्चिम

के [illegible] का भ[illegible] लि[illegible] था। [illegible] कारण वह पूव की बात पश्चि[illegible] का और प[illegible] उ[illegible] ढग स सम्प्रेपित कर सकन म सफ[illegible] थे वा[illegible] रूप स [illegible] सतु थे जिसके द्वारा बौद्धिकता के स्तर पर पूव और पश्चिम एक दूसरे के निकट आय।

डॉक्टर राधाकृष्णन ने काफी समय तक आक्सफोड विश्वविद्यालय मे अध्यापन काय किया था। इस बीच म उन्होने इगलण्ड के कई चर्चो मे भाषण भी दिए थे। एक बार तो पोप ने डॉक्टर साहब का सम्मानित किया था। इन सब बातो से जो प्रतिष्ठा उन्हाने भारत की बढाई वह सदा स्मरणीय रहेगी।

डॉक्टर साहब अपने आपको कट्टर हिन्दू मानते थे परन्तु साथ ही साथ अन्य धर्मों का सम्मान भी करते थे। उनके लिए धम एक ऐसा विश्वास था जो जाति व सम्प्रदाय से पथक हाते हुए भी सभी जातियो व सम्प्रदायो म समाविष्ट होता है। वह मानते थे कि धम विश्व के लिए अपरिहाय है। उनके मतानुसार धम ही वह वस्तु है जिसे विश्व को आज के भौतिक युग मे बडी आवश्यकता है।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय म वह 1952 तक नियमित रूप से ज्ञान रश्मिया फैलाते रहे परन्तु बीच बीच मे भारत से भी सम्पक बनाए रखा। जैस 1939 म बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति और स्वतन्त्रता के पश्चात 1948 म भारत सरकार के अनुरोध पर विश्वविद्यालय आयाग की अध्यक्षता भी की और विश्वविद्यालय के विकास के लिए सराहनीय यागदान दिया।

1952 म भारत के इस दाशनिक सपूत को भारत के उपराष्ट्रपति का पद भार सभालन के लिए स्वदश आमन्त्रित किया गया। वैसे, *1946 50* म डॉक्टर साहब न अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा, विज्ञान तथा सास्कृतिक सघ म भारतीय शिष्टमडल का नेतत्व भी किया और एक बार उसकी कायकारिणी की अध्यक्षता भी की।

1949 मे आपको भारत का राजदूत बनाकर लाहे के पर्दे के पीछे—मास्को भी भेजा गया, इसस पूव भारत और महात्मा गाधी के सम्बन्ध म रूस की राय अच्छी नहो थी और रूस म राजदूत भेजना सदा ही एक

पचीदा समस्या बनी रहती थी। परन्तु भारत के अजातशत्रु ने पहुंचते ही अपनी प्रतिभा का सिक्का जमा दिया। वह घटना अत्यन्त अभूतपूर्व और चिरस्मरणीय रही जब डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन प्रथम बार रूस के लौहपुरुष भाग्य विधाता मार्शल जोजेफ स्टालिन से साक्षात्कार करने पहुंचे। बातचीत के दौरान महात्मा बुद्ध और गांधी के देश से पहुंचे इस दार्शनिक ने कहा, "हमारे देश में एक महान सम्राट हुआ है, उसने भीषण युद्ध और रक्तिम विजय के पश्चात अपनी तलवार तोड दी थी और अहिंसा का दामन थाम लिया था। आपने शक्ति अर्जित करने के लिए अपना निजी (हिंसा का) तरीका अपनाया है। किसी को क्या मालूम, हमारे उस महान सम्राट की वह घटना आपके यहां भी दोहरा दी जाय।"

स्टालिन ने सुना और मुस्कराते हुए कहा, "हां वास्तव में कभी कभी ऐसे ही चमत्कार हो जाते हैं। मैं भी पांच वर्षों तक ब्रह्मज्ञान के शिक्षालय में रह चुका हूं।"

पाषाण हृदय स्टालिन डॉक्टर राधाकृष्णन के आकर्षक व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित रहा और जब वह भारत वापस आने लगे तब उसने उन्हें पुनः दर्शनार्थ आमन्त्रित किया।

भारत के इस दार्शनिक को देखते ही स्टालिन का चेहरा किंचित अरुणिम हो गया। राधाकृष्णन ने स्टालिन के गाल पर सस्नेह अपनी उंगलियां सहलाईं, उसके सर पर अपना वरद हस्त फेरा मानो कह रहे हों, 'शाबाश मेरे अबोध शिशु, यह तो जीवन है, इसमें सभी कुछ हो जाना सम्भव है।' स्टालिन भावना से ओत प्रोत होकर विचारमग्न हो गया। भारत के इस महान ऋषि ने रूस के उस कम्युनिस्ट तथा सम्पूर्ण रूप में व्यावहारिक नेता की पीठ थपथपाई और विदा मांगी। स्मरण रहे इस ऐतिहासिक एवं अप्रत्याशित घटना के केवल छः महीने पश्चात ही स्टालिन की मृत्यु हो गई और स्टालिन से मिलने वाले विदेशी राजनीतिज्ञों में से राधाकृष्णन ही अन्तिम थे।

भारत आकर डॉक्टर राधाकृष्णन को उपराष्ट्रपति का उत्तरदायित्व सौंप दिया गया जिसको उन्होंने बडी कुशलता से निभाया क्योंकि उपराष्ट्रपति को राज्य सभा की अध्यक्षता भी करनी पडती है। फिर उसके

प"चात दश का सर्वोच्च आसन उनके महान और गरिमापूर्ण व्यक्तित्व म गौरवान्वित किया गया।

1918 में डाक्टर माहब न पुस्तक लिखी थी—'दि फिलासफी ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर' और तभी म व ससार में दशन शास्त्र के क्षितिज पर एक तजामय सूय की भाति प्रतिष्ठित हो गए थ। 1937 म आपको ब्रिटिश मरकार द्वारा 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया जिम आपने स्वतन्त्रता के पश्चात त्याग दिया। 1954 म भारत रत्न न भी अलकृत किया गया। उमके माथ ही जमनी न जमन बीअर ले मैरिट' (1954) की उपाधि से और 1955 म फ्रांस स पअर ला मरिट' का उपाधियो से विभूषित किया गया। 1957 म मगोलिया न मास्टर आफ विजडम बनाया और जमनी ने एक बार फिर गोयथे प्लकयूट' और 1961 म जमन बुक ट्रस्ट न पीस प्राइज' स सम्मानित किया। इगलण्ड न भी 1964 म आडर ऑफ मेरिट' स डॉक्टर माहब क प्रति अपना मम्मान व्यक्त किया तथा पवित्र पाप न 'डि इक्यूस्ट्रि आर्डिन मिलिट आरट (De Equestrin Ordine Militae Auratae) से भी सम्मानित किया। मत्यु क कुछ समय पूव भारत क इस महान दाशनिक राजनता का टैम्पलटन पुरस्कार भी दिया गया था।

डाक्टर राधाकृष्णन न कई प्रसिद्ध पुस्तको की रचनाए की। इनसे दशन और धम के क्षेत्र म उनकी विद्वत्ता का लाहा सारे ससार न मान लिया। अग्रेजी पर उनका सम्पूर्ण अधिकार था और गीता की अनुवाद पुस्तक उनकी महान कृति मानी जाती है। इसक अतिरिक्त आपने हाट ऑफ हिन्दुस्तान (हिन्दुस्तान का हृदय), हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ एन आयडिया लिस्ट व्यू ऑफ लाइफ (जीवन का आदश दृष्टिकोण), करकी अथवा पयूचर ऑफ सिविलाइजेशन (सभ्यता का भविष्य), गौतम दि बुद्ध, ईस्टन एण्ड वस्टन थॉटस (पूव क धम और पश्चिम के विचार) और इस्ट एण्ड वस्ट (पूव तथा पश्चिम) कुछ महान प्रतिनिधि पुस्तकें गिनाइ जा सकती ह जिन्हान समस्त विश्व म डॉक्टर साहब का सिक्का जमाया है।

गीता का अनुवाद राधाकृष्णन जी न राष्ट्रपिता महात्मा गाधी का समर्पित किया था। इसमे पूव उन्हान गांधीजी म अनुमति चाही तो गाधीजी ने कहा, मैं जानता हू आप जा भी लिखेंग वह असाधारण तो होगा ही फिर

भी इससे पूर्व कि आप अपनी पुस्तक मुझे समर्पित करें, मैं आपसे कुछ पूछना चाहूगा। मैं आपका अर्जुन हू और आप मेरे कृष्ण। मैं अर्जुन की तरह भ्रमित हू ' और इन शब्दो के साथ राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित कुछ शकाए प्रस्तुत की और जब उनका पूरा पूरा समाधान पा लिया तभी 'समर्पण' के लिए राजी हुए।

भारतीय सस्कृति मे जो कुछ भी महान और सुन्दर है उसकी डाक्टर साहब सजीव मूर्ति थे। आपके भाषणो मे भावो की गहनता, भाषा की सरल अभिव्यक्ति एक धाराप्रवाह की भाति बहती सी मिलती थी। सस्कृत के श्लोको के बिना शायद ही उनका कोई व्याख्यान पूरा होता हो। भारत कोकिला के पश्चात भारतीय वक्ताओ मे राधाकृष्णन से अधिक ओजस्वी तथा मधुर भाषण शायद ही किसी ने दिया हो। वह जब बोलते थे तब सब ओर निस्तब्धता छा जाती थी और ऐसा लगता था मानो किसी प्राचीन गुरुकुल का कोई आचार्य अपने स्नातको को शिक्षा दे रहा हो।

लम्बा कद, छरहरा बदन, लम्बे चेहरे पर दक्षिण भारतीय ढग से बधी हुई ऊची ऊची सफेद पगडी। विस्तरित ललाट, पतली चमकदार ऐनक मे से झाकती हुई दो गहरी चमकीली आखें, लम्बी तथा किंचित उठी हुई नासिका और गम्भीर पतले पतले होंठ वाले डॉक्टर राधाकृष्णन सदा अचकन धोती और चमचमाते जूते पहनते थे। कभी कभी पतलून और बन्द कालर का लम्बा कोट पहनते थे और पत्रकारो से मिलने मे सकोच ही करते थे पर बच्चो मे सदा खुश रहते थे।

लगभग एक वर्ष अस्वस्थ रहने के पश्चात 17 अप्रैल 1975 की रात मे पौने बजे मद्रास के एक नर्सिंग होम मे भारतीय दर्शन का यह सूर्य अस्त हो गया। एक अधकार छा गया। मा भारती का यह दार्शनिक सपूत उनकी गोद से सदा-सदा के लिए बिछुड गया।

परन्तु युग-युगान्तर अध्यापक, विचारक, दार्शनिक, लेखक तथा राजनयिक भारत रत्न भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन अपने मानसिक एवं आन्तरिक विचारो के लिए याद रहेंगे।

चन्द्रशेखर वेंकट रमण—1954
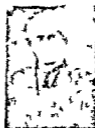
कभी कभी बात पलट जाती है। व्यक्ति का सम्मान किया जाता है उसे किसी उपाधि अथवा अलकरण के द्वारा और वह व्यक्ति उस उपाधि अथवा अलकरण प्राप्त करके स्वय को गौरवान्वित अनुभव करता है परन्तु जब उपाधि या अलकरण स्वय किसी व्यक्ति विशेष पर सुशोभित होकर गव से फूला न समाए तब वह घटना एक अनोखी व अविस्मरणीय हो जाती है। 1954 म भी इसी प्रकार की घटना घटी जब ससार के महान विज्ञान मनीषी श्री चन्द्रशेखर वेंकट रमण को स्वतन्त्र भारत के सर्वोच्च अलकरण 'भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

'रमण प्रभाव' के प्रणेता, आविष्कारक श्री रमण को इससे पूव 1930 म ससार का सवश्रेष्ठ पुरस्कार नोबेल पुरस्कार' प्रदान कर विज्ञान की दुनिया म श्रेष्ठ वैज्ञानिकों की पक्ति म पदासीन कर दिया था और इसस पूव 1924 म लन्दन की रायल सोसाइटी न अपनी फलोशिप देकर तथा 1929 म भारत की ब्रिटिश सरकार ने नाइटहुड देकर 'सर के खिताब से भी सम्मानित किया था। 1957 म सोवियत सघ ने श्री रमण को अतर्राष्ट्रीय लेनिन पुरस्कार प्रदान किया।

पुरस्कार सम्मान शृखला समाप्त नही हुई। भारत म कलकत्ता, बम्बई मद्रास, बनारस, ढाका, इलाहाबाद पटना, लखनऊ, उस्मानिया, मैसूर, दिल्ली, कानपुर और श्री वेंकटेश्वर के अनक विश्वविद्यालयो न सर सी० वी० रमण को पी एच० डी० की मानद उपाधिया तो समर्पित की ही, साथ ही विदेशो म, ग्लासगो विश्वविद्यालय ने 1930 मे एल०

एल० डी० की मानद उपाधि तथा 1932 में पैरिस विश्वविद्यालय ने आनम एम० सी० डी० की उपाधि प्रदान करके स्वय को सम्मानित किया।

1928 म रोम की सोसाइटा इतैलियाना देल्ला साइंजा न श्री सी० वी० रमण को मत्यु का पदक, 1930 म लन्दन की रायल सोसाइटी न ह्यूग्स पदक, 1940 म फिलैडलफिया के फ्रैंकलिन इन्स्टीच्यूट न फ्रैंकलिन पदक दिया। उन्हें म्यूनिक की ड्यूत्शे अकादमी, ज्यूरिच फिजीकल सोसाइटी, ग्लासगो की रायल फिलासफिकल सोसाइटी, रायल आयरिश अकादमी और हगरी की अकडमी ऑफ साइसज का सम्मानित सदस्य बनाया गया। श्री रमण भारतीय साइंस काग्रेस एसोसिएशन तथा भारत की अय विज्ञान सस्थाओ के भी सदस्य रहे। 1929 म भारतीय साइंस काग्रेस का प्रधानाध्यक्ष चुना गया और 1934 में इंडियन अकेडमी आफ साइंसेज क अध्यक्ष उसके आविर्भाव म ही बनाए गए और अपने अन्त तक रहे। वह पैरिस की विज्ञान अकादमी के विदेशी सहयोगी और रूस की विज्ञान अकादमी के भी विदेशी सदस्य रहे। इसके अतिरिक्त 1961 म पोप जान ने उन्हें पोन्टिफीशियल अकडमी ऑफ साइंसेज का भी सदस्य नियुक्त किया था।

श्री रमण को अमरीका की आप्टिकल सोसाइटी और मिनरालाजिकल सोसाइटी का सम्मानित सदस्य बनाया गया तथा रोमानिया सरकार ने कटगट अकाउस्टिकल सोसाइटी का सम्मानित सदस्य और चेकोस्लोवाकिया की विज्ञान अकादमी के भी सदस्य थे श्री रमण।

1935 म मसूर के महाराजा न भी अपनी ओर से 'राजसभा भूषण' की उपाधि स सुशोभित किया था। यह उल्लेखनीय है।

नोबल पुरस्कार विजेता, मसूर के 'राजसभा भूषण' और भारत रत्न महान वैज्ञानिक श्री चन्द्रशेखर वेंकटरमण का जन्म त्रिचनापल्ली (अब तमिलनाडु म) के निकट थिरुवणिदक्कवल नामक ग्राम के अय्यर परिवार म 7 नवम्बर 1888 को हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती पार्वती अम्मा था पिता श्री चन्द्रशेखर अय्यर स्थानीय स्कूल म अध्यापक थ। पांच बेटा और तीन बेटियो के भरे पूरे परिवार म बालक रमण क्रमा

नुसार दूसरी सन्तान थे। जब वह तीन वर्ष के थे तब उनके पिता को विशाखापटनम स्थित मिसज ए० वी० एनभ कालिज में गणित एवं भौतिकी के प्राध्यापक का पद प्राप्त हो गया था। फलस्वरूप अय्यर परिवार विशाखापटनम जाकर रहने लगा। उस समय श्री चन्द्रशेखर अय्यर को पचासी रुपये वेतन मिलते थे और अय्यर परिवार की गाडी बडे आराम से चल जाती थी। श्री अय्यर को भौतिकी के साथ साथ गणित एवं दर्शन शास्त्र की पुस्तकों में बडी रुचि थी और उनके पास अनेक पुस्तकें थी जो अच्छे-अच्छे लेखकों की लिखी हुई थीं। पुस्तकों के साथ ही वायलन में भी उनकी गहरी दिलचस्पी थी और वह वायलन अत्यन्त निपुणता से बजा लेते थे।

श्री रमण बचपन से ही होनहार दिखाई देने लगे थे। केवल ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने मैट्रिक पास कर लिया था। फिर दो वर्ष पश्चात एफ० ए० की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और उन्हें छात्र-वृत्ति प्राप्त हुई जिसके कारण उन्हें उनके पिता ने उनकी पढाई का बोझ बिना उठाए मद्रास के एक कालिज में पढने के लिए भेज दिया। 15 वर्ष की आयु में उन्होंने बी० एस० पास कर लिया। अंग्रेजी तथा भौतिकी में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के कारण उन्हें स्वर्णपदक भी मिला था। वह सम्भवत स्वर्णपदक उन्हें प्राप्त होने वाली पुरस्कार व सम्मान श्रृंखला का प्रथम चरण रहा होगा।

धोती और कमीज से अपना साधारण शरीर ढाके। सिर पर गोल टोपी और नंगे पांव लिये एक दुबला पतला दक्षिणी ब्राह्मण युवक परन्तु एम० ए० की उपाधि से अलंकृत। चन्द्रशेखर वेंकट रमण का व्यक्तित्व नितान्त प्रभावहीन था।

किन्तु उनके अध्यापक ने अनुभव किया कि उनका वह छात्र प्रतिभा में उनसे कहीं आगे है—बहुत आगे। एक अन्य अध्यापक ने उन्हें प्रमाण-पत्र देते हुए लिखा था—मेरे तीस वर्षों के अध्यापनकाल में मुझे यह छात्र सर्वोत्तम मिला है। अंग्रेजी साहित्य में तो उसकी गजब की पकड है। अभिव्यक्ति व्यक्त करना कमाल की है। स्वतन्त्र एवं दृढ चरित्र है उस असाधारण छात्र का विशेष लक्षण।

कालज म वणक्रम मापव यत्र[1] द्वारा प्रयाग स—जसाकि उसस पूव हजारा छात्रा ने भी किया होगा—सम पाश्व[2] के कोण को मापत हुए सोलह वर्षीय किशोर रमण की दृष्टि आलाव भजन[3] की पट्टिया[4] पर पडी इसकी छानबीन की और उन्होंन 1906 मे लन्दन से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'दि फिलासफिकल मेगजीन' म छपते वाले अपने एक लेख का विषय बनाया। काला तर म सतही तनाव को मापने की प्रयोगात्मक प्रणाली पर एक टिप्पणी भी लिखी।

और 1906 मे एम० ए० कर लेन के पश्चात् अपन अध्यापको क परामश के अनुसार श्री रमण वित्त विभाग की चयन परीक्षा मे बैठ और वहा भी पूवानुसार सफल उम्मीदवारा की सूची म उनका नाम सबस ऊपर चमक रहा था। कहा विज्ञान और उसमे कुछ कुछ कर गुजरन का उत्साह और स्वप्न और कहा वित्त के आकडा का जाल! ऐसा भारत म ही सम्भव है।

उन्ही दिना रमण जी के जीवन म एक रोमाचपूण घटना घटी। उन्होंने अपनी आयु से तेरह वष छोटी कन्या—सुश्री लोक सुन्दरी से विवाह कर लिया। कहा जाता है कि रमणजी ने लोक सुन्दरी का एक बार वीणा पर सत त्यागराज की कीर्तिनोरचना 'रामा नि समनाम एवरो' बजाते सुन लिया और परम्पराओ का एक ओर हटाकर उन्होने स्वय विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया।

बहरहाल शादी हो गई और श्रीमती एव श्री रमण कलकत्ता पहुच गए जहा उन्होने वित्त विभाग मे सहायक महालेखाकार का पद सम्हाल लिया। बऊ बाजार के निकट स्काट्स लेनर म एक मकान किराये पर लिया जो कलकत्ता पहुचन के छ-सात दिनो के भीतर ही मिल गया था। रोज ट्राम पर आना जाना होता था—घर से कार्यालय और फिर वापस घर सभी कुछ मशीन के किसी यत्र सा चल रहा था कि एक दिन जब वह ट्राम से अपन कार्यालय जा रहे थे उनकी दृष्टि बऊ बाजार स्ट्रीट म ही एक नाम पट्टिका पर जा पडी जिस पर लिखा था दि इण्डियन एसोसिएशन फॉर

1 Spectrometer 2 Prism 3 Diffraction 4 Bands.

दि कल्टीवेशन आफ साइंस (विज्ञान के अनुशीलनार्थ भारतीय संस्थान) कार्यालय से लौटते समय रमणजी 210 बऊ बाजार स्ट्रीट पर उतर गए। उधर नाम-पट्टिका के स्थान का द्वार खटखटाया, द्वार खुला, रमणजी के समक्ष खड़े थे एक श्री आशुतोष दे। श्री रमण ने अपना परिचय दिया श्री दे ने अन्दर आने के लिए आमंत्रित किया। श्री रमण अन्दर पहुंचे और देखा *एक बड़ी अनुसंधानशाला, सब ओर धूल ही धूल लगता था काफी समय से* किसी ने खैर-खबर नही ली है, देखा भाला नही है। रमणजी को लगा वह किसी परी देश में जा पहुंचे थे या किसी स्वप्निल स्थान पर, या किसी परिचित स्थान पर, जिसकी अभिलाषा उन्होंने संजोए रखी थी अपने वैज्ञानिक मन के एक कोने में। वह सब देखकर उनका मन व्याकुल हो उठा एक सुनहरा सपना अंगड़ाई लेता हुआ उनके सामने मूर्तिमान हो गया। कई प्रश्न उनके समक्ष पेंच दर पेंच बनकर लहराने लगे।

श्री दे रमण जी के जिज्ञासु मन की बात ताड़ गए उन्होंने श्री रमण को एसोसिएशन के मंत्री श्री अमृतलाल सरकार से मिलवा दिया। श्री सरकार ने भाप लिया भली भांति श्री रमण के मन सागर में उठते हुए ज्वार को जो तटों को बिना भिगोए उतरने वाला नही था। न जाने वह कब से अपनी जतन से सजोई हुई उस अनुसंधानशाला को किसी सुपात्र के सशक्त हाथों में सौंपने की प्रतीक्षा में थे। श्री अमृतलाल सरकार ने तुरन्त श्री रमणजी के हाथ पर एसोसिएशन की चाबियां रख दी। श्री सरकार के इस मौन निमंत्रण को स्वीकार कर लिया वरदान समझकर श्री रमण ने।

उत्साह का नया सूर्योदय था वह। दिनचर्या ही बदल गई तब से रमण जी की। वह प्रात साढ़े पांच बजे एसोसिएशन चले जाते, फिर पौने दस बजे तक घर लौटते, नहाते, तैयार होते, जल्दी जल्दी भोजन करते और भागते दफ्तर देर हो जाने के भय से अधिकतर ट्राम से न जाकर टैक्सी से ही जाते। शाम को वह सीधे एसोसिएशन जा डटते और नौ दस बजे तक लौट पाते घर। इतवार के दिन, जब सबके लिए अवकाश और आराम का दिन होता था, रमण जी अपनी ही धुन में लीन रहते थे। एसोसिएशन में ही सारा दिन गुजार देते। वहां उनका मन रम गया था। दिन भर के आंकड़ों के जोड़ बाकी की थोरियत से उन्हें प्रयोगशाला में राहत मिलती वह एक

नशा था, जिसकी प्रतीक्षा म उनका सारा दिन बीत जाता था—कब शाम हो, कब दफ्तर म छुट्टी हो और कब वह अपने प्रिय स्थल पर पहुचें।

परन्तु विज्ञान और श्री रमण के बीच एव रम्यता म अनायास बाधा दायक व्यवधान आ गया। श्री रमण पनवरी मे रगून स्थानान्तरित कर दिए गए। और दूसरे वर्ष वहा से भी नागपुर चला जाना पडा। फिर भी यह बात वह स्थानान्तरण प्रक्रिया उन्हे उनके नशे से विलग नही कर सकी—रगून और नागपुर म भी उन्होने अपना अध्ययन जारी रखा। घर मे ही एक छोटी सी प्रयोगशाला बनाकर कुछ-न-कुछ (प्रयोग) करते रहे। सम्भवत इन दो वर्षों म उनके प्यार की परीक्षा ही ली गई थी। भगवान ने उन्हे कलकत्ता से हटाकर उन्हे परखना चाहा, और वह खरे उतरे। पूर्णत वह अपना प्रयास करते रहे भौगोलिक अव्यवस्था और व्यवधान उनके सकल्प एव तप म विघ्न नही डाल पाए। फलस्वरूप रमण जी पुन कलकत्ता भेज दिए गये और पूर्वत एसोसिएशन की प्रयोगशाला म रम गए।

रमण जी तथा आशुतोष बाबू का परिश्रम रग लाया। एसोसिएशन के माध्यम से उन्होने अपनी आवाज ऊची और व्यापक की। एक प्रकाशन आरम्भ किया जो बाद म बुलेटिन 'इण्डियन जनरल आफ फिजिक्स' बन गया।

अपने पिता की भाति रमण जी भी वायलिन बजा लेते थे। उनकी पत्नी श्रीमती लोक सु दरी वीणा वादन म निपुण थी ही। रमण जी का वैज्ञानिक मन मस्तिष्क वायलिन एव वीणा के स्वरो से विलग न रह सका। इस सम्बन्ध म कालेज के दिनो म ही उ होने तारो की झकार पर कुछ कार्य किया था। आशुतोष बाबू के सहयोग से स्वरो की गूज तथा वातावरण म शन शनै फलने पर हुए प्रभावो पर रमण जी ने ठोस प्रयोग किए और उनसे निकले भौतिकी परिणामो पर एक लेख लिखा जिसे रायल सोसायटी के कार्य कलापो की पुस्तिका 'प्रासिडिंग्स' म प्रकाशित किया गया। तत्पश्चात श्री आशुतोष मुखर्जी स्मृति ग्रंथ म भी प्राचीन हिन्दुओ के श्रवण सम्बन्धी ज्ञान पर एक लेख लिखा। इस लेख के प्रकाशित होते ही रमण जी स्वर तथा वाद पर एक अधिकृत लेखक माने जाने लगे।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री आशुतोष मुखर्जी इस

वैज्ञानिक वित्त अधिकारी से अत्यन्त प्रभावित हुए और रमण जी को विश्व विद्यालय में भौतिकी की पालित[1] पीठ के लिए आमन्त्रित किया। श्री रमण के लिए उनके अपने प्रिय 'व्यसन' (श्रद्धेय रमण जी से क्षमा याचना सहित) से पूर्ण रूप से जुड़ जाने का सुनहरा अवसर था जिसे वेतन कम होते हुए भी उन्होंने स्वीकार कर लिया।

परन्तु वित्त विभाग का इतना योग्य अधिकारी खो देना काफी अपमान था लेकिन क्योंकि इसमें श्री रमण की अपनी आकांक्षाओं, अभिलाषाओं और रुचि का प्रश्न था, इच्छा न होते हुए भी वित्त विभाग ने अपने 'श्रेष्ठ' अधिकारी की 'क्षति' स्वीकार कर ली। वैसे, यदि रमण जी वित्त विभाग से ही जुड़े रहते तो भी तत्कालीन वायसराय की परिषद में सदस्य (वित्त) के पद तक पहुंच जाते परन्तु उन्हें तो विज्ञान के आकाश में एक नक्षत्र के समान चमकना था।

श्री आशुतोष की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से श्री रमण आक्सफोर्ड में आयोजित विश्वविद्यालयों की कांग्रेस में भाग लेने विदेश गए और साथ ही यूरोप के अन्य देशों का भ्रमण भी किया। तभी इंग्लैंड में वहां के प्रसिद्ध विद्वान सर्वश्री जे० जे० थामसन, रदरफोर्ड, ब्रैग तथा अन्य बड़े बड़े वैज्ञानिकों से उनकी भेंट हुई। और श्री रमण ने अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा से उन्हें प्रभावित भी किया।

साधारण वेश-भूषा वाला वह मामूली भारतीय, पहले तो किसी को आकर्षित नहीं कर सका। परन्तु दूसरे दिन साधारण और प्रभावहीन व्यक्तित्व लिये भारत से आमन्त्रित मिस्टर सी० वी० रमण सभी का केन्द्र-बिन्दु बना हुआ चमक रहा था।

स्वदेश लौटते समय (समुद्र के रास्ते से) श्री रमण ने नीलमणि जैसा नीले भूमध्य सागर का सौन्दर्य गम्भीरतापूर्वक देखा और उसके नीले जल को देखकर लॉर्ड रैले के उस मत को स्वीकारने से इनकार कर दिया जिसके अन्तर्गत लार्ड रैले ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया था कि समुद्र की

1 Palit

नीलिमा आकाश व वातावरण म बिखर हुए परमाणुओं[1] के कारण होती है। रैमन ने उस सिद्धात के स्थान पर उन्होंने कहा, "गहरे समुद्र की बहु प्रशमित नीलिमा आकाश की नीलिमा प्रतिबिम्ब द्वारा दिखाई देती है।" उन्होंने अपने उक्त कथन की पुष्टि म प्रमाण प्रस्तुत किया उन्होंने निकल (धातु) के—समपार्श्व[2] के ध्रुवण द्वारा बनाए गए यथासबवीय कोण[3] पर समुद्र म पडे रहे प्रतिबिम्ब का सर्वेक्षण किया और देखा कि आकाश का प्रतिबिम्ब इस प्रकार विलुप्त हो गया कि समुद्रतल फैली नीलिमा स आलो कित दीखन लगा जो (नीलिमा) जल के भीतर स उभरती सी लगती थी। यह इस तथ्य की ओर इंगित करता था कि समुद्र की नीलिमा जल के द्वारा बिखराव के कारण थी। उस अद्भुत दृश्य को वह ठग-से देखत रहे। अपने निकल और कार्डबोर्ड की नलिया म जलपात पर इधर उधर दौड दौडकर देखत फिर रह थे और समुद्र की गहराई से जल लेकर बोतलो म एकत्रित कर रह थे बिलकुल पागल बच्चो की तरह।

जलपोत पर ही उन्होंने ताप दनिकी के उतार चढाव[4] के सम्बन्ध म ए सटाइल स्मोलुचौसकी[5] की विचारधारा क्रान्तिक बिन्दु[6] के समीप विशेष आक्षिक दृश्य समझान[7] के लिए विकसित की गई थी। इसे तरल (पदार्थ) म आलोक भजन की क्रिया समझान के लिए भी विस्तृत किया जा सकता है और उसके उपरात जब श्री रमण भारत पहुचे, उन्होंने अत्यत आश्चर्य जनक पद्धति पर कार्य करना आरम्भ कर दिया।

1 तरल द्वारा प्रकाश का बिखराव।

2 तरल द्वारा किरणों[8] का बिखराव।

3 तरल द्वारा श्यानता[9] (कणिकाओ के मध्य क्रियाशील तीव्रता (कोस) के कारण बहाव (फ्लो)।

अधिकाश लोगो को मालूम नहीं होगा कि तरल (पदार्थों) म छ किरणें

1 Molecules 2 Polarising nicol Prism 3 Bresestrun angle 4 Thermody namic fluctuation 5 Einsten Smoluchsowski 6 Critical Point 7 Optical pheno mena 8 X rays 9 Viscocity

के विकिरण के सम्बन्ध में सबसे पहले कार्य भारत में ही किया गया था। श्री रमण और उनके साथियों ने एक प्रभावशील सिद्धांत का विकास किया और बहुत-सी कणिकाओं के आकार और तरल स्थिति में उनके एकत्रीकरण[1] की उपकल्पित प्रकृति की पुष्टि की। श्री रमण ने एक बार उत्सुकता से कहा था "हम लोग 'प्रकाश के विकिरण' से इतने उलझ गए हैं कि तरल (पदार्थों) में बिखरी हुई छोटी किरणों के लघु कोणों में स्थानान्तरण करने का विचार हमारे मस्तिष्क में आया ही नहीं यद्यपि हम इसके इतने समीप थे। इस पर 1927 में अरविन और प्रिंस ने काम किया था जबकि प्रसिद्ध रमण रमानाथन का निबन्ध 1923 में लिखा जा चुका था। 1923 में श्री रमण ने कणिकाओं के मध्य क्रियाशील तीव्र बहाव के सिद्धान्त पर सफलतापूर्वक कार्य पहले ही कर लिया था।

इंग्लैंड से स्वदेश लौटने के कुछ ही सप्ताह पश्चात उन्होंने श्री शेषगिरि राव के साथ मिलकर जल में बिखरे हुए प्रकाश के आलोक भजक की गहनता को मापा और स्थापित किया कि ताप दैनिकी के उतार चढ़ाव के सम्बन्ध में एन्टाइन-स्मोलचावस्की के विचार अधिकतर मात्रात्मकता से छितरी हुई कणिकाओं को स्पष्ट करने के लिए आगे विकसित किया जा सकता है। परिणाम इसका यह निकला कि तरल तथा वाष्प (पदार्थों) में छितरी हुई कणिकाओं का अध्ययन करने के लिए अनेक विद्यार्थियों को लगा दिया गया।

परन्तु 1922 में उन्होंने (श्री रमण ने) 'प्रकाश के आलोक भजक' पर एक निबन्ध (मोनोग्राफ) प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने एक प्रश्न उठाया कि यदि छितरायी हुई कणिकाओं से ऊर्जा का आदान प्रदान हो जाय तो उससे सलग्न वाली वस्तु का क्या बनेगा? कणिका और प्रकाश की मात्रा के मध्य ऊर्जा का स्थानान्तरण कैसे हो सकेगा? इस पर विवरणात्मक अध्ययन किया और अनुभव किया कि प्रकाश की प्रकृति प्रमात्रा छितरायी हुई कणिकाओं से स्वयं अभिव्यक्त हो जाती है। यही था काम्पटन प्रभाव का आविष्कार।

1 Aggregation

श्रीरमण के सबसे पुराने और मेधावी छात्रों मे से एक थे श्री ए० आर० रमानाथन। अपने गुरु के सुझाव पर श्री रमानाथन ने जल में प्रकाश बिखरने पर गम्भीर अध्ययन किया। तरल वस्तु पर सूर्य का प्रकाश डाला गया और बिखरता हुआ प्रकाश आडी दिशा मे एक अनवरत रेखा की तरह दिखाई दिया। सम्पूरक छलनियो की प्रणाली[1] की परिकल्पना की गई और प्रत्येक छलनी दूसरी छलनी से निकलने वाली प्रकाश किरण को सम्पूर्ण रूप से काटती थी जब पड़ने वाले प्रकाश को उन प्रकाश किरणों में से एक किरण से निकाला गया और बिखरा हुआ प्रकाश दूसरे प्रकाश (किरण) में से देखा गया तो अनवरत रेखा दिखाई नहीं दी (जब तक कि इस प्रक्रिया में रंग परिवर्तन न किया गया) यह अशुद्धताओं[2] के कारण क्षीण प्रकाश तरंग[3] के कारण हुआ जिसे सम्पूर्ण रूप से विध्रुवीयण[4] नहीं किया गया (क्योंकि प्रकाश तरंग शुद्ध और सत्य होना चाहिए) और इस विध्रुवीयण की मात्रा को तरंग लम्बाई से बदल दिया गया था।

परन्तु इस स्पष्टीकरण से रमणजी को सन्तोष नहीं हुआ। जैसाकि श्री रमानाथन ने बाद में लिखा कि श्री रमण का विचार था कि छितरी हुई छः किरणों में काम्पटन प्रभाव की प्रकृति की तरह शायद समानता रही हो। खोखलेपन[5] में तरल (पदार्थों) की आहिस्ता ने बार-बार द्रवण[6] करने पर भी क्षीण प्रकाश तरंग अक्षीणता से ठहरी नहीं रहती है। इसी प्रभाव को कालान्तर में एक अन्य प्रतिभाशाली छात्र श्री के० एस० कृष्णन् ने भी उनके जीव सम्बन्धी[7] तरल (पदार्थों) में पाया था।

1927 की शरद् ऋतु में श्री रमण वाल्टेयर गये हुए थे, सम्भवतः अवकाश पर अथवा किसी व्याख्यान माला के सम्बन्ध में। काम्पटन प्रभाव तो उनके मस्तिष्क में था ही। उन्होंने देख लिया था कि वास्तविक रूप से छितराए हुए काम्पटन आक्षिप्त तरंग लम्बाई पर दिखाई नहीं देती है।

1 A system of complementary filters 2 Inpure 3 Weak fluorescence. 4 depolarised 5 Vacum 6 distillation 7 Oragnnic

सफलता के रूप में। दूसरे ही दिन 29 फरवरी, 1928 को उक्त आविष्कार की घोषणा एसोसिएटेड प्रेस के द्वारा कर दी गई और श्री चन्द्रशेखर वेंकट रमण संसार के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों तथा आविष्कारों की पंक्ति में पदासीन कर दिए गये।

और दो वर्ष पश्चात भारत के इस महान सपूत को नोबल पुरस्कार से अलंकृत किया गया विज्ञान के क्षेत्र में उनकी उस अद्वितीय भेंट के लिए जो 'रमण प्रभाव' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

1933 में उन्हें जमशेदजी नौशेरवां जी टाटा इन्स्टीच्यूट का निदेशक नियुक्त किया गया। पहले तो वह कलकत्ता छोड़ने को तैयार ही नहीं थे और उक्त पद को स्वीकारने में टालमटोल करते रहे परन्तु बाद में स्वीकार कर लिया और भारी मन के साथ कलकत्ता छोड़ा जहां उन्होंने अपने वैज्ञानिक जीवन का स्वर्ण युग व्यतीत किया था। परन्तु वहां भी प्रबन्धकों से उनका तालमेल ठीक तरह से जम नहीं पाया और कुछ समय बाद वह वहां से मुक्त हो गये।

1934 में उन्होंने स्वयं भारतीय विज्ञान अकादमी की स्थापना की और पूरे देश से अनेक होनहार नौजवान वैज्ञानिकों को अकादमी का सदस्य बनाया। 20 वर्ष तक विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करते रहने के पश्चात अकादमी की ओर से एक पत्रिका प्रकाशित की जो संसार में रसायन एवं भौतिकी पर अधिकृत सामग्री प्रकाशित करने वाली श्रेष्ठ पत्रिकाओं में गिनी जाती है।

रमणजी की रुचि हीरों में जगत प्रसिद्ध थी। शायद इसी कारण अपनी शोधशाला में हीरे में अपूर्णता का अध्ययन करते हुए उन्होंने एक्स किरण फोटोग्राफी का आविष्कार किया था जो हीरों के व्यापारियों के लिए अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ।

1948 में इण्डियन इन्स्टीच्यूट ऑफ साइंस से अवकाश मिला और उन्हें राष्ट्रीय प्रोफेसर बनाया गया। उन्हें आशा थी कि जीवन भर की कमाई से की गई बचत से वह एक छोटा सा इंस्टीच्यूट चला लेंगे और शेष जीवन विज्ञान का आनन्द लेंगे परन्तु दुर्भाग्यवश वह अपनी सारी पूंजी गवां बैठे। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। अपने उद्देश्य की पूर्ति के

लिए वह देश भ्रमण के लिए निकल पड़े धन एकत्रित [illegible]। वह कहते थे, "भिक्षा मागन मे बुराई क्या है। हमारे तो सभी महापुरुष भिखारी थे — बुद्ध, शकर गाधी ' और उन्होने धन जुटाकर इ[illegible] बनवाया।

एक बार उन्हे आभास हुआ कि उन्हे देश का उपराष्ट्रपति [illegible] बनाने की बात चल रही है। "मै क्या करूगा इसका", रमण जी की प्रतिक्रिया थी। उन्हे महत्वपूर्ण राष्ट्र के लिए भारत रत्न की उपाधि दी गयी। कभी कभी वह उदास हो जाते और सोचते अपने जीवन के बारे मे जो उनके शब्दो मे अत्यन्त असफल जीवन रहा। उन्होने देश मे विज्ञान के प्रति रुचि पूर्ण वातावरण बनाने की कल्पना की थी। क्योकि "हमारे देश मे सभी वस्तुओ के लिए हम पश्चिम के मोहताज रहना पसद करते हैं।"

बालको के समान सरल मा सरस्वती का वरदहस्त प्राप्त यह महान भारतीय वैज्ञानिक अपने देश मे ही नही अपितु समस्त ससार मे महान नक्षत्र की भाति सदा चमकता रहेगा। यद्यपि श्री रमण का पार्थिव शरीर 21 नवम्बर 1977 को सूर्योदय से पूर्व ही हमारी भौतिक आखो से ओझल हो गया।
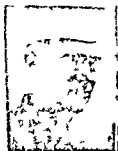
प० जवाहरलाल नेहरू– 1955

बीसवी शताब्दी ससार के लिए सामान्य रूप स और भारत के लिए विशेष रूप स असाधारण सिद्ध हुई। ससार म, विज्ञान की दौड म मानव चाद पर उतर गया है और भारत मे, इतिहास साक्षी है, पहली बार इसके समस्त भूखण्ड पर एकछत्र स्वाधीन प्रजातन्त्रीय राज्य की स्थापना हुई है।

स्वाधीनता की कल्पना मात्र स ही जिन महान विभूतियो की पावन स्मति म हमारा मस्तिष्क नत हो जाता है और जो महापुरुष अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप हमारे मन प्राण पर छोड जाते हैं उनम पडित जवाहरलाल नेहरू अग्रणीय हैं। इन्होने सारे विश्व का ध्यान अपने मधुर एव विप्लवी व्यक्तित्व के चमत्कारी सम्पुट म ले लिया है।

होनहार एव विरल व्यक्तित्व के मालिक आपको जनसाधारण का अपार प्यार मिला है इस शताब्दी के पूर्वार्ध म आपकी कीर्ति इतिहास एव उपाख्यानो की केन्द्रबिन्दु बन गयी है। द्वितीय अर्धशताब्दी के आरम्भिक वर्षों म आपकी अभिकल्पनाए मूर्तिमान हुई है और अपने सपने साकार हुए हैं। इन सभी उपलब्धियो के कारण मानव के मुक्ति आन्दोलन की शौर्य गाथा म आपका नाम अमर हो गया ' भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू के उनके प्रति उद्गार अक्षर अक्षर सत्य साबित हुए हैं।

जवाहरलाल नेहरू की तुलना इसी शताब्दी के एक और महान पुरुष —सर विन्स्टन चर्चिल स भली भाति की जा सकती है। दोनो महान देश भक्त थे। दोनो को अपनी वाणी और लेखनी पर कमाल हासिल था और

दोनो ने अपनी कूटनीति से अपने देश को तरक्की के शिखर पर चढाया। दोनो ने अपनी जनता से भरपूर प्यार पाया और विदेश मे आदर।

स्वयं चर्चिल महोदय ने स्वीकारा था "इस पुरुष ने मानव प्रकृति के दो बडे दोषो को अपने काबू मे कर लिया है उसमे न भय है और न दोष"

यह स्वीकारोक्ति स्वयं एक पूरे इतिहास का दर्पण है जिस पर भारत के स्वतन्त्रता संग्राम की विभिन्न घटनाएं उभर आती हैं।

साइमन कमीशन का देश भर मे काले झडो से 'स्वागत' किया जा रहा है। लाहौर मे लाला लाजपत राय ब्रिटिश सरकार के क्रूर प्रहार से घायल हो चुके है। हर तरफ विरोध की ज्वाला धधक रही है, जहा साइमन कमीशन जाता है, तिरस्कार की चिंगारियां भडक उठती हैं। सरकार का दमन चक्र भी उतना ही क्रूर है।

और, यह लखनऊ है। जुलूसो पर रोक लगा दी गई है। फिर भी सोलह सोलह की टुकडियो मे चलकर सभा के स्थान पर इकट्ठा होने की व्यवस्था कर ली गई है। सारा शहर आतंकित है फिर भी 'कुछ कर गुजरने' के उत्साह से भरपूर है। सडकें सूनी है। चप्पे चप्पे पर पुलिस तैनात है। पुलिस के घुडसवार गश्त लगा रहे हैं। हर तरफ लोग तिरंगे और काले झडे लिये मुस्तैद खडे हुए हैं। यह विरोध और दमन का मोर्चा है आजादी और जबरदस्ती की टक्कर है देश की कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार मे मुठभेड है अहिंसा और हिंसा का खुला मुकाबला है।

कि अचानक चारबाग स्टेशन पर नारे गूजने लगते हैं

साइमन कमीशन, वापस जाओ!

काला कानून, मुर्दाबाद!

इन्कलाब! जिन्दाबाद!

भारत माता की, जय!

वन्दे मातरम

पुलिस जुलूस को रोक रही है। प्रथम पंक्ति मे जो कांग्रेसी नेतागण आगे बढ रहे हैं वह सभी से परिचित हैं— प० गोविन्द बल्लभ पंत और जननायक युवक नेता प० जवाहरलाल नेहरू सबसे आगे है। नारे और तेज होते हैं। पुलिस के अंग्रेज अधिकारी की तरफ से जुलूस रोकने की आज्ञा

गोली की तरह बार-बार दागी जा रही है और जवाब में नारे गूंजते जाते हैं तथा झंडे ऊंचे उठ रहे हैं। पुलिस की सभी चेतावनियां जनता के जोश के सामने फीकी पड़ रही हैं। अधिकारी के क्रोध का पारा उबलन बिन्दु तक पहुंच गया है और उसने लाठी चार्ज का हुक्म दाग दिया है। घच घच घट घट लाठियां बरसने लगी हैं। सारे सत्याग्रही वहीं सड़क पर बैठ गये और उन्होंने अपना सर अपने बाजुओं से छिपाने का असफल प्रयास किया है। पंत जी ने अपने लम्बे डील डौल से नेहरू जी को ढक लिया है और जवाहरलाल उस 'छतरी' से बाहर निकलने के लिए मचल रहे हैं। नारों में कोई कमी नहीं हुई है और कुढ़कर अंग्रेज अफसर ने घुड़सवारों को उन निहत्थे सत्याग्रहियों को रौंदने का नादिरशाही हुक्म दे दिया है। घुड़सवार दौड़ते चले आ रहे हैं। सबका दिल दहल गया है—नारे और तेजी से गूंज रहे हैं और जवाहरलाल अपने साथियों के साथ सड़क के बीचोबीच डटे हुए हैं।

सड़ सड़ ' से एक सवार ठोकर मारता हुआ तीर सा निकल जाता है। जवाहरलाल नीचे गिर जाते हैं। गिर जाने की अर्धचेतन अवस्था में भी वह वहां से हटना नहीं चाहते। उन्हें जबरदस्ती उठाया जा रहा है और वह बेहद झुंझला रहे हैं—पुलिस के घुड़सवारों पर नहीं, बल्कि उन पर जो उन्हें उस मुकाबले से हटा रहे हैं।

एक दृश्य और—

1946। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत। कबाइलियों का खतरनाक इलाका। बन्दूक का निशाना इतना प्रसिद्ध कि यहीं से अंग्रेजों में माचिस की एक तीली से तीन सिगरेट न सुलगाने का रिवाज चल निकला है (क्योंकि अंधेरे में पहली सिगरेट पर बन्दूक संभाली जाती है, दूसरी पर तान ली जाती है और तीसरी पर धांय) जान लेना और जान देना—दोनों ही, कबाइलियों के लिए बाएं हाथ का खेल है।

और, जवाहरलाल नेहरू कुछ पख्तून खुदाई खिदमतगारों के साथ इस खतरनाक इलाके का दौरा कर रहे हैं। ऊंची-ऊंची पहाड़ियों के बीच बन जाती हुई पथरीली पगडण्डी पर वह निर्भीक चले जा रहे हैं। उनके साथ बादशाह खान भी हैं फिर भी उन खूंखार कबाइलियों के लिए कोई फर्क

नही पडता ।

कि तभी कही स उन्ही दीवारनुमा पहाडिया स पत्थर बरसने लगते ह। सब हैरान हो उठते ह पर जवाहरलाल के चहरे पर शिकन नही है। बजाए इसके कि उस पथरीली बरसात से बचे, वह खुन म आ खडे होते हैं 'य क्या नहूदगी है ? ' उनक मुह से निकल पडता है। यहा पन्त जी की तरह बादशाह खान अपन लहीम शहीम डील-डौल से उन्ह ढक लेते ह और वह फिर उस छतरी' स बाहर निकलन को मचल रह है।

और यह तीसरा दश्य—

भारत की अन्तरिम सरकार बन गई ह बटवारा निश्चित हो गया है। साम्प्रदायिक दगा की आग भभक उठी है। मानव रक्त बहुत सस्ता हो गया है। आदमी की कोई कीमत नही रही है। सारा दिल्ली शहर आतकित है। कर्फ्यू खुलते ही खूरेजी का बाजार गम हो उठता है और जवाहरलाल जी दिल्ली क गली-कूचा म निर्भीक चले जात है न उन्हे किसी 'सघी' के छुरे का डर है और न किसी लीगी की गोली का खतरा। कभी हौजकाजी क चौराहे पर खडे हो फिरकापरस्त सिरफिरे लोगा को समझा रहे है तो कभी जामा मस्जिद क सामने मटिया महल के निरीह लागो का अभयदान द रहे है। कुछ नही कहा जा सकता कब कौन दिल का जला' 'आख का अधा' सिरफिरा ताव म आ जाए और वार कर बैठे लेकिन नेहरू जी निडर हैं। विवेकानन्द की तरह निर्भीक। महात्मा गाधी की तरह शुद्ध अहिंसावादी और सम्राट अशोक की तरह पूण प्रजा पालक।

और इस प्रकार की अनेक घटनाए हैं जो प्राय उन सभी को याद हैं जिन्होन उन्ह दखा है सुना है और वह सारी घटनाए कब धीरे से किवदन्तिया के घेरा म खिसक गई हैं, किसी को इसका एहसास भी नही है।

राष्ट्र के हित मे नेहरू की उपलब्धि मे जहा राजनीति को लाभ हुआ है वहा ही भारी नुकसान पहुचा, यह कि भारत को एक महान साहित्यकार से वचित रह जाना पडा, ऐसा मनीषी भारत के इतिहास मे एक ही होना (यदि वह राजनीति के जाल मे न फस जाता) जान हेयनैस होम्स (Johan

Haynes Holmes) ने अपनी पुस्तक (माइ गांधी) में लिखा है और इसी प्रकार एक गोष्ठी में राजऋषि पुरुषोत्तम दास टण्डन ने भी कहा था, 'हमारे यहां तो राजनीति हमारे साहित्य को खा गई।"

जब जवाहरलाल नेहरू के साहित्यकार प्रसून पर हमारा मन भ्रमर मंडराता है तब अनायास ही गुरुदेव रवि ठाकुर के एक गीत की कुछ पंक्तियां गूंजने लगती हैं :

मां
मैं अपनी वेदना के अश्रुओं से
तुम्हारे गले के लिए
मोतियों का हार पिरोऊंगा

राजनीति की उलझनों से चारों पहर उलझे रहने के बावजूद जवाहरलाल जी ने अपने जीवन का प्रत्येक पल एक भावुक कलाकार की तरह जिया है और वीणापाणि के लिए वैजयन्ती माला गूंथी है। उन्हें वह क्षण कभी भी नहीं भाया जिसमें बेतरतीबी या बेहूदगी का रंच मात्र भी अंश रहा हो। उनकी शेरवानी के उस बटन होल में लगी गुलाब की हर समय जवान कली इस तथ्य की गवाह है शत प्रतिशत।

नेहरू जी उन राजनीतिज्ञों में नहीं थे जो अवकाश के क्षणों में दिल बहलाने अथवा अपनी बात दूसरों पर थोपने के लिए साहित्य सृजन का ढोंग रचते हैं और उनकी पोथियों में उन्हीं की अपनी तूतियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। परन्तु जवाहर लाल जी की रचनाओं में राजनीति कम और साहित्य (कला) अधिक मिलता है। उनकी प्रत्येक पंक्ति कला की नौ रसों और भाव भीनी अभिव्यक्तियों की नाजुक रंगीनियों में सराबोर है। चाहे वह मेरी कहानी हो चाहे 'भारत की खोज', चाहे वह पुत्री के नाम पिता के पत्र हों चाहे 'विश्व इतिहास की झलक' हो। प्रत्येक शब्द में उनका अन्तर्द्वन्द्व प्रतिध्वनित होता है। उनके हृदय की वेदना छलकती है। उनकी महत्त्वाकांक्षाएं अंगड़ाई लेती दिखाई देती हैं।

प्रकृति के इस अनोखे चितेरे के सम्बन्ध में एक बार डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था 'अपनी आत्म-कथा' या भारत की खोज अथवा विश्व इतिहास की झलक या भारत की एकता में उन्होंने आदमियों के,

पहाड़ा के प्रकृति म, बच्चा के पशु-पक्षिया और पुष्पा के क्या ही सुदर रेखाचित्र खीच हैं। बहुत-सी सुदर वस्तुआ के बारे म उन्हें ढेर सारा ज्ञान है '

और उनका शिशु प्रेम ता इतना व्यापक और प्रसिद्ध है कि उनका जन्म दिन ही बाल दिवस' क रूप म मनाया जाता है। वह विश्व के सभी बच्चा क चाचा नेहरू हैं। शकस वीक्ली प्रतिवष ससार क सभी दशो के बच्चा की अटपटी रगीन तस्वीरा की स्पर्धा आयोजित करता है। 3 दिसम्बर 1949 को प्रकाशित इसी पत्रिका के बाल विशेषाक म स्वय उन्होन लिखा था 'मैं ज्यादा से ज्यादा समय बच्चो के बीच बिताना पसन्द करता हू। उनके साथ रहकर कुछ समय के लिए यह भूल ही जाता हू कि कोई इतना बूढा हो गया है और उसका बचपन बीते एक युग गुजर चुका है "

नेहरू जी को यह बिलकुल पसन्द नही था कि बच्चा पर लम्बे लम्बे उपदेश और व्याख्यान थोपे जाए जैसा कि उनके बुजुग किया करते हैं। यह बात उन्ह बचपन म भी पसन्द नही थी। लोगा की आदत-सी बन जाती है कि वह अपने बच्चो के सामने बुद्धिमानी का मुखौटा लगाए रह

बच्चे ही देश के भविष्य होते हैं और उन्ह ही यदि हम उचित और अच्छी शिक्षा न दें तो फिर देश का क्या बनेगा। नेहरू जी को इसकी बडी चिन्ता थी।

इसी प्रकार उनका भावुक हृदय पशु पक्षियो के दु ख दद का मरहम बना और उसके सुख से नाचा उनका मन प्रति-पल, प्रति छन जेल क दिना म वह एक बार स्वय अस्वस्थ थे और साथ ही वह करते थे तीमारदारी एक पिल्ले की भी। लखनऊ जेल म जब वह पढा करते थे तो बिलकुल बिना हिले-डुले काफी समय तक बठे रहते थे। तब एक गिलहरी उनके पाव पर चढ आती थी और उनके घुटने पर बैठकर निहारा करती थी नेहरूजी को। जब उसे यह भान होता कि वह कोई वक्ष या कोई अन्य जड-वस्तु न होकर एक जीवित पुरुष है तो 'तुरन्त फुदक कर चली जाती थी और इस गलतफहमी का यह ड्रामा दिन म न जाने कितनी बार खेला जाता

था। नेहरू जी उन बेजबानों के कौतुकों को देखते और आत्मविभोर हो जाते जैसे कोई भावुक कवि हृदय प्रकृति के इन करतबों को देख विह्वल हो जाय।

जबान अर्थात भाषा के मामले में नेहरूजी का व्यक्तिगत विचार था कि पूरे देश की एक सामान्य भाषा होनी चाहिए, शायद इसीलिए भाषावार प्रान्तों की रचना व्यक्तिगत तौर से उन्हें पसन्द नहीं थी। उनका खयाल था कि देश की एकता और देशवासियों की भावात्मक एकता के लिए सारे देश की भाषा एक होना अत्यन्त आवश्यक है परन्तु साथ ही उनका मत था कि हिन्दी अथवा कोई भी अन्य भाषा जबरदस्ती उन लोगों के गले के नीचे नहीं उतारना चाहिए जो उसे जानते नहीं, क्योंकि जबरदस्ती से उनके विचारानुसार, उस भावना का हनन हो जाता है जिसे इस अभियान द्वारा प्राप्त करना लक्ष्य होता है।

अंग्रेजी की तरफ ज्यादा रुझान होने के बावजूद नेहरूजी स्वयं अच्छा हिन्दी बोलते थे और लिखते थे। जहां उन्होंने हिन्दी को अहिन्दी भाषियों पर थोपने पर एतराज किया, वहां राजाजी के हिन्दी विरोधी आन्दोलन का पक्ष भी कभी नहीं लिया।

200 वर्ष पूर्व का समय था। औरंगजेब की मृत्यु हो चुकी थी। मुगल साम्राज्य का सूर्य अस्त हो रहा था। फर्रुखसियर दिल्ली में उस पतनशील राज्य का बादशाह था। फिर भी था तो बादशाह ही। एक बार काश्मीर गया जहां उसकी पारखी दृष्टि संस्कृत और फारसी के विद्वान पंडितराज कौल पर पड़ी और उन्हें वह अपने साथ दिल्ली ले आया। दिल्ली में उन्हें बादशाह की तरफ से एक मकान और कुछ जागीर 'अनआम' फरमाई गई। मकान चूंकि नहर के तट पर था। पंडित राज कौल नेहरू कहलाए जाने लगे और कालांतर में उनके नाम से 'कौल' लुप्त हो गया। यह बात है सन् 1916 के आसपास की।

फिर मुगल राज्य की तरह नेहरू परिवार के वैभव का भी अन्त हो गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू के परदादा पंडित लक्ष्मीनारायणजी कम्पनी बहादुर की तरफ से दिल्ली के नाममात्र दरबार में वकील थे, और उनके

सुपुत्र प० गगाधर नहरू 1857 की क्रान्ति के पूव तक दिल्ली के शहर कोतवाल रहे। कौन कह सकता था, कि उस शहर-कोतवाल का पोता, सिर्फ 90 वर्षों क बाद दिल्ली म ही पूरे देश की बागडोर सभालेगा।

1857 की क्रान्ति क समय नेहरू परिवार दिल्ली से हटकर आगरा जा बसा। वहीं प० मोतीलाल नहरू का जन्म हुआ (6 मई 1861)। क्या सयोग था, इसी दिन भारत म एक और सितारा उदय हुआ जिसन विश्व साहित्य मे रवि बनकर अपने प्रकाश से सारे ससार को आलोकित कर दिया। प० मोतीलाल अत्यन्त मेधावी और नामीग्रामी वकील हुए जिन्होने अपनी वकालत म ही पैसा और नाम कमाया। पहले कानपुर की छोटी अदालतो में अपने को आजमाया और फिर बाद मे इलाहाबाद के हाईकोर्ट म जम गए। और यहीं इलाहाबाद म 14 नवम्बर, 1889 मार्ग शीर्ष वदी सप्तमी, स० 1948 वि० को जवाहर लाल का जन्म हुआ।

प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। माता स्वरूपरानी ने उन्हें रामायण महाभारत और पुराणो की कथाए सुनाइ। एक वृद्ध पडित जी ने उन्हें हिन्दी व सस्कृत पढाई। मुशी मुबारक अली ने फारसी पढाने के साथ साथ 1857 के स्वतन्त्रता सग्राम के वीरो की कहानियाँ भी सुनाइ। अग्रेज अध्यापक मिस्टर बुक्स ने अग्रेजी की शिक्षा दी। पर वह शिक्षक कम, थ्योसफी के प्रचारक अधिक थे। जिसके कारण बालक जवाहर लाल पर थ्योसफी के द्वारा आध्यात्मिक प्रभाव भी पडा। उन्हीं दिनो श्रीमती ऐनी बेसन्ट को भी खूब सुना। घुडसवारी, तैरना और टेनिस आदि का शौक उन्हें शुरू से ही रहा जो अन्त तक रहा।

पन्द्रह वर्ष की आयु मे युवक जवाहरलाल इग्लण्ड के 'हैरो' म दाखिल हुए। वहा पील, पामस्टन वाल्डविन और चर्चिल जसी इग्लण्ड की प्रख्यात विभूतियाँ शिक्षा प्राप्त कर चुकी थी। हैरो म वह अकेले अकेले से रहे पर जब कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज मे पहुचे तब उन्हें यह अनुभव करके खुशी हुइ कि अब वह एक 'अण्डर-ग्रेजुएट' है। कैम्ब्रिज मे तीन साल रहे। यह समय 1907 के आसपास का था। भारत मे राजनतिक उथल पुथल मची हुई थी। एक प्रश्न उनके मन प्राण को परेशान कर रहा था कि 'कौन सा करियर' चुना जाए। कुछ समय तो इग्लण्ड सिविल सर्विस की भी बात मन

म आई परन्तु वह विचार केवल विचार ही रहा। इण्डियन सिविल सर्विस के लिए भी, तब काफी समय था, उपाधि तो मिल गयी थी बीस वर्ष की अल्पायु म ही। आई० सी० एस० करने के लिए उन्हे चार वर्ष और रुकना पडता जबकि न तो वह स्वय ही चाहते थे और न ही उनके माता पिता, अत बैरिस्ट्री पास करके, सात साल विदेश मे रहकर वह 1912 म स्वदेश लौट आए।

स्वदेश लौटे और पिता के साथ ही बैरिस्टरी शुरु कर दी। इसी बीच में उनका विवाह कमला जी से हो गया। कमला जी अत्यन्त सुशील, आदर्श और समर्पित महिला थी। विवाह के दो वर्ष पश्चात ही उनके यहा जन्म हुआ इन्दिरा जी का। आनन्द भवन मे आनन्द ही आनन्द छा गया।

परन्तु वह आनन्द अधिक समय तक टिक न सका। जवाहरलाल जी के अन्दर के युवक मे कुछ कर गुजरने का सस्कार विदेश से ही आया था। वहा भी देश की दुर्दशा स वह चिन्तित रहते थे। यहा आकर वकालत म उनका मन नही लगा। कचहरिया म एक व्यक्ति के मुकदमे की पैरवी करने के बजाए तो कांग्रेस के मच से सम्पूर्ण भारत की पैरवी करना कही बेहतर है उन्होन सोचा और वह काग्रेस के सदस्य बन गए। 1912 म प्रतिनिधि के रूप म उन्होन बांकीपुर काग्रेस मे भी भाग लिया। परन्तु लखनऊ अधिवेशन ने तो उनके जीवन की दिशा ही मोड दी क्योकि वहा हुए दर्शन महात्मा गाधी के। उनके सम्बन्ध म वह काफी पढ और सुन चुके थे। जब देखा तो उनम प्रभावित हुए बिना न रह सके। उन दिनो काग्रेस म दो दल—नरम दल और गरम दल थे। जवाहरलाल जी का रुझान शुरु से ही गरम रहा। पर मोतीलाल जो नरमी म विश्वास करते थ। यहा अन्तर था रक्त का—नये पुराने रक्त का। रूस म हो रही प्रत्येक हलचल स जवाहरलाल पूर्ण रूप से परिचित थ। पर गाधी जी के प्रभाव से भी वह मुक्त नही थे।

प्रथम महायुद्ध समाप्त होने क बाद अग्रेजो ने अपने वायदे के अनुसार भारत सरकार म कुछ 'सुधार' लाने के बजाय 'रालट एक्ट' पास कर दिया जिसके अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को मात्र 'सन्देह' पर ही अनिश्चित काल के लिए बन्दी रखा जा सकता था। इस अप्रत्याशित प्रहार का उत्तर दिया गाधी जी ने देशव्यापी आन्दोलन स और तभी हुआ जलियावाला बाग का

निमम हत्याकाण्ड । जिसने सारे देश के मानस को झकझोर कर रख दिया ।

फिर चली आन्दोलन और संघर्षों की आंधी । जल यात्राएं धरने और गिरफ्तारियां भाषण और लाठीचार्ज । विदेशी वस्त्रों की होलियां और जुलूसों का लगातार सिलसिला जिससे सारा भारत एक ही रंग में रंग गया आजादी की उमंग का रंग

और जब देश आजाद हुआ तो देश की जनता ने एकमत होकर जवाहर लाल जी के ही हाथों में देश की बागडोर सौंप दी । स्वतंत्र भारत का नक्शा बदलने के लिए उन्होंने कमर कस ली । उन्होंने पूरी तरह से यह तथ्य जान लिया था कि आज की औद्योगिक दौड़ में अगर हम पीछे रहे तो संसार में हमें कोई भी पूछेगा नहीं । इसलिए बड़े-बड़े कारखानों की चिमनियां धुआं उगलने लगीं । हर क्षेत्र में आर्थिक आत्मनिर्भरता लाने के लिए देश नायक जवाहरलाल नेहरू ने बड़े-बड़े बांध, पनबिजली परियोजनाओं लोहे और रासायनिक खाद के कारखानों का जाल बिछा दिया और देश की परमाणु शक्ति की ओर ले जाना बेहतर समझा । उनके लिए यही सब आधुनिक मंदिर थे जहां से देश को शक्ति और प्रेरणा मिली ।

राजनीतिक क्षेत्र में भी शांति और तटस्थता का मार्ग अपनाकर उन्होंने संसार के सम्मुख जिन्दगी का नया दर्शन प्रस्तुत किया । उनका पंचशील सिद्धांत सारे विश्व में गूंज गया ।

कि तभी हमारी तरक्की के बीच में आकर हमारे पड़ोसी देश चीन ने हमारे देश की पीठ में छुरा घोंप दिया । चीन के इस अप्रत्याशित आक्रमण का भी वीर जवाहर लाल ने मुंहतोड़ जवाब दिया और शांति युग का यह प्रधान मन्त्री नेता युद्ध काल के समय भी उतना ही खरा उतरा । अहिंसा और शांति के इस अग्रदूत ने देश के दुश्मनों को ललकारा और उसके हवाई महल चकनाचूर कर दिए ।

और इस असाधारण नेतृत्व के उपलक्ष्य में 1955 में देश ने अपने प्यारे नेता के गले में 'भारत रत्न' की माला पहना दी । भारत रत्न से जवाहर लाल का गौरव बढ़ा या भारत रत्न का यह सभी जानते हैं ।

27 मई 1964 का दिन के तीन बजे यह प्रिय नेता हमसे सदा सदा के लिए बिछुड़ गया परन्तु वास्तव में वह हमसे बिछुड़ा नहीं, वह तो देश के

कण कण म समा गया था।

आज धरा भी कापी है
और रोया है वह खाली आकाश फिर
ता फिर हम धैय कहा स लाए
समझाए भी तो क्या कहकर समझाए
कुछ समझ सही आता दीदी
क्या करें, क्या न करे
वस, काश हम हिरन बन जाए
और विचरा करे उस वन मे
जा उगगा शाति घाट पर

नही
वह तो कहत थे
हम बढाना है भारत को
बदलने है नक्शे उसके
तो फिर हम हिरन नही बनेंग
हम बनायेंगे पुल, रास्त रलो के लिए
नए से नए करेंगे आविष्कार हम
और पलट देंग काया दश की हम
वह नही ता क्या गम दीदी
अब धरा स, हर से अकुर स
नेहरू उगेंगे, हसेंग नेहरू
चलेंग नहरू, उडेंगे नेहरू

लेखक द्वारा नेहरू जी के निधन के ही दिन उनकी बेटी श्रीमती इन्दिरा गांधी को शोक सन्देश के रूप म उक्त कविता प्रषित की थी। उसी कविता का एक अश।

डॉक्टर भगवानदास—1955

एक बार एक सज्जन गुरुदेव कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पास पहुंचे और दार्शनिक चर्चा छेड़ बैठे। गुरुदेव ने तुरन्त उनसे कहा, "आप मेरे पास यह सब पूछने क्या आए जबकि भगवानदास जैसे दार्शनिक बुद्धिमान योग्य महान पुरुष विद्यमान हैं ?" और वास्तव में डॉक्टर भगवानदास को राजनेता की अपेक्षा दर्शनशास्त्री के रूप में ज्यादा जाना-पहचाना जाता है। वह काशी विद्यापीठ के प्रधानाचार्य भी थे जो भारत में अपने राष्ट्रीय भावना के अध्ययन-अध्यापन के लिए अनोखा शिक्षा संस्थान समझा जाता है।

आपका जन्म 12 जनवरी, 1869 को हुआ था। पिता साहू माधवदास बनारस के प्रसिद्ध तथा गणमान्य साहूकार थे और उन्होंने जहां अपने पुश्तैनी पेशे-व्यापार में दक्षता प्राप्त की थी और नाम व धन कमाया था, वहां नागरी प्रचारणी सभा, कार्मिकल लायब्रेरी तथा सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना में भी हर प्रकार का सहयोग दिया था। वह अत्यन्त धर्मनिरपेक्ष तथा उदार व्यक्ति थे। कहां सर सैयद अहमद खां ! और कहां स्वामी दयानन्द ! ये दोनों उनके मित्र थे। वे प्रत्येक वर्ग के लोगों में परिचित थे और उनका आदर किया जाता था। लॉर्ड पैथिक लारेन्स, महाराजा कश्मीर, दीनबन्धु सी० एफ० ऐंड्रयूज फ्रांसीसी लेखक मोनशायर शेवरिलन, जापान के विद्वान श्री एकाई कावागूची, चीन के साहित्यकार लिन यू तांग आदि से उनकी मित्रता थी। स्वामी श्रद्धानन्द सर जगदीश चन्द्र वसु और श्यामसुन्दर दास आदि से उनकी घनिष्ठता थी।

उनका परिवार 16वी शताब्दी म अग्रोहा (हरियाणा) मे दिल्ली आया। फिर हुमायू की फौज के साथ पूर्वी उत्तर प्रदेश म मिर्जापुर जिले के चुनार और आहूरा नामक कस्बा म बस गया था फिर कालातर म वह लोग बनारस चले गए थ। 18वी सदी म वह लोग कुशल व्यापारी के रूप म विख्यात हो गय थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी स उनका बडा चलन था और उनका व्यापार सूरत बम्बई, मद्रास और मसुलीपटनम तक फल गया था। अग्रेजो के वह लोग बक्स (साहूकार) थे और मसुलीपटनम म उनकी अपनी टकसाल तक थी। टीपू के विरुद्ध अग्रेजो के साथ सरगापटनम के युद्ध भी लडे थे और युद्ध मे नाम के साथ साथ दौलत भी अर्जित की थी जिसके आधार पर कलकत्ता म बडा बाजार बनवाया। वहा 'मनोहरदास स्ट्रीट' आज भी उनके परिवार की याद दिलाता है। कलकत्ता का 'मैदान' जो अब विधान चन्द मैदान कहलाता है भगवानदास के पूवजो के उदार अनुराग का ही एक नमूना है।

उन दिनो फारसी और उर्दू का रिवाज था, इसलिए बालक भगवान दास का बचपन मे फारसी व उर्दू की ही शिक्षा दी गई और छोटी-सी आयु मे ही उन्होने शेख सादी के गुलिस्ता बोस्ता पर महारत हासिल कर अपनी तीव्र बुद्धि का परिचय दे दिया था। परिवार और शहर बनारस के वातावरण को देखते हुए उन्हे सस्कृति भी पढ़ाई गई यद्यपि परम्परा के अनुसार उन दिनो सस्कृति केवल ब्राह्मणो को ही पढने की 'आज्ञा' थी।

सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा स्थापित स्कूल म शिक्षा ग्रहण की फिर गवनमट क्वीन्स कालिजियेट स्कूल मे भरती हुए और केवल 12 वष की आयु म ही उन्होने हाई स्कूल परीक्षा पास कर ली जिसे उन दिनो 'इन्ट्रन्स' कहा जाता था। एफ० ए०(इन्टरमीजिएट) म उनके विषय थे— नागरिक शास्त्र अग्रेजी, सस्कृत, मनोविनान तकशास्त्र गणित तथा इतिहास। और बी० ए० म अग्रेजी, सस्कृत तथा दशनशास्त्र। उनके जमाने म इलाहाबाद का विश्वविद्यालय स्थापित नही हुआ था और बनारस का क्वीन्स कॉलिज कलकत्ता विश्वविद्यालय स सम्बद्ध था। इन्ट्रन्स स एम० ए० तक भगवानदास जी सदा ही विशेष योग्यता के साथ परीक्षाए पास करते रहे।

अंग्रेज सरकार द्वारा हिन्दुओं से हरिजनों (अछूतों) को अलग करने की चाल का विरोध किया गया। इसी विरोध के समर्थन में महात्मा गांधी ने आमरण अनशन भी शुरू कर दिया था। परन्तु एक विशेष समझौते के पश्चात अनशन समाप्त हो गया था। तब गांधीजी पूना की यरवदा जेल में थे। उसी वर्ष 1932 में गांधीजी ने भगवानदास जी को बुलाया और एक शोधपूर्ण कार्य सौंपा कि वे यह प्रमाणित करें कि हरिजनों का मन्दिरों में प्रवेश करना कोई धार्मिक हानि नहीं है। भगवानदास जी ने बहुत ही विद्वत्तापूर्ण ढंग से हिन्दू ग्रन्थों और धर्म की कई प्रामाणिक बातों से सिद्ध कर दिया कि हरिजन हिन्दुओं का ही एक अंग है और मन्दिरों में उनके प्रवेश से हिन्दू धर्म को रत्ती भर भी नुकसान नहीं होगा भ्रष्ट नहीं होगा धर्म।

और जेल से गांधीजी के छूटते ही देशव्यापी आन्दोलन शुरू कर दिया गया। हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश दिलाया जाने लगा। परन्तु उन्हीं दिनों सार्वजनिक चुनाव की बात खड़ी हुई। सरकार ने चुनौती दी कि कांग्रेस सिर्फ शोर करना ही जानती है। चुनाव के लिए जनता के सामने आने का साहस उसमें नहीं है। हो सकता है इस चुनौती के पीछे सरकार की यह चाल हो कि अछूतोद्धार और अछूतों द्वारा मन्दिरों में प्रवेश पाने का आन्दोलन फीका पड़ जाएगा। चुनाव लड़े गए और भगवानदास जी को भी केन्द्रीय विधान सभा में जाना पड़ा। परन्तु विधान सभा का वातावरण उनके लिए बिलकुल अनुकूल नहीं था। फिर भी उन्होंने विधान सभा में अपना फर्ज निभाया। वह सदा समय से आते थे और समय से जाते थे। जब भी सभा में उनकी उपस्थिति अनिवार्य होती तो अवश्य मौजूद रहते। शायद ही उन्होंने कभी लम्बा भाषण दिया हो। वह जितने अच्छे लेखक थे पर उतने अच्छे वक्ता नहीं थे। आशु भाषण देने का तो उन्हें अभ्यास था ही नहीं। जब भी उन्हें बोलना होता तो वह अपना भाषण बड़ी मेहनत और जतन से तैयार करते और उसे लिख लेते। एक बार विवाह की आयु निर्धारित करने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत होना था। उसके लिए उन्होंने अनेक पुराने ग्रन्थों का मनन किया और पूरी खोजबीन के पश्चात् अपना भाषण तैयार किया। 1946 में विधान परिषद के लिए जब उन्हें आमन्त्रित किया

तब उन्होंने इन्कार कर दिया था।

15वें वर्ष में भगवानदास जी का विवाह हुआ एक साधारण अध्यापक की पुत्री से। उनके परिवार में बड़प्पन का पैसे की तराजू में नहीं तोला गया। बल्कि चरित्र और गुणों से आंका गया और एक रईस बाप शाह माधवराम ने अपने बेटे के लिए एक साधारण अध्यापक की गुणवती सुशील कन्या चुनी। उनकी दृष्टि में अध्यापक समाज का अधिक सम्मानित सदस्य था और उस रिश्ते में उन्होंने गर्व अनुभव किया था।

भगवानदास जी ने शुरू शुरू में आठ वर्ष सरकारी नौकरी की। गाजीपुर, कचनपुर व इलाहाबाद की तहसीलों में तहसीलदारी करने के पश्चात वे आगरा और बाराबंकी में डिप्टी कलेक्टर भी रहे। अपने पिता के निधन के पश्चात् उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। जब वह इलाहाबाद में तहसीलदार थे, उनका परिचय थ्योसफी आन्दोलन की सक्रिय नेता डॉक्टर ऐनी बसन्ट से हो गया। थ्योसफी के मतानुसार आध्यात्मिक विचारधारा का मूल स्रोत भारत है। डाक्टर ऐनी बेसेन्ट से भगवानदास जी अत्यन्त प्रभावित हुए और थ्योसफी आन्दोलन में सक्रियता से भाग लिया। उन्हीं के साथ भगवानदास जी ने भारत भ्रमण भी किया। उनका मत था कि बच्चों को धर्म की शिक्षा अवश्य देनी चाहिए। वह कहते थे, अंग्रेजी में थ्री आर्स के बजाय चार आर' [रीडिंग (पढ़ना), राइटिंग (लिखना), अरिथमेटिक (गणित) और चौथा रिलीजन (धर्म)] भी होना चाहिए।

डॉक्टर भगवानदास जी की सक्रियता का ही फल था कि थ्योसफीकल सोसाइटी का प्रधान कार्यालय मद्रास से बनारस पहुंच गया और डाक्टर ऐनी बसन्ट भी बनारस रहने लगीं। बनारस में उनके ही सबल सहयोग से सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना हो सकी और उक्त सोसाइटी का व्यापक प्रचार हो पाया। उन दिनों प्रायः प्रत्येक बुद्धिजीवी इस आन्दोलन की लहर से प्रभावित हो चुका था।

वे स्वयं एक हृष्ट पुष्ट और कसरती पुरुष थे। नित दण्ड बैठक लगाते और गदा व मुग्दर भांजते थे। वह अपनी बग्गी (घोड़ागाड़ी) स्वयं चलाते थे और यह आदतें उनकी काफी उम्र तक उनके साथ रहीं। एक आकर्षक और मिलनसार व्यक्तित्व के मालिक होने के कारण सभी उनसे मिलने और

उनके बुद्धिमय साहचर्य से लाभान्वित होने के लिए उत्सुक रहते थे।

उनका निशाना अच्छा और सधा हुआ था। पर वह शिकार नही खेलते थे। एक बार एक बड़ा बन्दर मारा था जो बहुत खतरनाक हो गया था। दूसरी बार उन्होने एक उल्लू को मार गिराया था। एक सुबह वह दांत साफ कर रहे थे तो एक उल्लू उनके सिर पर बैठ गया और अपने पंजो से उनके सिर को घायल कर गया था। उन्हें संगीत पसन्द था और सितार पर भक्ति गीत सुनने का बहुत शौक था। इसके अलावा उन्हें कव्वाली भी पसन्द थी।

तीस वर्ष की आयु मे उनकी प्रथम पुस्तक 'भावनाओ का विज्ञान' (साइंस आफ इमोशन्स) प्रकाशित हुई और उसके पश्चात उन्होने अपनी 85 वर्ष की आयु तक दर्शन की अनेक पुस्तको की रचना की। अंग्रेजी मे विशेष दक्षता होने के कारण अधिकतर अंग्रेजी मे ही लिखा, जिसने भारत ही नही अपितु विदेशो का भी ध्यान उन्होने अपनी ओर आकर्षित किया। अपने मित्रो के आग्रह पर कई पुस्तकें हिन्दी मे भी लिखी।

वास्तव मे भगवानदास जी की रुचि राजनीति मे कभी भी नही रही और उन्हें राजनेता अथवा राजनीतिज्ञ समझना सरासर भूल होगी। फिर भी उनके कुछ अपने विचार थे, जैसे वह अपने देश के ब्रिटेन से राजनैतिक सम्बन्धो के पक्ष मे थे। वह इस मत से सहमत थे कि भारत तथा ब्रिटेन का एक प्रकार का सामान्य मण्डल हो। आज का बहुचर्चित तथा स्थापित शब्द 'कामनवल्थ' सबसे पहले डाक्टर ऐनी बेसेन्ट के ही मुख से निकला था जिसका समर्थन डॉक्टर साहब ने भी किया।

भगवानदास जी के सम्बन्ध अंग्रेज अधिकारियो से सदा ही मधुर रहे परन्तु उन्होने उनके साथ विचार विमर्श करते समय अपने देश के पलड़े को हलका नही होने दिया। हिन्दू मुस्लिम एकता के वह सदा पक्षपाती रहे। जब कभी भी कोई दंगा हो जाता तो वह अपनी जान हथेली पर रख वहां जा पहुंचते और शांति स्थापित करते। कानपुर के साम्प्रदायिक दंगा की खोजबीन करने के लिए कांग्रेस ने अपने कराची अधिवेशन मे जो समिति बनाई थी उसकी अध्यक्षता डॉक्टर भगवानदास जी को ही सौंपी गई थी, और जिसकी रिपोर्ट प्रकाशित होते ही तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने जब्त

कर ली थी। देश के विभाजन से भी उन्हें बहुत पीड़ा पहुंचाई थी। इसी प्रकार विदेश में होने वाला भारतीयों के प्रति दुर्व्यवहार से भी वह दुःखी होते थे। वह इस बात पर भी आक्रोश था कि जिन भारतीयों को अंग्रेज किसी काम के खातिर अपने उपनिवेशों में ले जाते थे वे उन्हें अशिक्षित ही रखते थे उनके साथ गुलाम से बदतर व्यवहार करते थे और उन बेचारे प्रवासियों का सम्बन्ध हमेशा-हमेशा के लिए अपने देशवासियों से तोड़ दिया जाता था। यह उल्लेखनीय है कि इन्हीं अभागे भारतवासियों ने अपने देश की मिट्टी छोड़कर अंग्रेजों के साथ उन उपनिवेशों को बनाने सवारने में अपनी जानें खपाई थीं और इसके बदले में अंग्रेजों की यह कृतघ्नता उन्हें मिली थी। मारिशस, सूरीनाम, फीजी आदि में बसे भारत मूल के लोगों की आप बीतियां इसकी साक्षी हैं।

भगवानदास जी राजनीति में भाग लेते थे फिर भी उनका वास्तविक क्षेत्र दर्शन एवं शिक्षा ही रहा। उनके राजनीतिक लेखों में भी दर्शन एवं अध्यात्म झलकता था। वह यह प्रमाणित करना चाहते थे कि भारत के लोग शुरू से ही स्वतन्त्रताप्रेमी रहे हैं। स्वतन्त्रता की ललक अथवा यह विचारधारा उनकी अपनी मौलिक है न कि अंग्रेजी शिक्षा की देन है। उनका कहना था कि आजादी का मतलब आत्मा की स्वच्छन्दता से है, जो विदेशी प्रभुता के कारण बंधी बंधी है। वैसे वह स्वतन्त्रता मिल जाने के पश्चात जीवन के भौतिक पक्ष से सन्तुष्ट नहीं थे क्योंकि इस राजनैतिक स्वतन्त्रता में उन्हें आध्यात्मिक स्वच्छन्दता का आभास नहीं हुआ।

जब राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों की स्थापना की गई तो अन्य स्थानों के साथ काशी में भी काशी विद्यापीठ की स्थापना की गई और उस शिक्षा संस्थान में डाक्टर भगवानदास को अपनी रुचि का काम मिल गया। वह उसमें पढ़ाने लगे और उसके प्रिंसिपल भी हो गए।

उनका विचार था कि राज्य की सारी शक्तियां एक स्थान पर केन्द्रित न होकर पंचायतें हों जिनकी अपनी सीमित शक्तियां हों। इसी प्रकार चुनाव के बारे में उनके विचार में मतदाता की आयु 25 वर्ष (पुरुष) और 21 वर्ष (स्त्री) से कम नहीं होनी चाहिए। साथ ही मतदाता की योग्यता को भी सावधानी से देख-परख लेना जरूरी है। मतदाताओं को शिक्षित

और जनसेवा की भावना से ओतप्रोत होना चाहिए। उनमें स्वार्थ कम और जनहित का ध्यान ज्यादा होना चाहिए। भगवानदास जी का कहना था कि उम्मीदवार को इतना जनप्रिय होना चाहिए कि उसे अपने प्रचार की आवश्यकता ही न पड़े। उसमें इतनी योग्यता और जनसेवा के प्रति इतनी निष्ठा होनी चाहिए कि जनता स्वयं उसे चुने। भगवानदास जी के मतानुसार कानून बनाने का काम बिलकुल स्वार्थहीन जनसेवकों के हाथों में सुपुर्द कर देना चाहिए। क्या इन विचारों में चाणक्य ध्वनित होता नहीं लगता?

वह स्वयं जब बनारस म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन रहे तब अपने प्रिय विषय शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने प्राइमरी कक्षाओं में तकली व चरखा कातने की शिक्षा आरम्भ की। राष्ट्रीयता, देशभक्ति तथा अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषयों को लेकर अच्छी बालोपयोगी पुस्तकें तैयार कीं। उन दिनों बनारस में दाइयों का काम चमार स्त्रियां करती थीं जो अशिक्षित होने के कारण प्रसव कार्य गंदे और फूहड़ तरीके से किया करती थीं जिससे नवजात शिशु तथा उसकी मां को अनजाने में ही कई रोग लग जाते थे। भगवानदास जी ने मानवता के इस मौलिक प्रश्न पर हाथ रखा। उन्होंने प्रत्येक दाई को प्रसव करने की बाकायदा शिक्षा दिलवाई और साफ कैंची, बर्तन आदि उपयोग करने को कहा ताकि बच्चा पैदा होते ही किसी गलत बीमारी का शिकार न हो जाए।

भगवानदास जी का स्वाभिमान प्रशंसनीय था। वह खादी पहनते थे। उनका परिचय जहां देश के महान नेताओं से था वहां अंग्रेज अधिकारी भी उनका सम्मान करते थे। बहुत से अंग्रेज कमिश्नर उनके निवास स्थान पर उनसे मिलने जाते थे। प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन के बहिष्कार के सम्बन्ध में जिन अंग्रेज अधिकारियों ने उन्हें एक वर्ष का कारावास दिया था वह भी उनसे मिलने आते थे। एक बार, जब वह म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष थे उन्हें तत्कालीन कमिश्नर का पत्र प्राप्त हुआ। पत्र की भाषा किंचित फूहड़ थी। भगवानदास जी ने पत्र की मूल प्रति पर ही यह लिखकर पत्र वापस कर दिया कि 'उचित भाषा न होने के कारण मूल पत्र वापस किया जाता है। पत्र वापस पाकर दूसरे दिन कमिश्नर स्वयं भगवानदास जी के

पास आया और बताया कि उसकी भाषा से उसका व्यक्तिगत रूप से किसी प्रकार का दुभाव नही था।

उनके विचार के अनुसार म्युनिसिपल सस्थाए सरकार की गुलाम नहीं होनी चाहिए। वे अपने आप म स्वतन्त्र एव स्वायत्त होनी चाहिए। उनके सम्मुख आयरलण्ड म सिटी आफ काक के मेयर टेरेंस मकस्विनी का आदर्श रहता था जिसने अंग्रेजो के अत्याचारो के समक्ष झुकने के बजाय भूख हड़ताल कर प्राण त्यागना ज्यादा अच्छा समझा था। वह प्रशासन म अत्यन्त कुशल और तीव्र थे। बडी से बडी और पचीदा सचिका भी वह तुरत निपटा देते थे। उनकी हस्तलिपि बहुत सुन्दर थी और अधिकतर सचिकाओ पर टिप्पणिया वह स्वय लिखते थे। चेयरमैनी के ही काल म उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद तैयार किया था जिसम डॉक्टर एनी बेसेन्ट का भी बडा सहयोग रहा था।

विचारो के मामले म भगवानदास जी को पुरातन ही कहा जा सकता है पर वह कट्टरपथी न थे। वह वर्णो मे विश्वास रखते थ। और उनका विश्वास था कि मानवता के कल्याण तथा स्थिरता के लिए मनुस्मृति म जो चार वर्ग (ब्राह्मण क्षत्री, वश्य शूद्र) बनाए गए थ, ठीक उसी प्रकार से मानव जीवन को चार आश्रमो मे विभक्त किया गया है।

उनके अपने जीवन म भी कुछ इसी प्रकार हुआ था। 20 वर्ष तक उन्होने शिक्षा अर्जित की थी फिर व सरकारी नौकरी म चले गए थे। जिसे आठ वर्षों के बाद छोडकर समाज व लोकसेवा शुरू कर दी थी। लगभग 57 वर्ष की आयु के बाद उन्होंने इस प्रकार के कामो स भी हाथ खींच लिया और मिर्जापुर जिले म चुनार म अपना मकान बनवाकर शातिपूर्वक रहना शुरू कर दिया। यह स्थान बनारस से निकट ही है। इस प्रकार वे वानप्रस्थ आश्रम म आ गए थ किन्तु स्वय को सदा ही गृहस्थ मानते रहे। व ज्योतिष म विश्वास करते थे। परिवार म जब कोई बच्चा जन्म लेता तो उसकी जन्म पत्री विधिवत बनवाते। उन्होंने अपना भी वर्षफल निकलवाया था। व अपने स्वप्नो का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन करते थे। उनके पास एक डायरी थी जिसम उन सपनो को लिख लेते थे।

व कहते थ पर भावुक नही थे, बल्कि अत्यन्त व्यावहारिक थे। उनका

कहना था, 'इसमे स देह नही कि मैं वेदात दशन का मानता हू पर इसका यह मतलव भी नही कि आप मरी जीभ पर पिसी हुई तज और तीखी मिर्चे रख दें और मुझे उसका तीखापन महसूस न हो।" अपने पौत्र तथा बहू के निधन पर उनका दु खित होना स्वाभाविक था। अपन पौत्र की मत्यु का प्रभाव उन पर बहुत गहरा पडा। उसकी बीमारी क दिना म ही उ होने सब कुछ छोड दिया था और उसके दहान्त के पश्चात वे स्वय चारपाई से लग गए थे। इसी अन्तराल म लगभग 32 (बत्तीस) बार उ ह दिल का दौरा पडा, जी हा, बत्तीस बार ! आम तौर स माना जाता है कि तीसरा दौरा ही जानलेवा होता है पर भगवानदासजी ने इतन सारे दौर झेले और हमशा थाडी बेहोशी के बाद होश म आ गए। और अ त म दिल क दौरे क कारण उनकी मृत्यु नही हुई। उनका देहात ऐसे हुआ कि उनके गुर्दे फेल हो गए थे।

हर चीज को करीने और सही ढग से रखने का विशेष चाव था। उनकी अलमारियो म पुस्तकें लगी रहती थी जिनमे से प्राय सभी वे पढ चुके थे और उ ह यह भी याद रहता था कि पुस्तक कहा है। पुस्तके पढना और उ ह पढकर कागज पर सु दर हस्तलिपि म साफ साफ नोट करना उनकी हाबी थी। यदि किसी पुस्तक म उन्हे व्याकरण सम्ब धी कोई अशुद्धि मिल जाती तो तुरन्त उसे वही ठीक कर देते। पर इसक अलावा उन्होने पुस्तको के हाशिया पर कभी कुछ नहीं लिखा। उनकी सारी पुस्तकें इतनी अच्छी रहती थी कि लगता था कि नई हो।

उनकी घडी कलम, दवात, छतरी आदि सभी चीजें अपन निश्चित स्थानो पर रखी जाती थी। इस व्यवस्था म उ ह किसी प्रकार व्यवधान कतई पस द नही था। अपनी मत्यु से पहल उन्होंने अपनी पुस्तको का विशाल भण्डार हि दू विश्वविद्यालय और काशी विद्यापीठ को दान कर दिया था।

वह कॉफी पस द करते थे और अ तम दिनो म वास्तव म वही उनका भोजन हो गया था। एक बार टण्डनजी ने उनसे पूछा

'बाबूजी ! यह आप क्या कर रहे हैं ?"

"मैं कॉफी पी रहा हू।"

कॉफी तो 'स्लो प्वायजन' (धीमा विष) है।"

'वास्तव में बहुत धीमा है। अब मैं 85 वर्ष का हो गया हूं।'

वैसे, वह अधिकतर गम्भीर ही रहते थे परन्तु टण्डनजी के साथ उनका यह मजाक अलग से चलता था। इसकी छूट सिर्फ टण्डनजी को थी।

1955 में प्रथम राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद के कर-कमलों द्वारा डाक्टर भगवानदास को 'भारत रत्न' से अलंकृत किया गया।

1958 में उनकी पुस्तक 'विविधार्थ' प्रकाशित हुई। सम्भवतः यह उनकी अंतिम रचना थी क्योंकि उसी वर्ष 18 सितम्बर की रात को आठ बजे भगवानदास भगवान के प्यारे हो गये।

डॉ० एम० विश्वेश्वरैया

—1955

आधुनिक भारत के विश्वकर्मा, महान् अभियन्ता डा० विश्वेश्वरैया का जन्म कर्नाटक के कोलार जिले के चिक्बल्लापुर गाव मे हुआ था। तारीख थी 15 सितम्बर, 1861। उनके पिता श्री श्रीनिवास शास्त्री ऊचे दर्जे के ज्योतिषी गुणवान वैद्य तथा धर्मपरायण प्राणी थे। विश्वेश्वरया उनकी दूसरी पत्नी के दूसरे नम्बर के पुत्र थे सब मिलाकर छ भाई बहन थे—चार भाई और दो बहनें। उनके अग्रज वेंकटेश शास्त्री ने अपने परिवार की परम्परागत शिक्षा प्राप्त की और अपने गाव मे ही पिता का काम सम्हाल लिया। सबसे छोटे भाई रामचन्द्र राव ने उच्च शिक्षा जारी रखी और बाद मे मैसूर उच्च न्यायालय के जज बने।

विश्वेश्वरैया की आरम्भिक शिक्षा चिकबल्लापुर के हाईस्कूल मे हुई। इसी बीच पिता का साया उनके सिर से उठ गया तो अपनी मा के साथ अपने मामा के यहा वे बगलौर चले गये। मामा श्री रमैया मैसूर राज्य मे नौकर थे। युवक विश्वेश्वरया ने वहीं बगलौर के केन्द्रीय कॉलेज मे आगे की शिक्षा के लिए प्रवेश पा लिया। वही उनकी प्रतिभा का भान कालेज के प्राधनाचार्य मिस्टर वाट्स को हो गया। उन्होने इस प्रतिभाशाली विद्यार्थी के उत्थान मे सहयोग भी दिया। उन्होने याद के तौर पर विश्वेश्वरैया को सोने के बटन (कफलिक्स) भी दिये थे।

विश्वेश्वरैया पढते थे और साथ मे अपने परिवार के भरण पोषण के लिए ट्यूशन भी करते थे। विश्वेश्वरैया ने जिन्हे पढाया है उनमे से मैसूर मेडिकल कॉलेज के प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक डॉ० सी० एम० मनजय्या

उत्तेयनीय है।

फिर उन्होंने पूना के कॉलेज ऑफ साइंस म शिक्षा आरम्भ की, उन दिनो उसे इन्जीनियरिंग कॉलेज कहा जाता था। शिक्षा के लिए मसूर राज्य से उन्ह छात्रवत्ति मिलती थी। पूना म वह प्रसिद्ध देशभक्त श्री गोविन्द रानाडे के सम्पक म आए। 1883 मे प्रथम श्रेणी म उन्होंने अभियन्ता की उपाधि प्राप्त कर ली आर तभी बम्बई (प्रान्त) सरकार ने लोक निर्माण विभाग म सहायक अभियन्ता क पद पर उन्ह नियुक्त भी कर लिया। पहले उनकी नियुक्ति नासिक म हुई थी।

अपनी कुशाग्र बुद्धि लगन और प्रतिभा के बल पर व मुख्य अभियन्ता के पद तक जा पहुचे जिस पद पर उस जमान मे अधिकतर अंग्रेजो का ही रखा जाता था। अपने सेवाकाल म उन्होंने सिचाई, स्वास्थ्य सम्बन्धी सफाई तथा जलपूर्ति का काय ही अधिकतर किया। इसके लिए उन्हें अदन भी भेजा गया। अदन म उनका काम वहा के स्थानीय अधिकारियो को पान व पानी के सम्ब ध म परामश देना था। इसके अतिरिक्त वम्बई सरकार म कोल्हापुर मे वाटरवर्क्स बनवाने, तथा सिन्ध (तब वह बम्बई प्रेसीडेन्सी म ही था) म बाढ रोकने के लिए सक्खर पर एक मजबूत बाध बनवाने का भी काम उन्ह सौंपा। सक्खर के बाध से वहा की स्थानीय जनता को स्थायी लाभ पहुचा। सडका सावजनिक भवना के बनाने और उनके रख रखाव मे डॉक्टर विश्वेश्वरैया का बहुत वडा हाथ रहा है। बेलगाव, धारवाड और बीजापुर आदि की जल प्रदाय याजनाए आज भी भारत के इस विश्व कर्मा के कला-कौशल की जिन्दा कहानिया है। इसी प्रकार पूना के पास खडक वासला का स्वचालित 'स्लाइस गेट' भी उनकी अभियन्तीय सूझबूझ का बेमिसाल नमूना है। उनके द्वारा तैयार की गई सिचाई की खण्ड प्रणाली की प्रशसा तत्कालीन भारतीय सिचाई आयोग के अध्यक्ष सर कालिन सी० स्टाक मानक्रिफ भी किये बिना नही रह सके थे। यह खण्ड प्रणाली बम्बई राज्य म अत्यन्त सफल हुई।

फिर भी केवल 24 वष की सरकारी नौकरी म ही उनका दम घुटने लगा। वह उस ब धन म मुक्त होकर देश को लक्ष्व क रोग से मुक्त करना चाहते थ और 1908 म उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया। उसके पश्चात

अध्ययन के लिए उन्होंने विदेश की यात्राएँ कीं। वह इटली में थे कि उन्हें लन्दन से इण्डिया आफिस के सचिव का पत्र मिला, जिसके साथ एक टेलिग्राम नत्थी था—' हैदराबाद और उसकी ड्रेनेज व्यवस्था को सुरक्षित करने और उसके सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए विश्वेश्वरैया की सेवाएं प्राप्त करने के लिए महामहिम निजाम उत्सुक हैं। यानी उन्हें तुरंत वापस पहुंचकर निजाम हैदराबाद के हुजूर में पेश हो जाना चाहिए। परन्तु वे अपनी यात्रा का क्रम नहीं तोड़ पाये। वे यूरोप घूमे, अमेरिका भी गये और इतने समय तक निजाम ने उनकी प्रतीक्षा की।

हैदराबाद में 1908 में बहुत भयानक बाढ़ आई थी। आगे बाढ़ से बचने के लिए हैदराबाद को सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित करने और उसकी ड्रेनेज प्रणाली में सुधार करने के पश्चात विश्वेश्वरैया ने हैदराबाद छोड़ दिया और वापस मैसूर चले गए। वहां उन दिनों सर वी० पी० माधवराव मैसूर राज्य के दीवान थे और विश्वेश्वरैया की प्रतीक्षा में थे कि वे कब हैदराबाद से मुक्त हों। सर माधवराव ने उन्हें मुख्य अभियंता का पद सौंपना चाहा था। पहले तो विश्वेश्वरैया राजी नहीं हुए। वह नौकरी करना नहीं चाहते थे क्योंकि वह तकनीकी शिक्षा को प्रोत्साहित करना चाहते थे जो नौकरी करते हुए नहीं हो पाता। अपने उद्योगपति मित्रों—विट्ठल भाई ठाकरसी और टाटा—के सहयोग से उन्होंने एक तकनीकी संस्थान की स्थापना की। परन्तु मैसूर के मुख्य अभियन्ता श्री एम० मैक्हुटचिन (M Mchutchin) के सेवा निवृत्त होने पर मैसूर को एक कुशल अभियन्ता की तीव्र आवश्यकता हुई और फिर विश्वेश्वरैया पर मैसूर के मुख्य अभियन्ता का पद का भार और साथ ही मैसूर राज्य रेलवे के सचिव का पद सौंप दिया गया जिसे वे मना नहीं कर सके। तब वे केवल 48 वर्ष के चुस्त 'युवक' थे।

मैसूर राज्य का दीवान होना उनके जीवन में अद्भुत संयोग था। उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि जहां वे छोटे से बड़े हुए, ट्यूशन कर-करके पढ़े वहां ही वे राज्य का सर्वोच्च पद संभालेंगे। यद्यपि रियासती शान शौकत और अभिजात वर्ग के ठसके में एक 'मामूली' इंजीनियर द्वारा राज्य का सर्वोच्च पद हथिया लेना अन्य लोगों को अखरा भी परन्तु विश्वेश्वरैया स्वयं इस ऊंचे सम्मान के लिए तैयार नहीं थे।

भारत के इतिहास म पहली बार मैसूर म जनता क प्रतिनिधियों की सभा सगठित की गई और प्रजात त्र का बीज बोया गया। प्रजा को इस योग्य बनाया गया कि वह राज्य के प्रशासन म दिलचस्पी ले सके। अधिक तर लोग गाव म रहते थे (अब भी रहते है) जहा सडकें नहीं थीं और सचार व्यवस्था न होने के कारण शिक्षा चिकित्सा तथा अय आधुनिक सुविधाओ म वे एक प्रकार स बिलकुल कटे हुए थे और सामान्य रूप से जागति स कोसो दूर थे। राज्य का राजस्व 2 5 करोड रुपये था परन्तु शिक्षा पर केवल 20 लाख रुपये प्रति वष खच किए जाते थे, अर्थात कुल जनसख्या म प्रति व्यक्ति पर रुपये का एक तिहाई भाग।

उन्होंने राज्य की राजनीतिक स्थिति को प्रतिष्ठा और मजबूती दी। 1881 मे जब महाराज को मैसूर राज्य की बागडोर सौंपी गई तब से वही शर्तें चली आ रही थी और सभी काय कलापो म अग्रेज सवशक्तिमान समझे जाते थे। विश्वेश्वरया राज्य के अग्रेज रजीमेण्ट सर ह्यू डली (Sir Hugh Daly) के सहयोग स त कालीन वायसराय लॉर्ड हार्डिंग स मिले और उपयुक्त विषय पर विचार विमश किया। फलस्वरूप अंग्रेजी राज्य स दुबारा सधि की गई जिसके अन्तगत महाराज को राज्य क आन्तरिक मामलों मे स्वतन्त्रता मिली और प्रशासन के अधिक अधिकार मिले। विश्वेश्वरैया ने राज्य मे दक्षता जाच प्रणाली भी शुरू की।

अपने मित्र विट्ठल ठाकरसी के सहयोग से बैंक ऑफ मैसूर की स्थापना की, जिसके कारण व्यापार के लिए धन उपलब्ध होने लगा और राज्य म मिलो की चिमनिया उभरने लगी। रेशम उद्योग को विकसित करने के लिए उन्होंने विशेषज्ञो का अध्ययनार्थ जापान तथा इटली भेजा। भेडो के पालन पर खास तौर स प्रोत्साहन और जोर दिया ताकि ऊन का उत्पादन किया जा सके। कृष्णधाम राजेन्द्र टेक्सटाइल मिल और सन्दल वुड आयल फैक्ट्री का श्रीगणेश हुआ। भद्रावती म लोहा व इस्पात का कारखाना खोला गया। इन सबके साथ ही बाबाबुदन की पवत श्रेणियो मे स्थित केम्मनगुडी से कच्ची धातु तथा लोहा निकालने का भी कायक्रम बनाया। उद्योग के सबध म सरकार की ओर से संस्थानो अथवा उद्योगपतियो को सहायता भी दिलवाई गई ताकि वे अपना उद्योग आरम्भ करने के लिए मैसूर राज्य

म आर्कापित किए जा सकें।

इसके अतिरिक्त राज्य मे कई नई रेलवे लाइनें बिछवाई क्योंकि वे भली भांति जानते थे कि रेल किसी भी देश के लिए जीवन रेखा होती है। बहुत समय से एक कमी अनुभव की जा रही थी कि मैसूर राज्य का अपना कोई बन्दरगाह नही था। सारा समुद्री काम पूर्व म मद्रास और पश्चिम म बम्बई स ही करना पड़ता था (उन दिनों गोआ पुर्तगाल के अधीन था)। विश्वेश्वरैया ने मगलौर की अपेक्षा भटकल को बन्दरगाह बनाना अधिक पसन्द किया था जो उनके मतानुसार न केवल सुविधाजनक ही था बल्कि अभियन्तीय दृष्टि स भी अत्यन्त उचित था। (परन्तु भटकल अब भी अच्छे बन्दरगाह के रूप म विकसित नही हो सका है।)

शिक्षा के क्षेत्र म भी विश्वेश्वरैया उदासीन नही थे। उन्होंने स्त्रियों, विशेष रूप से दलित वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने जातिभेद कभी पसन्द नही किया। 'इससे देश अपाहिज हो जाता है,' वे कहते थे। पहले मसूर के प्रायः सभी कॉलेज मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थे। बंगलौर के सेण्ट्रल कॉलेज तथा मैसूर के महाराजा कालेज मे स्नातकोत्तर शिक्षा का भी प्रबन्ध नही था और बी० ए० करने के पश्चात विद्यार्थियों को मद्रास अथवा पूना या बम्बई जाना पड़ता था जो बहुत खर्चीला था। उन्हें स्वयं अभियन्ता की आगे की शिक्षा लेने पूना जाना पड़ा था। 1 जुलाई, 1916 को विश्वेश्वरैया ने मसूर विश्वविद्यालय खुलवा दिया।

इसके अलावा स्कूलों मे उन्होंने दस्तकारी सिखाने की व्यवस्था की और सार्वजनिक वाचनालयों की स्थापना भी की।

1918 मे मैसूर के दीवान पद से मुक्त होकर उन्होंने अपना समय दो कामों म लगाया। एक तो कृष्णराजसागर बांध को पूरा किया जिससे माण्डया क्षेत्र म सिंचाई सुलभ हो सकी। यह बांध अपने मूल स्तर से 38 मीटर अधिक ऊपर उठाया गया था। फिर कृष्ण राजा सागर वाटर वर्क्स भी पूरा किया। सेवा मुक्त होने के पश्चात भी वे राज्य को अपने अमूल्य परामर्शों से लाभान्वित करते रहे। हुलाकेरी सुरंग, जिसमे ऊंचे स्तर की प्रणाली से पानी निकलता था इन्हीं की देखरेख मे बनवाई गई थी। इसी

स बनी इरविन नहर थी जो बाद मे विश्वेश्वरैया नहर क नाम स प्रसिद्ध हुई।

विश्वश्वरैया की आवश्यक्ता फिर महसूस हुई और उन्ह आमन्त्रित किया गया। भद्रावती मे जो 'पिग आयरन' बनाया गया उस कम दामो में अमेरिका म बेचने की व्यवस्था करने से अमरिका म अपने व्यापार पर प्रभाव पडने लगा। फिर 'जोग के झरने' से विद्युत शक्ति मिलने स मसूर राज्य म उद्योग के नये सूय का उदय हुआ। एक अमेरिकी विशेषज्ञ मिस्टर परिन भारत आय और व विश्वेश्वरैया की काय प्रणाली से अत्यन्त प्रभावित हुए और उसका उल्लेख महाराज स भी किया। गाधीजी के निमत्रण परअप्रैल 39 म विश्वेश्वरैया उडीसा गए और वहा की बाढ के कारणो पर एक विस्तत रिपोट तैयार की। इसी रिपोट के आधार पर महानदी पर हीरा-कुण्ड बाध बनाया गया। 1947 मे मद्रास व हैदराबाद के बीच तुग भद्रा बाध पर चले आ रहे विवाद को सुलझान के लिए भी विश्वेश्वरया को ही बुला लिया गया था।

1917 मे विश्वेश्वरया न राजाओ और दीवानो की एक सभा म भाग लिया और 1929 मे उन्होने दक्षिण भारतीय राज्य जनता परिषद की अध्यक्षता भी की जिसके अधिवशन म मैसूर, हैदराबाद, त्रावनकोर, कोचीन आदि के प्रतिनिधियो ने भाग लिया था। वे नही चाहत थे कि व गुलाम दर गुलाम बने रहे इसीलिए उन्होन अपने अधिकारो की माग की थी। बगलौर म स्थित विज्ञान क भारतीय सस्थान म वह प्रारम्भ से ही रुचि लत रह थे। इसन लिए उन्होन मसूर राज्य से जमीन व वार्षिक अनुदान भी दिलवाया था। 1938 स लगातार नौ बार उसके अध्यक्ष रहे और 1947 म अन्य कामो के बाझ क कारण उन्होने अपनी मर्जी स छुट्टी ले ली थी।

उनकी रिकन्स्ट्रक्टिंग इण्डिया नामक पुस्तक उल्लेखनीय है। यह पुस्तक आज भी अभियन्ता और योजना साहित्य की अमूल्य धरोहर मानी जाती है। कांग्रेस प्लान जो जवाहरलाल नहरू समिति द्वारा अभिकल्पित की गई थी इसम भी विश्वश्वरया न बडी लाभदायक भूमिका निभाई थी।

1935 म भी वे विदेश गए थे ताकि भारत म मोटर बनाने का कारखाना स्थापित किया जा सके। इसके लिए इगलैंड के कई सस्थानो का भी दया, लाड आस्टिन स भी मिले जिन्होंने बम्बई म कारखाना चालू करन क लिए अनुमानित खचा भी बताया था परन्तु वह सपना अधूरा ही रह गया। विश्वश्वरैया बम्बई अथवा मसूर म मोटर का कारखाना स्थापित नही कर सक। यद्यपि बाद म बालचद हीराचद के तकनीकी सलाहकार श्री अडवानी क सहयाग स बम्बई म फोड माटर बनाई गई।

1946 म अखिल भारतीय निर्माता सघ, बम्बई, के शिष्टमण्डल का नतत्व किया जो अभियतन, रसायन कपडा व हवाई जहाज बनाने के कारखान का दखन विदश यात्रा पर गया था।

विश्वश्वरैया भारत म पहल योजनाकारा म स थे जिन्होने सुझाव दिया था कि शिक्षा व उद्योग के विकास के लिए 10 कराड रुपया का ऋण प्राप्त किया जाए और प्रत्यक भारतवासी म यह भावना पैदा की जाए कि सब काम बराबर महत्व के हैं, सभी से देश की ताकत बढती है।

एक बात जो उनके सम्बन्ध म बहुद प्रसिद्ध है वह यह कि वे अपनी पोशाक क सम्बन्ध म पूरी तरह सजगता बरतते थे। कोई भी उनसे मिलने जाता तो वह पगडी से जूते तक पूरी तरह से 'सज' कर ही बाहर आते और अपने अतिथि का स्वागत करते थे।

1955 मे उन्हें दश के सर्वोच्च अलकरण 'भारत-रत्न' से सम्मानित किया गया। 1959 मे व 99 वष के हा गये थे, तब उनकी दृष्टि काफी क्षीण हो गयी थी। अपनी जन्म शताब्दी पर उनका स्वास्थ्य नरम ही था फिर भी व मस्तिष्क से बिरकुल चुस्त और चौकस थे किन्तु 1961 के मध्य तक व बिल्कुल चारपाई से लग गए। और 14 अप्रैल, 1962 को प्रात सवा छ बजे ठीक 100 वष 7 महीने का यह वयोवृद्ध आधुनिक विश्वकर्मा जहा स आया था वहीं चलता बना।

गोविन्द वल्लभ पत—1957

पत परिवार मूल रूप से महाराष्ट्र म ऊचे कुल का ब्राह्मण होता है। लगभग 10वी शताब्दी मे जब कुमायू म 'चद' राजे राज्य करते थे तब कुछ ब्राह्मण महाराष्ट्र से बद्रीनाथ की यात्रा करने क लिए वहा पहुचे थे। उनमें एक पण्डित जयदव पत भी थे। व अपन बहनोई श्री दिनकर राव पत तथा अय सज्जन श्री सूय दीक्षित के साथ आये थे। तीर्थयात्रा कर लेने के पश्चात उनका मन कुमायू की रमणीक वादियो म ऐसा रमा कि वापस जाने का इरादा ही छोड दिया। गगोली राज्य दरबार म पहुचे और अपनी विद्वत्ता से राजा को चमत्कृत कर दिया।

राजा ने उह सम्मान सहित अपन राज्य मे बस जाने का अनुरोध किया और वह उसके आग्रह को टाल न सके। किसे क्या खबर थी कि इन्ही जयदव पत क परिवार मे पच्चीस पीढिया गुजर जान क बाद एक सूय उदय होगा जो अपन प्रकाश स सारे भारत म उजाला कर देगा। पण्डित गोविन्द बल्लभ पत का जन्म इसी पत परिवार म 10 सितम्बर, 1887 को अनन्त चौदस के पवित्र पव के दिन अल्मोडा जिले के खूट गाव म हुआ था।

भारत के आधुनिक इतिहास मे 1887 एक महत्वपूर्ण वष माना जाना चाहिए। इसलिए नही कि इस वष आजाद भारत के गहमत्री का जन्म हुआ था। अपितु इसलिए भी कि उस वष महारानी विक्टोरिया के शासन का रजत जयन्ती वष था और इसलिए भी कि उस वष इग्लैड म मजदूर सघ और भारत म राष्ट्रीय काग्रेस की रश्मिया प्रखर होना शुरू हो

गइ थी। केवल दो वष पूव ही कांग्रेस का जन्म हुआ था और लोगो म कुछ करन की भावना अगडाई लेने लगी थी। इग्लैंड मे ग्लैडस्टन, कोवडैन और ब्राइट जसे विचारक उभरने लग थे और यहा गाधीजी न मैट्रिक पास कर लिया था और विदश जान की तैयारी म थे। फिर इसी वष इलाहाबाद विश्वविद्यालय की भी नीव पडी जिसन भारत को बडे बडे विचारशील विद्वान दिये। सयुक्त प्रान्त म विधान परिषद का भी गठन इसी महत्त्वपूण वष म हुआ। कालान्तर म इन सभी न पण्डित पत पर गहरा प्रभाव डाला।

पिता पण्डित मनोरथ पत सरकारी नौकरी मे थ और अपन घर से दूर रहत थे। इसलिए उनका पालन पोषण अधिकतर ननिहाल म हुआ जो भीमताल के निकट चकाता गाव म थी। बालक गोविन्द क आरम्भिक चार वष चकाता की सु दर तलहटियो मे नौकुचिया ताल क आसपास व्यतीत हुए। उनक नाना रायबहादुर बद्रीदत्त जोशी अल्मोडा म जुडीशियल अधिकारी थे। क्योकि गाव चकाता म पढाई की उचित व्यवस्था नही थी और पिता तब भी गढवाल म ही थे। बालक गोविन्द की मा उन्हे अपने पिता के पास ले गयी और वही उनकी आरम्भिक शिक्षा का श्रीगणेश हुआ।

पढन म तजी दिखाई और माध्यमिक परीक्षा म प्रथम श्रेणी म उत्तीण हुए फिर मैट्रिक म भी प्रथम रहे। इटरमीजिएट मे पास हुए तो छात्रवृत्ति भी मिलने लगी और 1905 म वह अपन 19वें वष म आगे की पढाई के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे पहुच गय। इण्टरमीजिएट म वह 'गोविन्द बल्लभ महाराष्ट्र' के नाम से परिचित थे। इलाहाबाद पहुचकर म्योर सैण्ट्रल कालिज म भरती हुए और गणित, राजनीति और अग्रेजी विषय लिये।

युवक पत को मैक्डानल हिन्दू बोर्डिंग हाउस म एक कमरा मिला। वहा उन्होन अपनी पढाई के अतिरिक्त अन्य गतिविधियो मे भी दिलचस्पी लेनी शुरू की। उसी वष 1905 मे 7 अगस्त को विदशी माल का बहिष्कार किया गया। बग भग से लोगो का मन-मस्तिष्क पहले से ही रोष से भरा हुआ था। दिसम्बर म बनारस के कांग्रेस अधिवेशन म पत जी न

स्वयसेवक की हैसियत मे उत्साहपूर्ण भाग भाग लिया और वहा गोखले के दशन किय। वह उनके जीवन मे सवप्रथम अवसर था जब उन्होंने एक ही मच पर भारत के प्राय सभी उच्चकोटि के राजनीतिक नेताओं को देखा था। उनका मन गदगद हो गया और वह आनन्द विभोर हो उठे थे।

दो वष बाद गोखले जी इलाहाबाद ही पधारे। उन दिनो पतजी बी० ए० के अन्तिम वष म पढ रहे थे। गोखले जी ने पण्डित मोतीलाल की अध्यक्षता म एक सभा म भाग लिया और वहा उन्होंने भाषण भी दिया। युवक पत पर उसी सिंह गजना का गहरा प्रभाव पडा। गोखले जी न उसी सभा म नौजवानों को भारत मा की सेवा करने के लिए ललकारा था और पत जी ने निश्चय कर लिया कि वह पढकर सरकारी नौकरी नही करेंगे यद्यपि उनके परिवार मे सभी की इच्छा थी कि होनहार युवक पत पढकर सरकारी नौकरी मे चला जाए, और डिप्टी कलेक्टर हो जाए। परन्तु गोखले जी की अमरवाणी से वशीभूत युवक पत न कानून पढकर, वकील बनकर स्वतन्त्र जीवन अपनाना अधिक उचित समझा। अत 1907 म उन्होंने एल० एल० बी० म प्रवेश पा लिया। म्योर कॉलिज म कानून विभाग का पहला ही बैच था जिसम पत जी भी शामिल थे। उनके शिक्षकों में प्रोफेसर आर० के० सोराब जी, डॉक्टर एम० एल० अग्रवाल मोहनलाल नेहरू तथा सर तेज बहादुर सप्रू उल्लेखनीय है और वह न केवल प्रथम श्रेणी मे पास हुए अपितु उन्हें लम्सडेन स्वण पदक भी दिया गया। अपने इस ओजस्वी शिष्य की प्रखरता और अकाट्य तर्कों को सुनकर प्रोफेसर सोराब जी ने तब भविष्यवाणी की थी कि एक दिन वह भारत के प्रधानमन्त्री बनेंगे तब तो शायद सभी ने प्रशसा का अतिरेक अथवा एक काल्पनिक आशीर्वाद ही समझा होगा पर किसे मालूम था कि वास्तव म प्रोफेसर सोराब जी की जिह्वा पर सरस्वती का वास था और पत जी भारत के प्रधानमन्त्री नही, तो गहमन्त्री अवश्य बने।

विद्यार्थी पत के समकालीन थे पुरुषोत्तम दास टण्डन, जिन्होंने 1904 मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० ए० किया। डाक्टर कैलाशनाथ काटजू, पत जी स एक वष वरिष्ठ थ। आचाय नरेन्द्र देव और फजल अली आदि को अपने विद्यार्थी काल म पत जी ने पढ़ा बहुत और उनके पढने की

रफ्तार थी भी तेज। समाचार-पत्र पढ़ने की आदत तो 12 वर्ष की अल्पायु से ही पड़ गई थी। 'पायनियर' 'अमृत बाजार पत्रिका' तथा 'बंगाली' उनके मनपसन्द समाचार पत्र थे। वह न केवल तेज रफ्तार से पढ़ते बल्कि जो पढ़ते थे उसे याद भी रखते थे। बंकिम बाबू के 'आनंद मठ' ने उन पर गहरा प्रभाव छोड़ा। विशेषकर उसके अमर गान 'वन्देमातरम्' ने। इसके अलावा डिगबी (Digby) दादा भाई, रमेशचन्द्र दत्त, स्पेंसर मिल, डिकिन्स, ठक्रे (Thackeray) स्कॉट मेरी कारेली (Marie Corelli) का साहित्य उन्होंने बड़े जतन से पढ़ा। मिल की 'लिबर्टी' और 'सबजैक्शन आफ विमेन' उन्हें खास तौर से पसन्द आया था। वह बहुधा मिल की लिबर्टी में कुछ न कुछ विशेष उद्धरणों को उद्धरित किया करते थे।

पन्त जी ने सबसे पहले काशीपुर में वकालत शुरू की। इसके साथ साथ वह समाज सेवा की ओर झुके। कुछ दिनों बाद उन्हें काशीपुर के म्युनिसिपल बोर्ड का सदस्य चुन लिया गया। उन्होंने एक हाई स्कूल की स्थापना में भी सक्रिय सहयोग दिया। अपने सहयोगी श्री बद्रीदत्त पाण्डेय के साथ कुमायूं परिषद की स्थापना की जिसके द्वारा कुमायूं की समस्याओं का अध्ययन किया गया। उन्हीं दिनों उन्होंने एक साप्ताहिक भी शुरू किया—'शक्ति'।

उन दिनों सरकारी ओहदेदारों का एक प्रकार से एकछत्र राज्य हुआ करता था। वह जिस किसी गांव वाले को चाहते, पकड़कर अपनी निजी 'टहल' करवाते और बिना कुछ दिये उसे छोड़ देते। यदि कोई असहमति प्रकट करता तो उस बेचारे पर जुल्मों के पहाड़ तोड़ देते। उस मनमानी के खिलाफ उन गरीबों की सुनने वाला कोई नहीं था और उन नवाबजादे सरकारी ओहदेदारों का मनमाना अत्याचार बढ़ता जा रहा था। गांव में कोई चाहे कितना ही इज्जतदार क्यों न हो पर उन आततायियों के सामने उनकी इज्जत धूल में मिला दी जाती थी। पंत जी ने इन अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई और कुमायूं परिषद के माध्यम से एक आन्दोलन शुरू किया गया। उनका कहना था कि जब सरकारी अफसरों को काम करने के लिए सरकारी चपरासी दिये जाते हैं तो फिर उन्हें अपनी नि[illegible] टहल करवाने के लिए गांव वालों को पकड़कर मुफ्त में काम कराने [illegible]।

अधिकार है। इस पुस्तो प्रकार प्रथा को य द प्रस्ताव का पत जी न बाग उठाया।

साथ हो काशीपुर म नैनीताल और नैनीताल स इलाहाबाद के न्यायालयो म पत जी जा पहुंच। गर सुन्दरलाल, पण्डित मोतीलाल नेहरू पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्री जोगशचन्द्र चौधरी जस नाना दिग्गजो का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। ऐसे वातावरण म रह कर पत जी का मन राजनीति म रम जाना स्वाभाविक ही था और अपना समय इस क्षेत्र म भी सक्रियता स दन लग। 1916 मे लखनऊ कांग्रेस क अधिवेशन म पतजी न कुमायू का ही प्रतिनिधित्व किया। यहा ही उन्होंने सवप्रथम गांधीजी और भारत कोकिला सरोजिनी नायडू को सुना था।

1918 म भारत के सवधानिक सुधारो को लकर माटग्यू चेम्सफोर्ड की एक सम्मिलित रिपोट प्रकाशित हुई इसक अन्तगत दो उपसमितियो का गठन किया गया जिनम से एक को अध्ययन करना था कि चुनाव क बारे मे—जिसक द्वारा उत्तरदायी सरकारो क लिए भारतीय जनता क प्रतिनिधियो को चुना जा सके। उपसमिति न सुझाव दिया कि कुमायू चूकि पिछडा हुआ क्षेत्र है इसलिए इस चुनाव की परिधि म न रखा जाए। इस सुझाव अथवा फैसले के विरुद्ध आवाज उठाना कुमायू क प्रतिनिधि पत जी का फज था। हर प्रकार के तर्कों और दलीलो क सामन जहा एक ओर उक्त समिति को झुकना पड़ा वहा दूसरी ओर पत जी की विद्वत्ता का लोहा भी माना जाने लगा और 1937 मे जब भारत के प्रातो म उत्तरदायी सरकारें बनी तो सयुक्त प्रात क मुख्यमत्री क पद क लिए पत जी स ज्यादा उपयुक्त और कोई व्यक्ति नहीं मिला कांग्रेस को।

1922 म उन्होंने अपन वकालत के पश स हाथ खीच लिया। उस समय वह अत्यन्त लोकप्रिय, कमठ तथा योग्य वकीलो म गिन जात थ और उनकी वकालत जोरो से चल रही थी परन्तु दिसम्बर 1921 म कांग्रेस क 36वे अधिवेशन (अहमदाबाद) स आए और काफी सोच विचार क पश्चात उन्होंने उपयुक्त चमत्कारी त्यागपूर्ण फसला ले लिया।

काकोरी क्रांति म पकडे गये वीर सेनानियो के विरुद्ध मुकदमा चलाया जा रहा था। रामप्रसाद बिस्मिल राजेन्द्रनाथ लहरी सचिन्द्रनाथ सान्याल

अशफाक उल्लाह आदि पर 'बादशाह के खिलाफ विद्रोह' करने का अभियोग लगाया गया था। 9 अगस्त, 1925 को आलमनगर स्टेशन के नजदीक काकोरी और लखनऊ के बीच चलती रेल रोककर उन्होंने सरकारी खजाने को 'लूट' लिया था। इस्तगासा की ओर अवध के मशहूर वकील श्री जे० एन० मुल्ला बहस कर रहे थे और उनके विपक्ष में थे पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त। उनके साथ में थे सवश्री मोहनलाल सक्सेना और चन्द्रभानु गुप्त। यह मुकदमा आठ महीने चला और इन आठ महीनों में पंत जी तथा उनके साथियों ने रात दिन एक कर दिया था।

साइमन कमीशन का बहिष्कार समस्त भारत में हुआ। विशेषकर कांग्रेस ने इस बहिष्कार आंदोलन में भाग लिया। लाहौर में लाला लाजपतराय घायल हो चुके थे। लखनऊ में भी इसका उचित प्रबन्ध था। एक बहिष्कार समिति गठित की गई थी जिसके संयोजक श्री मोहनलाल सक्सेना थे। लखनऊ के चारबाग स्टेशन पर साइमन कमीशन का 'स्वागत' किया जाने वाला था। शहर में दफा 114 लगा दी गई और किसी भी किस्म के जलसे या जुलूस का सख्त मुमानियत थी इसलिए जुलूस टुकड़ियों में चारबाग पहुंच रहा था 'स्वागत' के लिए जो एक टुकड़ी पहुंची थी उनमें पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा पंडित गोविन्द वल्लभ पंत भी थे। अपने छः फुट लम्बे डील डौल के कारण लाठियों की बौछार पंत जी को ज्यादा झेलनी पड़ी। स्थिति तो इतनी गम्भीर हो गई थी कि यदि लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों ने उन नेताओं को चारों ओर से घेर न लिया होता तो बहुत संभव था कि कोई न कोई उस दिन शहीद भी हो जाता।

और केन्द्रीय परिषद में श्री चिन्तामणी के ध्यान आकर्षक प्रस्ताव पर बोलते हुए पंत जी ने कहा, "मुझे गर्व है कि 29 30 नवम्बर को साइमन कमीशन के बहिष्कार के सम्बन्ध में हुई रैलियों और पिकेटिंग में मैंने भी भाग लिया और उस 'सर्वशक्तिमान' से यही प्रार्थना है कि हम साहस और शक्ति दे कि हम उस नृशंस शक्ति का मुकाबला कर सकें जिसके हम शिकार हुए हैं "

इसी बहशियाने वार ने लाला लाजपतराय को देश से हमेशा हमेशा के लिए छीन लिया।

लाहौर कांग्रेस ने सिविल नाफरमानी का प्रस्ताव पारित किया और पंतजी ने संयुक्त प्रान्त की परिषद में पार्टी के नेता की हैसियत से परिषद की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। साथ ही अन्य सदस्यों ने भी परिषद छोड़ दी। जाब्ते तौर पर गांधीजी ने वायसराय के सम्मुख 11 सूत्र प्रस्तावित किए और कहा, यदि यह प्रस्ताव मान लिए गए तो नाफ़रमानी आन्दोलन वापस ले लिया जाएगा। उन 11 सूत्रों में जनता की शराबी नमक पर टैक्स तथा वायसराय के वेतन आदि के सम्बन्ध में चर्चा की गई थी। परन्तु जब वहां से कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला तो गांधीजी ने 12 मार्च '30 को 200 मील लम्बी डाण्डी यात्रा से उक्त आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया। समस्त भारत इस चिंगारी से भभक उठा। गांधीजी ने कहा, 'हमारी बात मजबूत है हमारे साधन पवित्र हैं और परमात्मा हमारे साथ है।" केन्द्रीय परिषद से मालवीय जी ने त्यागपत्र दे दिया। आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया। उतना ही क्रूर होता चला गया गोरी सरकार का दमन चक्र। नैनीताल में नमक कानून तोड़ते हुए पंतजी गिरफ्तार कर लिये गए और उन्हें छः महीने का कारावास हो गया।

एक वर्ष बाद गांधी इरविन समझौता हुआ। जिन्हें जेल भेजा गया उन्हें छोड़ दिया गया। कांग्रेस की ओर से विशेष रूप से राजनीतिक कैदियों को जेल से छोड़ने के लिए प्रदेश कांग्रेस से पंडित गोविन्द वल्लभ पंत को नियुक्त किया, कि वे सरकार से सम्पर्क बनाए रखें जब तक सभी राजनैतिक बन्दियों को मुक्त न कर दिया जाए। इस सम्बन्ध में उन्होंने सरकार के दमन चक्र की क्रूरता का पूरा अध्ययन किया और पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ अनेक अधिकारियों से मिले। इन सब कार्यवाहियों का यह प्रभाव पड़ा कि गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया और गांधीजी तथा अन्य भारतीय नेता उसमें भाग लेने लन्दन गए। परन्तु चूंकि कोई बात तय नहीं हो पाई भारत में वापस आते ही सबको फिर से गिरफ्तार कर लिया गया।

1935 में भारतीय केन्द्रीय सभा के लिए चुनाव आरम्भ हुए जिसमें विशेष रूप से कांग्रेस की जीत हुई और 44 सीटें मिलीं। युक्त प्रांत में कांग्रेस की ओर से इस चुनाव को पंतजी की देखरेख में लड़ा गया था।

और दो वर्ष बाद 1937 में जब प्रान्तों के लिए चुनाव हुए तो वहां

भी कांग्रेस भारी बहुमत से जीती। प्रान्तों में कांग्रेस सरकारें बनाई गई। युक्त प्रान्त की सरकार में मुख्यमन्त्री बनाए गए पंडित गोविन्द वल्लभ पंत। प्रान्तीय गवर्नरों तथा वायसराय दोनों ने कांग्रेस सरकार को यह आश्वासन दिया था कि राज के प्रशासन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। पंतजी ने तब तक मन्त्रिमण्डल नहीं बनाया जब तक उन्हें उनके गवर्नर से उक्त आश्वासन नहीं मिल गया।

कांग्रेस का अन्तिम लक्ष्य तो सम्पूर्ण स्वराज्य था ही। उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए एक वातावरण तैयार करने के लिए ही कांग्रेस ने प्रान्तों में सरकार बनाना स्वीकार किया था। उसके सामने देश के अनगिनत शोषित मजदूर, बेसहारा किसान और गरीब जनता थी जिसे दो जून भरपेट रोटी भी नसीब नहीं थी। मिल मालिकों, महाजनों और जमींदारों के शोषण सूद दर-सूद का जाल और अत्याचारों की कोई सीमा ही नहीं थी। किसानों व मजदूरों की हालत कीड़े मकोड़े से भी गई गुजरी थी, इसी प्रकार राजनैतिक बंदियों का भी बुरा हाल था। कांग्रेस ने सरकार बनाने के बाद सबसे पहले राजनैतिक बंदियों को मुक्त किया जिनके विरुद्ध मुकदमे चल रहे थे उनके मुकदमे वापस ले लिये। काकोरी कांड के बन्दी भी मुक्त हुए।

कानपुर में कपड़ा उद्योग में भारी संकट छाया हुआ था। वेतन, काम करने का समय और अन्य दशाओं को लेकर मजदूरों में बड़ा असन्तोष व्याप्त था। लगभग 60000 मजदूरों की मजदूरी समय समय पर मिल मालिकों द्वारा कम कर दी जाती थी। मन्त्रिमण्डल बने केवल चार दिन ही हुए थे कि मुख्यमन्त्री पंडित पंत ने सबसे पहले इस समस्या की ओर ध्यान दिया। उन्होंने डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया ताकि कपड़ा उद्योग की दशाओं का जायजा ले सकें। इसी प्रकार एक और गलत बात पनपने लगी। कांग्रेस के गैर-सरकारी लोग सरकारी कर्मचारियों के कामों में हस्तक्षेप करने लगे और प्रशासन पर नाजायज प्रभाव डालकर गलत काम कराने लगे। इस सम्बन्ध में कई शिकायतें मुख्यमन्त्री को भी सुनने को मिली, परन्तु फैसला करते समय पंतजी ने हमेशा सच्चाई का पक्ष लिया। जब कांग्रेस सरकार बनी तो सचिवालय में केवल एक सचिव को छोड़कर सभी अंग्रेज थे। पंतजी ने कोशिश की कि

ज्यादा से ज्यादा ओहदे भारतीयों को ही दिए जाएं ताकि प्रशासन में अधिकारी वर्ग हिंदुस्तानी होने के कारण स्थानीय समस्याओं को उचित ढंग से सुलझा सके ।

आर्थिक व्यवस्था ठीक करने के लिए सक्रिय और कारगर कार्यक्रम बनाए गए । सरकार का काम केवल टैक्स लेकर सरकारी खजाना भरना ही नहीं होना चाहिए बल्कि जनता से लिए जाने वाले धन को वापस जनता के ही कल्याणकारी कामों में खर्च करना भी सरकार का फर्ज होना चाहिए और इसीलिए पंत सरकार ने कुछ करों में कमी की और कल्याणकारी गतिविधियों में वृद्धि की ।

परंतु यह सब अधिक समय तक चल नहीं पाया । 3 सितम्बर, 1939 को यूरोप में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया और भारत के वायसराय ने भारतीय नेताओं के बिना अनुमोदन के भारत को युद्ध की विभीषिका में झोंक दिया । फलस्वरूप 30 सितम्बर की शाम के सात बजे कांग्रेस सरकार ने त्यागपत्र दे दिया ।

1940 में युद्ध दिन प्रतिदिन भयानक होता जा रहा था । जितना कुछ इस युद्ध में 11 दिनों में हिटलर ने कर दिखाया उतना पिछले विश्वयुद्ध में चार वर्षों में नहीं हो पाया था । इंग्लैंड को अपनी जान बचाना दूभर हो रहा था, ऐसे संकट में भारत जैसे बड़े देश से किसी प्रकार की सहायता न मिलना और भी खतरनाक साबित हो रहा था । किसी भी प्रकार के समझौते की झलक कोसों दूर नजर नहीं आती थी । असंतोष दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था । भारतीय नेताओं को पिछले युद्ध के समय अंग्रेजों के दिए हुए वायदे बहुत अच्छी तरह याद थे और याद था उन वायदों के बदले में जलियांवाला बाग भी । काठ की हांडी दुबारा आग पर नहीं चढ़ाई जा सकती थी । गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ कर दिया और सीधी व सरल आवाज में कह दिया कि अंग्रेजों की लड़ाई में किसी भी प्रकार की मदद देना बिलकुल गलत है । व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हुआ । सबसे पहले विनोबा भावे ने अपने को गिरफ्तार करवाया । 24 नवम्बर को नैनीताल में पंडित गोविन्द बल्लभ पंत ने सत्याग्रह किया और अपने को गिरफ्तार कराया । उन्हें एक वर्ष की कैद हो गई ।

और 1942 आते आते युद्ध भारत के द्वार पर भी दस्तक देने लगा। जापान पूरी ताकत से युद्ध मे उलझ गया था और 'मित्र राष्ट्रों' की फौजो को भारी क्षति पहुचा रहा था। सुभाषचन्द्र बोस भारत म नजरबन्दी से गुप्त रूप से निकलकर पेशावर, काबुल होते हुए जर्मनी से जापान जा पहुचे और सुदूर पूर्व म आजाद हिन्द फौज और भारत की अस्थाई सरकार भी बना ली। और वह भारत की बेडिया काटने के लिए पूरी ताकत के साथ दिल्ली चलो के नारे आकाश म गुजाते हुए भारत की ओर बढते चले आ रहे थे।

एसे समय 9 अगस्त, 1942 को बम्बई के एतिहासिक अधिवेशन म महात्मा गाधी ने पूरे देश को एक निश्चित निर्देश दिया— करो या मरो' और अग्रेजो को तुरन्त भारत छोडने के लिए कहा। फिर क्या था ? तुरन्त सभी नेताओ को पकड लिया गया। बम्बई के गवलिया टैंक पर जहा वह अधिवेशन चल रहा था, ब्रिटिश सरकार के घिनौने अत्याचारो का नगा नाच किया जाने लगा। पतजी को प्रात पाच बजे आर्थिर रोड जेल ले जाया गया और वहा से अन्य नेताओ के साथ अहमदनगर दुर्ग म कैद कर दिया गया परन्तु यह स्थान भारतवासियो से बहुत दिनो तक गुप्त रखा गया और भिन्न-भिन्न प्रकार की भयानक खबरो स भारतवासी परेशान होते रहे। यह सब चार वर्ष चला।

अपने अन्तिम बन्दी जीवन म अन्य वरिष्ठ नेताओ की तरह पतजी को भी अध्ययन का काफी अवसर मिला। उन्होने जितना भी पढा, उसके नोटस भी कापियो के दो हजार पृष्ठो पर बनाए। इसके अतिरिक्त चरखा कातने, बागवानी इत्यादि मे उन्होने बन्दी जीवन के चार वर्ष गुजारे।

भारत आजाद हुआ। पतजी को पुन सयुक्त प्रात का मुख्यमत्री बनाया गया। आजादी के तुरन्त पश्चात प्राय सारा उत्तर भारत साम्प्रदायिक झगडो की आग से भभक उठा। हिन्दू मुस्लिम एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये। परन्तु इस विभीषिका मे भी पतजी ने कहा था कि चाहे सारे भारत मे कुछ भी हो, पर सयुक्त प्रात हमेशा सयुक्त रहेगा और वास्तव म उनकी प्रशासनिक योग्यता की तारीफ करनी होगी कि सयुक्त प्रा
आग स बिलकुल अलग रहा यद्यपि पजाब व सिध से भागकर

वहा भी पहुचे और बसे। पर वहा हिन्दू मुसलमान एक साथ मेल और प्यार से बने रहे। बगाल मे दगे हुए। बिहार मे भी खून खराबा हुआ परन्तु पूर्व संयुक्त प्रात का छोडकर वह आग फिर दिल्ली और पजाब मे भडक उठी जबकि बिहार और दिल्ली के बीच मे ही तो है सयुक्त प्रात यानी आज का उत्तर प्रदेश।

सरदार पटेल के निधन के पश्चात केन्द्रीय गृह मत्रालय को सभालने के लिए उतने ही मजबूत हाथो की जरूरत थी प० जवाहरलाल नेहरू को और यह मजबूती उन्ह अपने ही सूबे के मुख्यमत्री तथा अपने पुराने सहयोगी पडित गोविन्द बल्लभ पत से मिली। केन्द्र मे आने के पश्चात पतजी के लिए ससद भवन नया नही था इससे पूर्व अग्रेजो के जमाने मे भी वह ससद भवन उनकी सिंह गजना से गूज चुका था।

उन दिनो ससद मे राज्यो के पुनगठन के सम्बन्ध म बडी गर्मागम बहस चल रही थी। पतजी अस्वस्थ रहने के बावजूद सभी प्रश्नो और आपत्तियो का उत्तर दे चुके थे। वह बीमार थे और दद स पीडित भी थे परन्तु फिर भी उस दिन वह ससद मे पहल की भाति आये और बोलने के लिए खडे हो गये। वह काफी दर तक बोलते रहे और विरोधी पक्ष के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर शाति से देते रहे परन्तु उनकी मन स्थिति वहा उस ससद भवन म केवल एक व्यक्ति पूरी तरह स जान समझ रहा था। उनके धैय और सहन करने की शक्ति को देख वह स्वय तडप जाता था। और जब यह सब सीमा से बाहर हो गया तो उस व्यक्ति अथात् ससद का नेता व प्रधानमत्री पडित जवाहरलाल नेहरू स नही रहा गया। वह उठकर खडे हो गए और बीच म ही बोल पडे, ' मैं खास तौर से इसलिए हस्तक्षेप कर रहा हू कि मैं नही चाहता कि मेरे सहयोगी (पडित पत) फिर कुछ और बोलें जैसाकि बहुत स आदरणीय सदस्य जानते होगे कि लोक सभा म कल वह (पतजी) बडा और शानदार भाषण दे चुके हैं (तालिया) लेकिन शायद सभी यह नहीं जानते कि इन दिनो जबकि उन्होने इस डिबेटो मे भाग लिया है। जिम्मेदारी म भरपूर यह महत्वपूण काम करने के अलावा वह अस्वस्थ रहे हैं और दद मे पीडित भी रहे हैं। इसके बावजूद उन्होने यह सब किया और अपनी जिम्मेदारी निभाई है। इस विषय (जिस पर ससद म बहस हो रही थी)

पर जितना वह जानते हैं उसके आधार पर जितना उन्होंने जो कुछ कहा उतना मैं तो बोल सकता नहीं " और सब लोगों को पता चला कि पंतजी अपनी अस्वस्थ अवस्था और असह्य पीड़ा के बावजूद एक समर्पित योद्धा की भांति लड़ते जा रहे हैं जूझते चले जा रहे थे।

और इसके अतिरिक्त एक बार—

तुम गद्दार हो, जब मैं उत्तर प्रदेश में विधान सभा का अध्यक्ष था और तुम मुख्यमंत्री, तब भी मुझे हिन्दी के प्रति तुम्हारे प्रेम में सन्देह था", पुरुषोत्तम दास टण्डन अचानक चीख उठे थे जब 25 नवम्बर, 1958 को राजभाषा के विषय पर संसदीय समिति की बैठक चल रही थी और पन्तजी गृहमन्त्री की हैसियत से उस समिति की बैठक में उपस्थित थे। वह समिति 1955 में नियुक्त की गई राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार कर रही थी।

समिति कक्ष में सन्नाटा छा गया सब सदस्य सन्न रह गए। किसी को भी इतने कड़े आरोप की आशा न थी। मद्रास के प्रतिनिधि डा० ए० रामास्वामी मुदालियार ने हस्तक्षेप किया और एतराज किया फिर बाद में सेठ गोविन्ददास ने भी टण्डन जी के उक्त कटु वचन की आलोचना की।

टण्डन जी कुछ नहीं बोले। सिर्फ क्रोध में ही भरे बैठे रहे पंतजी केवल इतना कह पाए, 'मैं हिन्दी की अपेक्षा भारत की एकता पर अधिक बल देता हूं मुझे खेद है कि मैं टण्डन जी के अपेक्षित मापदण्ड पर खरा नहीं उतर पाया हूं "

टण्डन जी आपे से बाहर हो गए थे क्योंकि समिति ने एकमत से उनका यह सुझाव रद्द कर दिया था कि राजकीय कामकाज के लिए 26 जनवरी, 1965 से अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को ले आना चाहिए।

ऐसा कर देने से हिन्दी का ही अहित था जो उस समय टण्डन जी (जल्दी में) नजरअन्दाज किए दे रहे थे। हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर प्रस्थापित करने के लिए किसी निश्चित तारीख को तय कर देने का मतलब था दक्षिण प्रान्त विशेषकर तत्कालीन मद्रास प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल को भड़का देना। पंतजी यह नहीं चाहते थे, दक्षिण प्रदेश के अहिन्दी भाषी यह महसूस करें कि हिन्दी उन पर 'थोपी' जा रही है किन्तु फिलहाल यही

क्या कम था कि सिद्धात के तौर पर सरकार ने यह मान लिया था कि हिन्दी राजभाषा बना ली जाएगी

पतजी पहले भारत रत्न से अलकृत देश के नेता थे जो केवल केन्द्रीय गृहमन्त्री थे। उन्हें 1957 म 'भारत रत्न' से सुशोभित किया गया।

सौम्य, शात, अपनी प्रतिभा से हर किसी के दिल म घर कर लेने वाले पडित गोविन्द वल्लभ पत 7 मार्च, 1961 को हमसे सदा सदा के लिए जुदा हो गए।

डाक्टर धोन्धू केशव [illegible]

—1958

वह जमाना पेशवाओं का था। पुने उनकी राजधानी थी। कोंकण से दो भाई केशव भट कर्वे और रघुनाथ भट कर्वे पुने आए। उन्होंने [illegible] दुकान खोली और व्यापार शुरू किया। व्यापार चल निकला। पेशवा स्वयं उनकी दुकान से सौदा मंगवाने लगे। अग्रज केशव भट विद्वान थे और पेशवाओं ने उन्हें उनकी विद्वत्ता के ही कारण एक गांव—[illegible] की जागीर दी थी। केशव भट अग्निहोत्री ब्राह्मण थे और पेशवाओं के धार्मिक उत्सवों में आमन्त्रित किये जाते थे। अनुज रघुनाथ भट व्यापार में लगे रहे। परन्तु अपने अग्रज के प्रति इतने निष्ठावान थे कि सारा व्यापार उन्हीं के नाम से चलाते रहे। व्यापार में धन खूब कमाया और जरूरत पड़ने पर मराठा सरदारों को ऋण भी दिया। [illegible] गायकवाड़ ने उनसे साढ़े छह लाख रुपये उधार लिये थे। नागपुर के भोंसले भी उनके ऋणी थे।

वहीं दामजी गायकवाड़ बड़ौदा के शासक बने। उन्हीं के वंशज महाराज गायकवाड़ एक दिन [illegible] में आकर ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दे रहे थे। प्रत्येक ब्राह्मण को [illegible] रुपये मिल रहे थे।

भीखू और धाघू दो भाई [illegible] रहे थे। दक्षिणा की बात सुनकर दौड़े दौड़े अपनी मां के पास आए और बोले, "मां [illegible] दक्षिणा मिल रही है। [illegible] हम भी जाएं।"

"नहीं बेटे, वह दक्षिणा नहीं भिक्षा है। हम [illegible] नहीं हैं कि भीख लेने जाएं।"

पर मा, वह भीख नही है, दक्षिणा है " धो धू न समझाने का प्रयास किया। "वह भी बडौदा म महाराज द रहे हैं वह काइ छोटे आदमी तो नही " भीकू ने भी समझाने की कोशिश की "महाराज हैं वह।"

"हुआ करें।" मा न फिर कहा 'महाराज होंग तो अपने घर के होंग। हम भी उनसे कम नही ह वह हमारे ऋणी ह।"

ऋणी ? '

"हा, हमारे पूवजो न उन्ह साढ छह लाख रुपये दिए थ जिसे वह आज तक नही चुका पाए है "

और जब कोरेगाव स उनक पिता केशव पत आए और उन्ह सारी बात मालूम हुई तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुए—अपनी पत्नी के आत्मसम्मान पर।

केशव पत न अपने बाल्यकाल म खूब सम्पन्नता भोगी थी। पास क एक ताल्लुके के मनेजर थे उनके पिता। परन्तु धीरे धीरे खोखले होते गए। केशव पत की पत्नी श्रीमती लक्ष्मीबाइ यह खोखलापन पहले ही देख भाप गई थी और तभी स घर सभालने म उन्होंने पूरी बुद्धिमानी का परिचय दिया था। केशव पत तो रहते बाहर कोरगाव म, लक्ष्मीबाई न थोडा-थोडा बचाया और जमीन खरीद एक घर भी बनाया। परिवार पर जो कर्ज था उसे भी चुकाया।

लक्ष्मीबाइ को छह बच्चे हुए किन्तु पहल तीन बच्चे बचे नही। फिर भी न किसी तरह सुख दु ख म रहकर उन्होंने बहादुरी स दिन काटे और इसी सघषपूण समय म पले थे भीकू और धोन्धू। उनकी एक बहन थी अम्बा। बचपन म धो धू बहुत नटखट थे। अपनी बात मनवाने की जिद करते रहते थे। उनकी मा हमेशा यह ध्यान रखती कि वह सब बच्चों को खुश रखें पर कभी जब जिद सीमा स बाहर हो जाती तो फिर नौकर आत्मया को बुलाया जाता जो इनकी सारी अकड निकाल देता था।

आरम्भिक शिक्षा शेनवी पताजी के स्कूल म हुइ। वही पर उन्होंने पुराने श्लोकों को कण्ठस्थ किया था जिन्हे वह मधुरता स गाकर सुनाते थे। फिर उन्होंने राजकीय प्रायमिक विद्यालय म शिक्षा ग्रहण की। मराठी की चौथी श्रेणी की परीक्षा म फेल हो गए पर हिम्मत नहीं हारी और दूसरा

चार पास हो गए। तत्पश्चात मुरुड से छह मील दूर स्थित दपोली के अंग्रेजी स्कूल में प्रवेश पा लिया। उन्हें गणित में विशेष लगाव था। शिक्षा के साथ पूजा भी करते। राज राम विजय हरि विजय, शिव लीला, अमृत, गुरु चरित्र आदि का पाठ करते। जब कभी धार्मिक उत्सव का समापन-समारोह होता तो धो धू से ग्रन्थ पाठ करने को कहा जाता। हरिकीर्तन से लेकर तमाशा तक वे सभी प्रकार के संगीत आयोजनों में रुचि लेते। नाटक देखने के लिए तो उनके लिए कितनी भी दूरी हो, अर्थ नहीं रखती थी। एक बार उनके पिता के मालिक की षष्ठीपूर्ति थी और उन्हें नाटक जाने में विघ्न पड़ रहा था क्योंकि उन्हें वहां जाना जरूरी था। वह षष्ठीपूर्ति में गए और सारे कार्यक्रम के पश्चात नाटक देखने पहुंचे। बांस पेड़ों पर चढ़ना आम और बेर तोड़ना, धो धू का प्रिय खेल होता था। वर्षा में जब तालाब और बावड़ियां भर जातीं तो वह अपने मित्रों के साथ तैरने का कार्यक्रम बनाते थे।

इसके अतिरिक्त दुर्गादेवी के मन्दिर में अपने एक अध्यापक के सहयोग से वाचनालय शुरू किया। उन अध्यापक के मित्र श्री पाण्डुरंगदाजी वाले कई समाचार पत्र मंगाते थे वही समाचार-पत्र वाचनालय में रख दिये जाते थे। धो धू बड़ी मेहनत और लगन से वाचनालय में काम करते। समाज सेवा का बीज, कहना चाहिए, इस वाचनालय में ही अंकुरित हुआ उनमें, फिर उन्हीं अध्यापक के सहयोग से एक सहकारी भण्डार खोला। पांच-पांच रुपये के शेयर बेचे गए और पूंजी 800 रुपये तक इकट्ठी की गई। परन्तु हिसाब किताब ठीक तरह से न रख पाने के कारण भण्डार चल नहीं पाया। बड़ी मुश्किल से भागीदारों को उनका पैसा चुका पाए फिर कुछ लोगों ने माफ भी कर दिया।

उन दिनों मराठी की छठी कक्षा की परीक्षा बम्बई, [illegible] अथवा सतारा में हुआ करती थी। 1875 का [illegible], वर्षा मूसलाधार होती थी। धो धू ने अपने सहपाठियों के साथ मुरुड से [illegible] जाने का फैसला कर लिया। परन्तु वर्षा और आंधी-तूफान के कारण [illegible] यात्रा असम्भव हो गई और रत्नागिरी के [illegible] का कार्यक्रम सुगम भी था। परन्तु परीक्षा अधिकारी [illegible] ने दुबले-पतले

को देखते ही पूछा

'तुम्हारी आयु क्या है ?"

"अभी सतरह वर्ष पूरे हुए है," धोंधू ने सूखते हुए कण्ठ से उत्तर दिया।

'नहीं" अध्यक्ष ने गोली दाग दी, "मुझे विश्वास नहीं होता।

धोंधू निराशा के अथाह सागर में डूबने लगे। फिर भी उन्होंने प्रयत्न किया कि वह अपने स्कूल से प्राप्त आयु का प्रमाण पत्र दिखाएं परन्तु

"तुम पन्द्रह से ज्यादा नहीं हो सकते।' अध्यक्ष ने उन्हें फिर एक डुबकी दी—

"सुनिये तो," डूबते डूबते वह बोले।

'मेरा और ज्यादा वक्त खराब मत करो। तुम्हारा दाखिला नहीं हो सकता। चलो, बाहर चलो '

और अधिकारी दूसरे लड़के से बात करने लगा।

मुरुद से पांच लड़के आए थे। चार को दाखिला मिला। बेचारे धोंधू रह गये।

बाद में वह अपने भाई के साथ कोल्हापुर से परीक्षा पास कर गए। फिर उन्होंने अंग्रेजी पढ़ी। दो वर्ष बाद उनके लिए आगे पढ़ने के लिए रत्नागिरी अथवा बम्बई जाना जरूरी पड़ गया। इसके बावजूद कि उनके पिता पढ़ाई का खर्च बरदाश्त नहीं कर पा रहे थे। धोंधू के उत्साह को देखकर उन्होंने किसी न किसी तरह धन की व्यवस्था की और उन्हें रत्नागिरी भेज दिया।

पहले तो वह अपने मित्र राम भाऊ जोशी के साथ उनके मामा श्री वामन आवाजी मोडक के यहां रहे परन्तु एक महीने बाद अलग कोठरी ले ली किराये पर और भोजन का इन्तजाम कर लिया होटल में। दो वर्ष पश्चात ही परीक्षा में सफल होने के कारण दो रुपये प्रति मास वृत्ति मिलने लगी। उन दिनों दो रुपये बहुत होते थे। परन्तु रत्नागिरी का जलवायु रास नहीं आया और बीमार पड़ जाने के कारण वापस मुरुद आ जाना पड़ा।

मुरुद में रहकर उन्होंने प्राइमरी स्कूल में पांच रुपये प्रति माह पर

पढ़ाना शुरू कर दिया और अंग्रेजी का अध्ययन जारी रखा। बम्बई जाकर बी० ए० की परीक्षा दी परन्तु फेल हो गये फिर भी हिम्मत नहीं हारी और निरन्तर पढ़ते रहे। इसका प्रभाव यह हुआ कि उनका प्रवेश बम्बई के राबर्ट मनी स्कूल में आसानी से हो गया।

बम्बई में मुरुद के बंधे और संकुचित वातावरण की अपेक्षा मुक्त और व्यापक वातावरण मिला। पहले तो कुछ अटपटा लगा। जानी अली और प्रिंसिपल क्रास का छुआ पानी भी पीने में वह झिझके परन्तु बाद में प्यार और मानवता के असली दर्शन किये और अपनी पूर्वस्थिति से ऊपर उठे।

1884 में बम्बई विश्वविद्यालय से धोंधू ने बी० ए० पास कर लिया। उल्लेखनीय है कि एलफिन्स्टन कालेज में श्री धोंधू केशव कर्वे के सहपाठियों में थे देशरत्न गोपाल कृष्ण गोखले, गणितज्ञ चिमन लाल सतलवाड और राजनीतिज्ञ वकील टी० के० गज्जर आदि।

बी० ए० के बाद उनके मित्र श्री नरहर पंत जोशी चाहते थे कि धोंधू जी उनके साथ कानून पढ़ें पर क्योंकि वह जानते थे कि वकालत में वह सफल नहीं हो पाएंगे। धोंधू ने कानून पढ़ने के बजाए एम० ए० करना अधिक उचित समझा। यद्यपि रुचि उनकी इसमें भी नहीं थी। बम्बई में वह अपनी पत्नी श्रीमती राधाबाई और पुत्र रघुनाथ को अपने साथ ले आए। पिता की मृत्यु के बाद दाल-रोटी जगह व्यवस्था करना कठिन हो गया था। धोंधू ने ट्यूशन करना शुरू कर दिया था। राधाबाई ने भी पढ़ना शुरू किया और वह शीघ्र ही मैट्रिक की परीक्षा देने योग्य हो गई।

वामन आबाजी मोडक उन दिनों एलफिन्स्टन हाईस्कूल के प्रधानाचार्य थे। वह धोंधू से परिचित भी थे। धोंधू उनके यहां कुछ दिन रत्नगिरी में ठहर भी थे। उसी याद और परिचय के सहारे वह उनके पास अस्थायी रूप से अध्यापन कार्य मांगने पहुंचे परन्तु

'क्या तुम समझते हो कि तुम चालीस लड़कों की क्लास को पढ़ा लोगे?

कर्वे कुछ घबराए फिर भी उन्होंने संभलकर उत्तर दिया

"क्यों नहीं सर! कम-से कम कोशिश तो करूं।"

"यह आसान काम नहीं है" मोडक ने गोली दाग दी। अध्यापक के

काम के लिए तुम अभी छोटे हो।

निराशा के सागर में गोते खाते डूबने लगे फिर भी उन्होंने साहस किया, 'लेकिन सर।"

'आई एम सॉरी,'' मोडक महोदय ने कर्वे को फिर एक झटका दिया। उनकी इस 'लघुता' ने एक बार पहले भी डुबोया था निराशा के अथाह सागर में जब सतारा में उनका दाखिला नहीं हो पाया था।

परन्तु वह एलफिंस्टन कॉलेज में अपने दयालु व परिचित प्राध्यापक श्री हैथोरूथ वाइट (Hathoyuth wait) से मिले जिनके प्रयास से वहीं अस्थायी रूप से अध्यापक रख लिया गया। इसके साथ साथ प्रोफेसर साहब ने उन्हें प्राइवेट ट्यूशनें भी दिलवा दीं जिससे उनकी जिन्दगी का पहिया चल निकला। स्कूल में काम अच्छा रहा तो मोडक ने उन्हें स्थाई काम देना चाहा तो आत्मसम्मानी कर्वे ने मना कर दिया। फिर उन्होंने रसायन और भौतिक विज्ञान में एम० ए० किया।

प्रोफेसर साहब ने उन्हें कायेड्रल गर्ल्स हाई स्कूल और एलकजैण्ड्रिया गर्ल्स स्कूल में गणित व थोड़ा विज्ञान पढ़ाने का अंशकालीन काम दिलवा दिया। वहां अधिकतर यूरोपियन लड़कियां पढ़ती थीं और थीं कर्वे धोती, पारसी कोट और पगड़ी पहन कर स्कूल जाते थे। पारसी कोट के बटन गले तक बन्द रहते थे और धोती भी ऊंची ऊंची ही रहती थी। प्रिंसिपल ने नम्रतापूर्वक उनकी पोशाक के सम्बन्ध में किंचित संकेत किया परन्तु कर्वे तो धोती के अतिरिक्त जिन्दगी में कुछ और चीज पहनी नहीं थी। वह दो तीन दिन इसी पोशाक की समस्या की उधेड़बुन करते रहे किन्तु श्री लाल ने उन्हें बना बनाया पायजामा देकर उन्हें उबार लिया। मांगे हुए कपड़ों में स्कूल जाकर कर्वे को अजीब सा लगा।

उन्हीं दिनों रावट मनी स्कूल के एक अध्यापक श्री राजाराम शास्त्री भागवत ने बम्बई में मराठा हाईस्कूल खोला और अपने परम प्रिय शिष्य कर्वे का अध्यापन के लिए आमन्त्रित किया। आमन्त्रण उनके लिए आज्ञा थी— गुरु आज्ञा।' वह आजीवन मराठा हाई स्कूल के हो गए। प्राइवेट ट्यूशनें फिर भी चलती रहीं। प्रात छह बजे वह मझगांव में सेण्ट पीटर स्कूल के आगे भारतीय और योरोपियन लड़कों को पढ़ाने, जिस गांव में

यह रहते थ, वहां म पदल जात थे। राधाबाई साढ़े चार बजे जग जाती। पाच बजे तक दही भात का कलेवा तैयार कर देती। महागांव म पढ़ा कर कर्वेजी दिन भर मराठा हाइ स्कूल मे रहते। बीच म एक 'प्याली चाय' और टिफिन पर। रात म जब वापस आते तो भोजन करके राधाबाई को पढ़ाई देखत।

परन्तु इस मौन एव अथक परिश्रम का प्रभाव पडा राधाबाई के स्वास्थ्य पर। वह बीमार पड गइ। बम्बई म उनकी देखभाल करने वाला सिवाय कर्वे के और कौन था जिनका एक एक क्षण व्यस्त था, जिन्दगी का पहिया चलान म। तो वह राधाबाई को मुरुद छोड आए ताकि वहा उन्हें आराम मिल सके। परन्तु एक बडे तथ्य म कर्वे ने जान-बूझकर मन मोड लिया कि भारतीय महिलाओ के लिए सबसे बडा सुख और आराम उनक पति क सामीप्य म ही मिलता है। उनका स्वास्थ्य गिरता चला गया और श्रावण की नागपचमी क दिन राधाबाई आराम की नीद सो गइ। तब म 12 वष पहल इसी नागपचमी को कर्वे क पिता का भी निधन हुआ था।

उसी वष (1891) दिसम्बर म पूना के फग्यूसन कालज तथा दक्कन शिक्षा समिति से आदरणीय बाल गगाधर तिलक ने त्याग-पत्र द दिया और कॉलज म गणित के अध्यापक का स्थान रिक्त हो गया। उन्ह एक योग्य प्राध्यापक की खोज थी कि तभी कालेज के सस्थापक श्री गोखले की दृष्टि एल्फिनिस्टन कॉलिज मे पढान वाले एक अध्यापक पर पडी। वह अध्यापक कर्वे थे। कर्वे को आमत्रित किया गया। फग्यूसन कॉलज का निमत्रण कम गौरव की बात नही थी परन्तु वह स्वय बी० ए० थे जब कि पढाना था बी० ए० की कक्षाओ को ही। कर्वे कुछ झिझके।

'पागल मत बनो" राजाराम शास्त्री न उन्ह समझाया, और चेतावनी दी "अगर इस निमत्रण को तुमन ठुकरा दिया तो फिर जीवन भर इस भूल के लिए पछताना पडेगा तुम्हें।"

"यही काफी है मरे लिए कि शिक्षा के द्वारा मुझे आपकी सेवा का अवसर मिल रहा है। पर मैं मराठा हाई स्कूल कैसे छोड दू ?" कर्वे जी न विवशता व्यक्त की।

फर्ग्यूसन कॉलेज तुम्हें बाकायदा बुला रहा है। वहा तुम्हे इस सेवा

और व्यापक अवसर मिलेगा।

और कर्वे ग्रेजुएट हुए मान गये। वह फर्ग्यूसन कॉलेज में गणित पढ़ाने लगे। आरम्भिक काल में ही उन्हें दक्षिण शिक्षा समिति का आजीवन सदस्य भी बना लिया गया।

महर्षि कर्वे नारी कल्याण के क्षेत्र में वरदान प्रमाणित हुए। वैसे तो 1856 में विधवा पुनर्विवाह विधेयक बन गया था परन्तु समाज में पाखण्ड और परम्परा तब भी अपनी जड़ें जमाए हुए थी। बंगाल के ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की भांति महाराष्ट्र में विष्णु शास्त्री ने यह आन्दोलन चलाया था। उन्हीं दिनों इन्दुप्रकाश नाम का पत्र प्रकाशित किया जाने लगा जो उक्त आन्दोलन का माध्यम बना। कर्वे जब पढ़ते ही थे तब 'केसरी' में एक कविता निकली थी जो कुछ कुछ इस प्रकार थी

> रोक दो ये यातनाएं
> बरसाओ दया और कृपा
> अपनी ही निसहाय (विधवा) बहनों के प्रति
> हटा दो, ओ भाइयो!
> अपने दिलों से—
> कटु भावनाएं
> और खोल दो द्वार
> नई जिन्दगी के
> अपनी बहनों के लिए
> उनके पुनर्विवाह से।

युवक कर्वे उस मराठी कविता को उत्साह से गा गाकर सुनाते। जहां कहीं भी उन्हें जरा सा भी अवसर मिलता वह उसका पाठ किये बिना नहीं रहते। हमेशा एक विचित्र उत्साह और प्रेरणा से उनका मन भर जाता। उन्होंने अपने एक बाल सखा दाम भाऊ जोशी को इस ओर प्रेरित किया और एक सुगठित योजना के अनुसार वह दोनों जबलपुर गये, साथ में राम भाऊ जोशी अपनी विधवा बहन को भी ले गये। वहां उन्होंने बाकायदा एक योग्य पुरुष से उसका विवाह कर दिया। इस योजना में उनके मां-बाप की मर्जी बिलकुल नहीं थी। फिर भी उन्होंने भी ऐसा ही कदम अपने लिए

भी उठाया। अपने एक अन्य मित्र नरहर पंत की विधवा बहन गोडूबाई से स्वयं शादी कर ली अपने परिवार वालों की मर्जी के विरुद्ध। जब वह सम्पूर्ण समाज का मुकाबला करने पर तुले हुए थे, तब वह परिवार तो केवल एक इकाई ही था उस बड़े समाज की।

कर्वे के इस साहसिक कदम की सराहना की गई। 'इन्दु प्रकाश', सुबोध पत्रिका' 'ज्ञान प्रकाश' 'सुधारक', 'केसरी' तथा वैदर्भ' आदि प्रगतिशील समाचार पत्रों ने उनकी प्रशंसा में अपने कालम रंग डाले और उन्हें बधाइयां दी। इस अपूर्व आनंद के अवसर पर कर्वे ने अपनी नई पत्नी का नाम भी आनन्दी बाई रखा। आनन्दी बाई ने राधाबाई की रिक्तता को काफी पूरा किया। पुणे के फर्ग्यूसन कालेज के प्रधानाचार्य श्री आगरकर ने उन दोनों को भोज पर आमंत्रित किया। श्रीमती आगरकर ने श्रीमती आनन्दी बाई कर्वे को नारियल और ब्लाउज के लिए एक कपड़े का टुकड़ा (खणनारलातें ओट भरली) भी भेंट किया। महाराष्ट्र में यह सम्मान केवल उन्हीं महिलाओं को दिया जाता है जिनका विवाह विधिवत माना जाता है। परन्तु यह सम्मान उन्हें अन्य अध्यापक पत्नियों से नहीं मिल पाया और इसीलिए वह उनमें ज्यादा घुल मिल नहीं पाई। अगले वर्ष उनके एक पुत्र हुआ शंकर।

एक पश्चिमी विचारक कार्लाइल ने ठीक ही कहा है 'भाग्यशाली वह है जिसे अपना (मन वांछित) कार्य मिल गया है। उसे किसी दूसरे वरदान की जरूरत नहीं है" आचार्य कर्वे ने विधवा विवाह संघ की स्थापना की जिसका सारा काम वह स्वयं करते थे। उन्हें उसका मंत्री भी बनाया गया था। संघ ने बाद में एक हास्टिल भी खोला। वह कर्वे के ही घर में खुला। उसमें उन विधवा महिलाओं के बच्चों को रखा जाता था जिनका पुनर्विवाह कर दिया जाता था। कर्वे पति-पत्नी दोनों मिलकर अपने बच्चे के साथ उन 'अनाथ' बच्चों का भी पालन पोषण करते थे। कालान्तर में उस संघ का कर्वे के सुझाव पर ही विधवा निषेध विवाह उन्मूलन संघ के रूप में बदल दिया गया। देखने व सुनने से संघ का नया रूप ज्यादा प्रगतिशील और क्रांतिकारी दिखाई दिया।

कर्वे ने बालिका आश्रम की स्थापना की। पहले उसमें केवल विधवाओं

को ही भरती किया जाता था। वहा उन्हें पढाया जाता था ताकि उनका मानसिक विकास हो और उनमे अपने पैरो पर खडा होने की स्वावलम्बी भावना बलवती हो। परन्तु रत्नगिरी से एक सज्जन ने उन्हें लिखा कि वह अपनी 14 वर्षीय ज्येष्ठ पुत्री को उनके आश्रम मे भेजना चाहते हैं जो विधवा है परन्तु उन्हें भय है कि ऐसा करने से उनकी अन्य दो पुत्रियो का विवाह नही हो पाएगा समाज म। इसलिए उन्होंने अनुरोध किया कि कर्वे जी उनकी तीनो पुत्रियो को ही भरती कर लें कर्वे ने देखा, वह तीनो लडकियां कुशाग्र बुद्धि की थीं। उन्होंने लडकियो के सामने एक शर्त रखी कि वह 18 वर्ष की आयु तक उनमे से किसी के विवाह की बात नहीं सोचें। वह सहर्ष मान गए और लडकियाँ भरती कर ली गइ। तब से विधवा आश्रम बालिका आश्रम मे बदल गया। फिर तो और भी लडकिया भरती होने लगी।

सहयोग ? श्री गोपाल कृष्ण गोखले का सहयोग उल्लेखनीय है। लोक मण्डल के कामो से जरा भी फुरसत मिलती तो गोखले जी कर्वे जी के आश्रम मे आ जाते। आचार्य कर्वे की इच्छा थी जिस प्रकार गोखले ने राजनीति को आध्यात्मिक रंग म रंग दिया था, उसी प्रकार समाज की सेवा को भी आध्यात्मिक जामा पहना दिया जाए। मानवता की सेवा सबसे बडी ईश्वर भक्ति है। कर्वे ने अपने कार्य स्थल को मठ कहना शुरू कर दिया था और मठ अत्यन्त सादगी से चला। उसके कार्यकर्ताओ का भिक्षा लेने का भी विधान बनाया गया। दो महिलाए आगे आइ और भिक्षा के लिए निकली। श्रीमती आनन्दी बाई कर्वे भी पीछे नही रहीं।

किन्तु आलोचनाए भी कम नही हुईं जिससे कर्वे का मन बहुत दुखी हुआ। दिन रात काम म लगे रहने के पश्चात भी यह समाज संतुष्ट नहीं कर पा रहे थे फिर भी वह रुके नही उन्होंने यही समझा कि उन आलोचनाओ का यही कारण होगा कि उनके काम म कहीं कुछ न कुछ कमी अवश्य दिखाई पडती है उन आलोचको को और इसलिए वह और भी मुस्तैदी से अपने मिशन म जुट गए।

जापान म महिला विश्वविद्यालय की तरह आचार्य कर्वे ने भारत म एक महिला विश्वविद्यालय की स्थापना सजाए हुए थे। आरम्भ में

प्रेरणा म बल मिला। भारत म आकर उन्होने जब इस प्रकार का प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो सब ओर से पूरे सहयोग के आश्वासनो की बौछार होने लगी। यहा तक कि तत्कालीन गवनर जनरल की कायकारी परिषद के शिक्षा सदस्य सर शकरन नायर न सरकार की ओर से भी आर्थिक सहयोग का वचन दिया। उनसे मिलन वह बनारस गए तो वहा भेट हो गई श्रीमती डाक्टर बेसेण्ट से। उन्होने योजना की प्रशसा की और सलाह दी कि कर्वे उस सस्थान को अखिल भारतीय स्तर पर चलाए, साथ मे उन्होने डेढ सौ रुपये दान भी दिए। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर न भी विशेष दिलचस्पी दिखाई। विशेष तौर से उन्हें स्वदेशी माध्यम की बात बहुत पसन्द आई। उन्होने तो यहा तक कहा कि सरकार की मान्यता के चक्कर म न पडे। यह ज्यादा अच्छा है कि इस (मान्यता) को अन्त म प्राप्त करें, बजाए इसके कि इसके लिए आरम्भ स ही प्राथना की जाए।

भारत लोक सेवा आयोग के सदस्य की हसियत से आए डाक्टर एच० ए० एस० फिसर ने विधवा भवन देखा और कहा कि महिलाओ के लिए विश्वविद्यालय आपके सामाजिक काय मे चार चाद लगा देगा। मैं अपन अन्त स्थल स इसकी सफलता की कामना करता हू।

महात्मा गाधी को भी कर्वे की यह योजना बहुत भाई। विश्वविद्यालय म स्वदेशी भाषा के माध्यम की योजना को भी पसन्द किया। परन्तु उन्होने प्रस्ताव रखा

'मेरे विचार से उच्च शिक्षा के लिए अग्रेजी वकल्पिक विषय होना चाहिए।'

परन्तु कर्वे न नम्रतापूवक आपत्ति प्रस्तुत की और कहा, 'आपके आशीर्वाद के बिना चलना हमारे लिए दुर्भाग्यपूण बात होगी यदि आप इस बात पर जोर देते है कि अग्रेजी वकल्पिक विषय होना चाहिए ?'

गाधी जी थोडी देर मौन रह, फिर बोले ' केवल आपके लिए कर्वे जी, मैं झुकता हू। फिर भी मेरी राय वही है।''

और गाधीजी न दस रुपय सालाना चन्दा देने के लिए पेशकश की। कर्वे जी न गाधी जी से आर्थिक सहयोग की अपेक्षा नैतिक सहयोग की प्राथना की परन्तु वह माने नही और अनुरोध किया कि कर्वे जी उनम

नियमित रूप से च न्दा मगवा लिया करें जब वह विश्वविद्यालय का वार्षिक प्रतिवेदन उनके पास प्रेषित करें।

1942 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ने आचार्य कर्वे को डाक्टरी मानद उपाधि से सम्मानित किया, फिर उसके नौ वर्ष बाद पूना ने उन्हें डी० लिट० की उपाधि प्रदान की और 1955 में उनके ही द्वारा स्थापित श्रीमती नथी बाई दामोदर ठाकरसी भारतीय महिला विश्वविद्यालय ने डी० लिट० से सम्मानित किया।

1957 में डॉक्टर कर्वे 100 वर्ष के हो गए। देश भर में उनकी जन्म शताब्दी धूमधाम से मनाई गई। भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' से विभूषित किया। बम्बई विश्वविद्यालय के लिए वह क्षण अत्यन्त गौरव का था जब उसने अपने ही भूतपूर्व विद्यार्थी को एक बार फिर अपने दीक्षान्त मंच पर आमंत्रित करके डॉक्टर ऑफ ला की मानद उपाधि से सुशोभित किया। तब से ठीक 75 वर्ष पहले 1884 में उसी विश्वविद्यालय ने उन्हें कला स्नातक की उपाधि प्रदान की थी। दीक्षान्त अवसर पर कुलपति महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री प्रकाश जी ने कहा था, "हम से 'डाक्टर आफ ला' की उपाधि स्वीकारने के लिए महर्षि कर्वे के प्रति कृतज्ञ होने का कारण है हमारे लिए। उन्हें सम्मानित करने के साथ साथ वास्तव में हम अपने आपको ही सम्मानित कर रहे हैं।"

और 1958 में गणतन्त्र दिवस के शुभ अवसर पर आचार्य कर्वे को 'भारत रत्न' से अलंकृत करके उन्हें देश का जो सर्वोच्च सम्मान दिया वह उनकी सेवा को देखते हुए उपयुक्त ही था।

9 नवम्बर 1962 में समाज सेवा की यह प्रज्वलित मशाल एक दूसरे और बड़े प्रकाश में विलीन हो गई जो तब से 105 वर्ष एक दीप के रूप में प्रदीप्त हुई थी।

महर्षि कर्वे अपने जीवन की सांझ में भी स्वस्थ और चुस्त दीखते थे।

डॉ० विधानचन्द्र राय

—1961
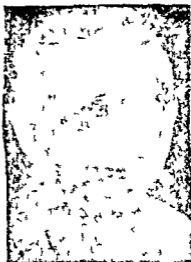
गाधीजी पूना के आगाखां महल म कैद थ और उन्ही दिनो उन्होन इक्कीस दिनो का अनशन आरम्भ कर दिया था। कुछ दिना तक तो अनशन चलता रहा। सरकार न उनकी देखभाल करन के लिए तीन सरकारी डॉक्टरो का एक दल नियुक्त कर दिया था। वे डॉक्टर थ—कनल शॉ कनल भण्डारी और जनरल कण्डी। उन्होन 1923 म गाधीजी के अपडिक्स का ऑप्रेशन भी किया था। इस दल के अतिरिक्त गाधीजी की इच्छानुसार तीन गैर सरकारी डॉक्टर भी नियुक्त किय गए थ—डॉक्टर गिल्डर डॉक्टर सुशीला नयर और डॉक्टर विधानचन्द्र राय।

उपवास का 13वा दिन था। गाधीजी की स्थिति ठीक नही थी। उनके रक्त एव मूत्र की जाच से पता चला कि स्थिति गम्भीर होती जा थी। पट मे कुछ भी रुक नही पा रहा था। चेतना भी लुप्त होती जा रही थी। भारत सरकार को सूचित कर दिया गया था कि गाधीजी बचेंगे नही और सरकार न भी 'वास्तविकता' का सामना करने के लिए पूरी तैयारी कर ली थी। किस स्थान पर उनका दाह सस्कार किया जाए—यह भी निश्चित कर लिया गया था

दिन के लगभग ढाई बजे हैं जनरल कण्डी अत्य त निराश दीख रहे हैं वह घबराए हुए भी हैं और डॉक्टर विधानचन्द्र राय स बात कर रह

है 'डाक्टर राय ! गाधीजी म अनशन कर पान की शक्ति शप नहीं रही है हम उन्ह ग्लूकोज इन्जक्शन स उनके शरीर मे पहुचाना चाहत है अगर वह उस मुह स न लेंगे ता "

मैं जब पूना आया था जनरल ! तो गाधीजी ने मुयम वायदा करवाया था कि आप ग्लूकोज नहीं देंगे, न मुह स, न इन्जक्शन से

(वैसे गाधीजी सरकार के बन्दी थे और उन्ह जबरदस्ती ग्लूकोज दिया जा सकता था।)

डाक्टर राय न आग कहा, 'बहुत सम्भव है इस तरह स उनक मस्तिष्क पर आघात पहुचे जिसका परिणाम ठीक न निकले। एसी स्थिति म मैं ससार का यह बतलाने के लिए सम्पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहूगा कि बावजूद मरी चेतावनी के गाधीजी का ग्लूकोज दिया गया जिसस उनकी मृत्यु हो गई '

और सरकारी डाक्टर इतना बडा जोखिम लेन को तयार नहीं हुआ। जनरल कडी गाधीजी के पास गए और उन्होंने गाधीजी स कुछ लेने के लिए फिर अनुरोध किया। परन्तु गाधीजी ने मना कर दिया। डाक्टर निराश और निस्सहाय स बाहर आ गए। उनकी आखो म आसू झलक रहे थे।

तब डाक्टर राय गाधीजी के पास गए। केवल चार आऊस मीठा नीबू रस लेने के लिए राय ने गाधीजी से अनुरोध करते हुए समझाया कि उससे उनके पेट म शक्ति आएगी और अनशन के व्रत पर प्रभाव भी नहीं पडेगा क्योंकि नीबू म साइट्रट समूह का पेय ह और गाधीजी मान गए।

गाधीजी स डॉक्टर राय की भेंट जून, 1925 म हुई थी। तब देश बन्धु चितरजनदास का देहान्त हुए कुछ ही दिन हुए थे। गाधीजी कलकत्ता म देशबन्धु की विधवा श्रीमती बसती देवी के पास ही ठहरे हुए थे कि तभी डाक्टर राय भी शोक सवेदना व्यक्त करने वहा पहुचे। श्रीमती बसती देवी उन्ह देखते ही फूट पडी। गाधीजी ने नवागन्तुक का परिचय पूछा और जब उन्हें मालूम हुआ कि यही डाक्टर विधानचन्द्र राय है तो एक मिनिट जैसे दोनो आपस म बहुत समय स जानते हो और यह मित्रता जो विश्वास एव सम्पूर्ण के रूप म बदल गई और तईस वर्षों तक रही।

डॉक्टर राय के जीवन पर जिन विभूतियो ने चिर प्रभाव छोडा, उनम

गाधीजी, दशबन्धु के अतिरिक्त उनके शिक्षक प्रधानाचाय कनल ल्यूक्सि उल्लेखनीय एव प्रमुख हैं। कनल ल्यूक्सि की पारखी आखो ने युवक विधानचन्द्र राय का उज्ज्वल भविष्य भलीभाति देख लिया था। कनल ल्यूक्सि अग्रेज थे फिर भी उन्हे विधानचन्द्र मे विशेष रुचि थी और सदा उनकी सहायता करते रहे। एक बार उन्होने कहा था—देखो विधान! मै तुम्हे एक शिक्षा देता हू—किसी भी अग्रेज के सामने चौथाई इच भी मत झुकना, नही तो वह तुम्हे दोहरा (झुका) कर देगा और डॉक्टर विधानचन्द्र राय ने इस शिक्षा को अपने जीवन का मूल मन्त्र मान लिया।

कॉलिज मे गये तो उनकी दृष्टि एक वाक्य पर पडी—"जो भी तुम करने के लिए मिले उसे सदा भरपूर शक्ति से तू कर' यह पक्तिया भी उनके शिक्षक कनल ल्यूक्सि की शिक्षा महात्मा गाधी के आदेश से कम महत्त्वपूर्ण न थी। इनसे उन्हे आगे बढने की शक्ति मिलती थी। सघर्षों से जूझने के लिए पथ प्रदशन मिलता रहता था। फिर भी वह थे स्वभाव से अत्यन्त नम्र।

एफ० ए० और बी० ए० पास करने के बाद भी उनकी रुचि किसी विशेष पेशे मे नही थी। वकालत उनके पिता को पसन्द नही थी। सरकारी नौकरी की तरफ उनका रुझान नही था। अभियन्त्रण अथवा चिकित्सा मे आसानी से जा सकते थे। बस यू ही कलकत्ता जाकर वहा के मेडिकल मे भरती हो गये। आवेदन उन्होने अभियन्त्रण के लिए भी दिया था पर प्रवेश पहले जहां मिल गया वहा ही अध्ययन आरम्भ कर दिया। यह बात 1901 की है।

दूसरे वष पिता सेवा से निवत्त हो गए। पढाई का खर्चा उठाना एक समस्या बन गई। परन्तु तभी सयोग से छात्र विधान को छात्रवृत्ति मिलने लगी और गाडी फिर चल निकली। कनल ल्यूकिस ने उन्हे मेल नर्स का काम भी दे दिया जिससे उन्हे आठ रुपये (मासिक) मिलने लगे। (तब एक रुपये की बडी कीमत हुआ करती थी)।

1904 मे बग भग के कारण श्री अरबिन्दु घोष के विरोध का स्वर गूजा। उन दिनो एग्लो इण्डियन लोग भारतीयो को अपने से हीन समझते थे। एक दिन विधानचन्द्र राय अपने एक साथी के साथ कलकत्ता से वर्द्वान जा रहे थे। रेल के इण्टर क्लास मे वे दोनो साथी यात्रा कर रहे थे। सामने

वाली सीट पर एक गोरा इण्डियन जाने भी मांग कर रहा था। दूसरी सीट पर पसरा हुआ जबकि विधानचन्द्र और उनका साथी खड़े खड़े सफर कर रहे थे। उन्होंने बैठने के लिए स्थान मांगा, पर वह तो 'साहब' था। ऐसा देता बैठने की जगह? साथ ही अनाप शनाप भी बकना शुरू कर दिया। बात बढ़ गई। कर्नल ल्यूकिस की चौथाई ...र भी न चूकने की शिक्षा उन्हें याद आ गई। बात हाथापाई तक जा पहुंची और 'साहब' ने अपना दुम दबा ली। इस घटना की याद करते हुए डाक्टर राय ने बताया था कि—"उस समय तो ऐसा लगा था कि हम सम्पूर्ण अंग्रेज जाति से ही जीत गए थे।"

वही अंग्रेजियत के भूत से विधानचन्द्र भी मुक्त नहीं हो सके थे। एक बार उन्होंने अपना नाम तक बैंजिमन चन्द्र राय ही रख लिया था। इसमें ज्यादा दोष विधानचन्द्र का था भी नहीं। बंगाल में इस लहर से प्रायः सभी प्रभावित हुए थे। ठाकुर से टैगोर, बन्द्योपाध्याय से बनर्जी और मुखोपाध्याय से मुखर्जी उसी पश्चिमी हवा की देन है। फिर भी राष्ट्रीयता और सत्यता का दामन नहीं छोड़ा था विधानचन्द्र ने।

1906 में चिकित्सा के स्नातक हो जाने पर उनकी नियुक्ति सहायक सर्जन के पद पर हो गई। डॉक्टर विधान परिश्रम से कभी भी पीछे नहीं रहे। आरम्भ में जब उन्होंने प्रैक्टिस की तो उनकी फीस केवल दो रुपए हुआ करती थी। परन्तु एम० डी० की तैयारी करने के कारण 'प्रैक्टिस' के लिए समय कम ही मिल पाता था। फिर भी उनके मरीज उन्हें नहीं छोड़ते थे। उनका अपने डाक्टर में विश्वास अपार था।

इंग्लैण्ड जाने के लिए भी कम बाधाएं नहीं आयीं। जिस जहाज से उन्हें जाना था वहां पर यह प्रश्न उठा कि यात्री भारतीय है अथवा यूरोपियन। और यदि यात्री भारतीय है तो वह अपने दूसरे साथी यात्री का भी प्रबन्ध स्वयं करे अथवा एक यूरोपियन यात्री का भाड़ा दे जो दुगुने किराये के बराबर होता था। फिर भी कर्नल ल्यूकिस के प्रयासों से जहाज वाले इस शर्त पर उन्हें ले जाने के लिए राजी हो गए कि उनके केबिन में दूसरा यात्री स्वीकार नहीं किया जाएगा।

इंग्लैण्ड पहुंचे तो नई परेशानी। किस संस्थान में प्रवेश मिले? 'सेन्ट बर्थोलोम्यूज' में तो कर्नल ल्यूकिस स्वयं पढ़ चुके थे। वहां के लिए

श्री विधान के पास कर्नल ल्यूकिस का परिचय पत्र भी था। पर वह सस्थान लन्दन का सबसे महगा सस्थान था। फिर भी डाक्टर विधान का दृढ सकल्प था कि प्रवेश लेना है तो सेण्ट बर्थोलोम्यूज म ही। वह वहा के डीन डॉक्टर शोर से मिले और उन्होंने मना कर दिया। दूसरी बार मिले—फिर वही इनकार। तीसरी बार डेढ महीने बाद फिर मिले और डाक्टर शोर ने चुपचाप प्रवेश दे दिया।

कालान्तर म अपनी लग्न, परिश्रम और निष्ठा से डॉक्टर शोर का ही मन नही जीता अपितु उनकी फीस भी माफ कर दी गई। अपने शल्य प्रयोगो म काम आने वाले मृतक शरीरो के पैसे उन्होंने नही लिये जिसका प्रभाव वहा के स्थानीय विद्यार्थियो और डॉक्टरो पर भी पडा। मई जून के अवकाश म जब सारा कालिज खाली हो जाता था डॉक्टर विधान और बैनर्जी का एक अन्य विद्यार्थी डाक्टर अपने अपने अभ्यास म लगे रहते थे।

स्वदेश लौटे तो उन्ह पुलिस कर्मचारियो को 'प्राथमिक चिकित्सा' पढाने का बोर काम सौंपा गया। शायद यह बदला था अस्पताल के अधिकारियो की तरफ से उनकी उस हार का जो उनके मना करने के बावजूद भी डाक्टर राय को गवनर द्वारा विदेश जाने के लिए छुट्टी मिल गई थी।

डाक्टर राय की लोकप्रियता बढती जा रही थी। कार्मिकल मैडिकल कालिज म अध्यापन-कार्य भी शुरू कर दिया उन्होंने। तत्पश्चात वह विश्व विद्यालय की सैनेट के सदस्य भी रहे। 1923 मे बगाल कौंसिल की सदस्यता के लिए भी अपने घनिष्ठ मित्र सर आशुतोष मुखर्जी के अनुरोध पर सर सुरेन्द्रनाथ के विरोध म चुनाव भी लडा और स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप म जीता भी। उस समय डॉक्टर राय केवल इकतालिस वर्ष के थे। उन्ही दिनो उन्होंने ढाका विश्वविद्यालय अधिनियम सशोधित करने म भी सक्रियता से भाग लिया।

राष्ट्रीय आन्दोलन से डाक्टर राय अपने को अलग न रख सके। देश बन्धु की प्रेरणा से ही वह राजनीति म उतरे थे और कौंसिल म देशबन्धु के निधन के पश्चात वही स्वराज्य पार्टी के अधिकृत वक्ता माने जाने लगे थे। खडगपुर की रेलवे हडताल के समय 1927 म कौंसिल मे 'काम रोको' प्रस्ताव प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व डाक्टर राय ने ही अपने हाथो में

लिया था और अगले वर्ष 1928 में पुलिस के बजट पर सबसे अधिक वाचाल डॉक्टर साहब ही थे। क्योंकि साइमन कमीशन के विरोध में पुलिस ने कलकत्ता में अत्यंत क्रूरता का प्रदर्शन किया था।

1937 में प्रांतों में देशी सरकार बनी तो बंगाल की कांग्रेस सरकार के मुख्यमंत्री के पद पर डॉक्टर विधानचन्द्र राय को ही बिठाया गया। यह संयोग ही था कि बंगाल की सत्ता उन्हीं विधानचन्द्र राय को सौंपी गई जिनके पूर्वज प्रताप आदित्य ने मुगलों से लड़कर बंगाल को गुलामी के शिकंजे से मुक्त कराया था। डॉक्टर राय उन्हीं वीर स्वतंत्रता सेनानी प्रताप आदित्य की आठवीं पीढ़ी में थे। प्रताप आदित्य के पिता महाराज विक्रमादित्य और उनके भाई राजा जसवंत राय का कायस्थ घराना उन दिनों पूर्वी भारत में प्रभावशाली घरानों में से एक माना जाता था। मुगल और उनके बंगाल स्थित सूबेदार उनकी बड़ी इज्जत करते थे परन्तु युवराज प्रताप के स्वतंत्रता प्रेमी विचार उन्हें फूटी आंख सुहाते न थे। महाराज विक्रमादित्य ने मुसीबत टालने तथा मुगलों के प्रकोप से बचने के लिए युवराज प्रताप को दिल्ली मुगलों के दरबार में भेजना उचित समझा। सोचा, नया खून है राजधानी की तड़क भड़क में मन रम जाएगा और मुगलों से मित्रता बढ़ाने का अवसर भी मिल जाएगा परन्तु जो सोचा था वह हुआ नहीं। युवराज प्रताप ने अपने दिल्ली प्रवास का समय गंवाया नहीं। वहां रहकर उसने मुगलों की विलासता देखी। सेना की समर नीतियों और प्रणालियों को भी परखा, सीखा। जब वह वापस लौटा तो मुगलों की ही तरह अपनी सेना का गठन किया और तुरंत जसौर पर अपना आधिपत्य जमा लिया। फिर उड़ीसा भी छीन लिया। 1582 में वैशाख पूर्णिमा के शुभ मुहूर्त पर स्वयं को दक्षिण बंगाल का राजा घोषित कर दिया। जहां कायस्थ कुल मुगलों के प्रति वफादारी का [illegible] भरते न थकते थे वहां ही बंगाल के इस कायस्थ वीर ने स्वतंत्रता [illegible] मुगलों को चौंका दिया था। कई बार [illegible] के प [illegible] हराकर मान सिंह को भेजा। कस के [illegible] औ [illegible] नके पुत्र उद [illegible] दित्य को बंदी [illegible] ता [illegible]
महिलाओं के साथ

मुगलो के हाथ न चढ़ पाए और थोडी दूर जाकर उनका जहाज जलमग्न हो गया। जहा चित्तौड की रानी पद्मिनी ने अग्नि मे भस्म होकर जौहर किया था, वहा उन कायस्थ ललनाओ ने जल समाधि लेकर एक नया गौरवमय कीर्तिमान स्थापित किया।

और उसी स्मरणीय कायस्थ कुल मे बाकीपुर पटना म 1 जुलाई 1882 के दिन जन्म डाक्टर विधानचन्द्र राय। पिता जी प्रकाशचन्द्र राय आबकारी इन्स्पेक्टर थ। दो बहनो और तीन भाइयो मे सबसे छोटे होने के कारण बालक विधान को सभी का अधिकाधिक प्यार प्राप्त हुआ था। उनके केश लम्बे थ। उनके पिता कहा करते थे, उनका यह छोटा बेटा एक-न एक दिन सन्यासी बनेगा।

सन्यासी तो वह नही हुए फिर भी ब्रह्मचारी जीवन भर अवश्य रहे और सन्यासी स भी बढकर एक कुशल चिकित्सक के रूप मे मानवता की सेवा जीवन-पय त करत रहे। मुख्यमत्री हो जाने के बाद भी वह डॉक्टर का फज निभात रहे।

पहले तो उन्हे गाव की पाठशाला में भेजा गया जहा उन्हे बगला भाषा का अक्षर ज्ञान कराया गया फिर अग्रेज साधन' के साथ हाई स्कूल में भर्ती हुए। कमजोर वह शुरू स ही थे। कद भी नाटा था। इससे खेल-कूद में सदा फिसड्डी रहे। अलबत्ता बाद में फुटबाल में रुचि बढी और वह भी इतनी कि एक बार अपनी परीक्षा ही अधूरी छोडकर खेल मे शामिल हो गए थे।

फिर भी पढाई में वह बिलकुल नियमित रहे। मा बाप को कभी भी उनस यह कहने की आवश्यकता नही हुई कि 'विधान पढा। चौदह वष की अल्पायु में ही मा का स्वगवास हो गया, फिर भी वह अपने सभी भाई-बहनो के साथ नियमित रूप से पढ़त रहे।

जनवरी 1938 मे श्री सुभाषचन्द्र बोस अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए चुने गए परन्तु एक वष के बाद ही गाधीजी ने उनके विरोध में डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैया को खडा किया और काय-कारिणी की सदस्यता के लिए डॉक्टर राय से अनुरोध किया गया। वह इस विवाद म पडना नही चाहते थे। उन्हे कांग्रेस में पडने वाली दरारें साफ

दिखाई देने लगी थी। इसी से 1940 तक उन्होंने कांग्रेस से अपने को अलग रखना ही उचित समझा। फिर भी वह विश्वविद्यालय और नगर निगम से सम्बद्ध रहे। 1939 में अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद के अवैतनिक अध्यक्ष पद के लिए डाक्टर राय को चुना गया।

उसी वर्ष द्वितीय विश्व-युद्ध छिड गया और अंग्रेज सरकार ने भारत को भी जबरदस्ती उस युद्ध में घसीट लिया। कांग्रेस ने उस जबरदस्ती का विरोध किया और प्रान्तीय सरकारों से त्यागपत्र दे दिया। परन्तु डाक्टर राय कांग्रेस के उस फैसले से सहमत न थे और वह कार्यकारिणी से पुनः अलग हो गये।

1940 में भारत सरकार ने सेना के चिकित्सा विभाग में नवयुवकों को भरती करने मे डॉक्टर राय से सहयोग का अनुरोध किया और गांधीजी की अनुमति पाकर डॉक्टर राय ने न केवल भरती में सहयोग दिया बल्कि भरती किये गय भारतीय चिकित्सकों को वह सुविधाए तक दिलवाई जो प्रथम युद्ध में उपलब्ध नही थी।

भारत छोडो' आदोलन में प्राय सभी नेताओ की गिरफ्तारियां हुई। सुभाषचन्द्र बोस को भी गिरफ्तार कर लिया गया और कलकत्ता नगर निगम म एक सदस्य का स्थान रिक्त हो गया। उनके लिए डाक्टर राय का नाम प्रस्तावित किया परन्तु उन्होने शरतचन्द्र बोस के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किया परन्तु जब शरतचन्द्र बोस को भी जेल भेज दिया गया तब उन्होने कांग्रेस के लिए चुनाव लडा और जीता।

1941 के अन्त मे डाक्टर राय को कलकत्ता विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनाया गया। उन्ही दिनो जापान के आक्रमण के कारण रगून सम्पूर्ण रूप से आतकित था। वहा से लोग भागकर कलकत्ता आ रहे थे। डाक्टर राय ने उन्हे बसाने के लिए स्कूलो और कालिजो में आवासीय व्यवस्था का इस प्रकार प्रबन्ध किया कि शरणार्थियों को सिर छिपाने के लिए स्थान भी मिल गया और साथ ही विद्यार्थियो की शिक्षा व परीक्षा म विघ्न भी नहीं पडा। दिन रात परिश्रम किया और शिक्षा व परीक्षा का दुबारा प्रबन्ध किया। कठिन परिस्थिति म फसे अध्यापकों को उनकी भविष्य निधि से सहायता भी दिलवाई और विश्वविद्यालय के कर्मचारियो को उचित मूल्य

राय का प्रयास भी कम नहीं था वहां।

राजनीति और चिकित्सा के अतिरिक्त डॉक्टर राय की रुचि पत्रकारिता में भी थी। वह सिद्धहस्त पत्रकार भी थे। 1923 में देशबन्धु चितरंजनदास के सम्पादन में कलकत्ता से निकाला गया 'फारवर्ड'। और वह 'फारवर्ड' के साथ जुड़ गये। देशबन्धु के निधन के पश्चात तो फारवर्ड का पूरा उत्तरदायित्व उन्हीं के कन्धों पर आ गया। 'फारवर्ड' व उसके अन्य सहयोगी प्रकाशन—'बंगवाणी' और 'आत्मशक्ति' भी उन्हीं की देख रेख में निकलने शुरू हुए। पत्रकारिता उन दिनों मिशन हुआ करती थी न कि आज की तरह व्यवसाय। 'फारवर्ड' अपने खरे व स्पष्ट लेखन और सम्पादकीय के कारण सरकार के दमन चक्र से बच न पाया और बन्द कर दिया गया। तत्पश्चात 'लिबर्टी' का प्रकाशन शुरू किया गया परन्तु 'लिबर्टी' 'फारवर्ड' का रिक्त स्थान भर न सका। इसलिए फिर से 'फारवर्ड' निकालना पड़ा।

डाक्टर राय यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया के संगठन में भी अत्यन्त सक्रिय रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में पत्रकारिता का पाठ्यक्रम डाक्टर राय की प्रेरणा से आरम्भ किया गया 1971 में। यद्यपि इसकी परिकल्पना उन्होंने बहुत समय पूर्व से की हुई थी। उद्घाटनार्थ उन्हें आमन्त्रित किया गया था। डॉक्टर राय प्रेस की स्वतन्त्रता के पक्षधर सदा से रहे—जब वह मुख्यमन्त्री हुए तब भी।

डॉक्टर राय अमरीका में थे। तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारत से डाक्टर राय को टेलीफोन किया

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के लिए वापस आ जाओ।

क्या वास्तव में जरूरत है आने की

पांच महीनों से ज्यादा टिक न पाऊंगा मैं वहां (भारत में)।

क्यों

हां ऐसे ही इससे ज्यादा अच्छा काम करने न दो मुझे

फिर डाक्टर आने भी नहीं देंगे आंखों का इलाज जो चल रहा है

मेरा।

तो फिर ठीक है हम सरोजिनी जी को कहते हैं।

बिलकुल ठीक वही बहुत बढ़िया रहेंगी

और उत्तर प्रदेश का राज्यपाल बना दिया गया भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू को जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

डॉक्टर विधान जब भारत लौटे तो महात्मा गांधी ने चुटकी ली, "अब तुम्हें योर एक्सलेन्सी नहीं कहूंगा' और तुर्की व तुर्की उन्होंने उत्तर दिया, मैं तो जन्म से ही रायल (राय) रहा हूं बापू।"

डॉक्टर राय को पश्चिम बंगाल का निर्माता माना जाना चाहिए। दामोदर घाटी परियोजना मयूराक्षी जलाशय, सामुदायिक विकास परियोजना गंगा बांध परियोजना, दुर्गापुर कोयला भट्टी योजना, कलकत्ता सीवज-गैस योजना उनकी कृतियों में कुछ उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त राज्य परिवहन प्रणाली भवन धरती सड़कों तथा जंगलों का विकास भी किया। 24 परगना के क्षेत्र में पानी भरा रहता था। उन्होंने सोनापुर योजना बनाई जिसके माध्यम से वहां से पानी निकाला गया और 17,000 एकड़ भूमि में से 1200 एकड़ भूमि को खेती के योग्य बनाया गया। 75 लाख से अधिक लागत पर कलकत्ता के उत्तर में स्थित क्षेत्र में विद्युत शक्ति योजना से कृषि और उद्योग का विकास किया। साथ ही बंगाल की खाड़ी के गहरे समुद्र से मछली पकड़ने की सम्भावनाओं को भी छुआ। कलकत्ता महानगर में दूध के वितरण की व्यवस्था सुचारु ढंग से आरम्भ की और हारिघाटा में 1272 मवेशियों और उनके मालिकों के लिए एक दूध बस्ती स्थापित की।

मुख्यमंत्री डॉक्टर विधानचन्द्र राय ने 1450 मील सड़कों का निर्माण करवाया और उन पर 23 पुल बनवाए। स्थायी बन्दोबस्त, जो कम्पनी बहादुर के दिनों बंगाल की गर्दन पर जुए की भांति कसा हुआ था—हटाया और भूमि भूमिहार की हो गई। 15 अप्रैल, 1955 में सरकार और काश्तकार के बीच बेकार की शोषणयुक्त कड़ी समाप्त कर दी गई।

डॉक्टर राय ने जीवन भर विवाह नहीं किया परन्तु शायद उनके ही कथनानुसार गलत है। उन्हें अपने भाइयों के परिवार से बड़ा स्नेह था।

राय का प्रयास भी कम नही था वहा।

राजनीति और चिकित्सा के अतिरिक्त डाक्टर राय की रुचि पत्रकारिता में भी थी। वह सिद्धहस्त पत्रकार भी थे। 1923 में देशबन्धु चितरंजनदास के सम्पादन में कलकत्ता से निकाला गया फारवर्ड'। और वह फारवर्ड' के साथ जुड गए। देशबन्धु के निधन के पश्चात तो फारवर्ड का पूरा उत्तरदायित्व उन्ही के कन्धो पर आ गया। 'फारवर्ड' के साथ उसके अन्य सहयोगी प्रकाशन—बंगवाणी' और 'आत्मशक्ति' भी उन्ही की देख रेख मे निकलने शुरू हुए। पत्रकारिता उन दिनों मिशन हुआ करती थी न कि आज की तरह व्यवसाय। 'फारवर्ड' अपने खरे व सटीक लेखन और सम्पादकियो के कारण सरकार के दमन चक्र से बच न पाया और बन्द कर दिया गया। तत्पश्चात लिबर्टी' का प्रकाशन शुरू किया गया परन्तु लिबर्टी फारवर्ड' का रिक्त स्थान भर न सका। इसलिए फिर से 'फारवर्ड' निकालना पड़ा।

डॉक्टर राय यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया के संगठन में भी अत्यन्त सक्रिय रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में पत्रकारिता का पाठ्यक्रम डाक्टर राय की प्रेरणा से आरम्भ किया गया 1971 में। यद्यपि इसकी परिकल्पना उन्होंने बहुत समय पूर्व से की हुई थी। उद्घाटनार्थ उन्हें आमन्त्रित किया गया था। डॉक्टर राय प्रेस की स्वतन्त्रता के पक्षधर सदा से रहे—जब वह मुख्यमंत्री हुए तब भी।

डॉक्टर राय अमरीका में थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री प० जवाहरलाल नेहरू ने भारत से डाक्टर राय को टेलीफोन किया

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के लिए वापस आ जाओ।

क्या वास्तव में जरूरत है आने की

पाच महीनो से ज्यादा टिक न पाऊगा मैं वहा (भारत मे)।

क्या

हा ऐसे ही इससे ज्यादा अच्छा काम करने न दो मुझे

फिर डाक्टर आने भी नहीं देंगे आया का इलाज जो चल रहा है

मरा ।

तो फिर ठीक है हम सरोजिनी जी को कहने है ।

बिलकुल ठीक यही बहुत बढ़िया रहगी

और उत्तर प्रदेश का राज्यपाल बना दिया गया भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू को जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

डॉक्टर विधान जब भारत लौटे तो महात्मा गांधी ने चुटकी ली, "अब तुम्हे योर एक्सलेंसी' नही कहूगा ' और तुर्की ब तुर्की उन्होने उत्तर दिया, मैं तो जन्म स ही रायल (राय) रहा हू बापू ।'

डाक्टर राय को पश्चिम बगाल का निमाता माना जाना चाहिए । दामोदर घाटी परियोजना मयूराक्षी जलाशय, सामुदायिक विकास परियोजना, गगा बाध परियोजना, दुर्गापुर कोयला भट्टी योजना, कलकत्ता सीवेज गैस योजना उनकी 'कृतियो' में कुछ उल्लेखनीय ह । इसके अतिरिक्त राज्य परिवहन प्रणाली भवन, धरती, सडको तथा जगलो का विकास भी किया । 24 परगना के क्षेत्र में पानी भरा रहता था । उन्होने सोनापुर योजना बनाई जिसके माध्यम स वहा से पानी निकाला गया और 17,000 एकड भूमि म से 1200 एकड भूमि को खेती के योग्य बनाया गया । 75 लाख स अधिक लागत पर कलकत्ता के उत्तर में स्थित क्षेत्रो म विद्युत शक्ति योजना म कृषि और उद्योग का विकास किया । साथ ही बगाल की खाडी के गहरे समुद्र से मछली पकडने की सम्भावनाओ को भी छुआ । कलकत्ता महानगर मे दूध के वितरण की व्यवस्था सुचारु ढग स आरम्भ की और हारिंघाटा में 1272 मवेशियो और उनके मालिको के लिए एक दूध बस्ती स्थापित की ।

मुख्यमंत्री डाक्टर विधानचन्द्र राय ने 1450 मील सडको का निर्माण करवाया और उन पर 23 पुल बनवाए । स्थायी बन्दोबस्त, जो कम्पनी बहादुर क दिना बगाल की गदन पर जुआ की भाति कसा हुआ था—हटाया और भूमि भूमिहार की हो गई । 15 अप्रैल, 1955 में सरकार और काश्तकार के बीच बेकार की शोषणयुक्त कडी समाप्त कर दी गई ।

डॉक्टर राय ने जीवन भर विवाह नही किया परतु शायद उनके ही कथनानुसार गलत है । उन्हे अपने भाइयो के परिवार से बडा स्नेह था ।

जब भी समय मिलता उनमें घुलमिल जाते। कर्नल ललित मोहन बनर्जी उनके लगोटिया यार थे। यह अटूट जोड़ी बहुत ही प्रसिद्ध थी।

डॉक्टर राय की रुचि संगीत में भी थी। वह रवीन्द्र भारती के अध्यक्ष भी थे और सदा ही नृत्य व संगीत के कलाकारों को प्रोत्साहित करते थे। नृत्य सम्राट उदयशंकर के कहने पर कभी कभी फिल्म भी देख लेते थे। कला एवं दस्तावेजी (डाक्यूमेण्ट्री फिल्मों) को अवश्य उत्साह से देखते थे।

विलिंगटन स्ट्रीट का मकान उन्होंने 1915 में नौसेना के एक अधिकारी से खरीदा था। उसमें सभी आधुनिक सुविधाएं थीं किन्तु फिजूल खर्ची की आदत बिलकुल नहीं थी। फिर भी उनके पास से कोई भी याचक खाली हाथ कभी नहीं लौटा।

पं० जवाहरलाल की ही तरह वह खुशमिजाज और हंसमुख थे। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने एक बार उन पर फिकरा कसा था, "डाक्टर राय आप पचास के हो रहे हैं पर गालों में गड्ढे अब भी पड़ते हैं" और डाक्टर राय ने वैसे ही उत्तर दिया था, "आप पचास से ऊपर (महिला) होकर भी इनका ध्यान रखती हैं"

पुरुषोत्तम दास टण्डन—1961
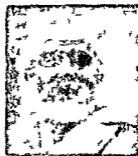
"यह महापुरुषो की निशानी है कि जो उनसे मिले, लेकर गये। हमने भी उनसे लिया जिससे दिल और दिमाग की दौलत बढ़ी वह हम सब के बडे भाई थे हम सब उनसे मुहब्बत करते थे, डर था मालूम नही, कब डाट दे जब वह कोई बात नापसन्द करते तो दिल खोलकर कह देते '

यह पक्तिया कही थी पण्डित जवाहरलाल ने अपने 'बडे भाइ' राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के सम्बन्ध मे। बडा भाई इसलिए कि वे नेहरू जी से आयु मे तो बडे थे ही, साथ ही राजनीति मे भी उनसे वरिष्ठ थे। लगभग 1906 से पहले ही वे स्वतन्त्रता सग्राम मे कूद चुके थे। दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता मे काग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन मे इलाहाबाद से प्रतिनिधि के रूप मे मोतीलाल नेहरू पडित मदनमोहन मालवीय और सर तेज बहादुर सप्रू के साथ वह भी पहुचे थे। सर सप्रू के साथ तो उन्होने उनके जूनियर की हैसियत से वकालत शुरू की थी तो नेहरू जी का डर' उचित ही था कि कब डाट दे।

और उनकी स्पष्टवादिता ही ने उन्हें चरित्र के उस ऊचे स्थान पर पहुचा दिया जहा व्यक्ति सर्वसाधारण से उठकर ऋषि अथवा सत कहा जाने लगता है। पुरुषोत्तम दास टण्डन ने अपने सिद्धान्तो को कभी कमजोर नही होने दिया। बडे से बडे प्रलोभनो से वह डिगे नही और इसी कारण (शायद) 15 अप्रल 1948 को एक विशाल सभा मे उन्हे राजर्षि की उपाधि से सम्मानित किया गया था।

प्रयाग के पवित्र तीर्थ स्थल पर सन 1882 की पहली अगस्त अर्थात

श्रावण शुक्ल पक्ष की द्वितीया दिन मंगलवार सं० 1939 विक्रमी को श्री शालिगराम टण्डन के यहां काफी प्रतीक्षा के पश्चात एक गौरवर्ण बालक का जन्म हुआ। श्रावण वर्ष का उत्तम मास कहा जाता है। हो सकता है, बालक का नाम इसीलिए पुरुषोत्तम रखा गया हो।

काफी प्रतीक्षा के पश्चात जन्मे बालक का लालन-पालन लाड प्यार से किया जाना स्वाभाविक ही था। मोहल्ले में ही एक थे चौधरी महादेव प्रसाद। उनके घर के सामने पीपल की छाया में बालक पुरुषोत्तम को एक मौलवी साहब ने देवनागरी का अक्षर ज्ञान करवाया। साथ में उन्हें गिनती भी सिखाई गई। तदोपरांत घर पर ही पढ़ाकर स्थानीय डा० ए० वा० स्कूल की नवीं श्रेणी में भरती करा दिया। उस जमाने में नवीं श्रेणी आज की दूसरी कक्षा के समतुल्य हुआ करती थी। आरम्भ से ही कुशाग्र बुद्धि होने के कारण दो बार डबल प्रमोशन मिला और गवर्नमेंट हाई स्कूल से 1897 में इंट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इंटरमीजिएट उन्होंने कायस्थ पाठशाला से किया और फिर म्योर कालिज में बी० ए० और बी० एस सी० दोनों एक साथ शुरू कर दिया।

शिक्षा के साथ साथ युवक पुरुषोत्तम दास भाषण प्रतियोगिताओं, व्यायाम क्रीडाओं और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों में भी भाग लेते थे। अपने असाधारण चरित्र प्रतिभा आचरण तथा गुणों के कारण कॉलिज में उन्हें जीसस क्राइस्ट कहा जाने लगा था।

परन्तु यह 'जीसस क्राइस्ट' बीमारी की वजह से बी० ए० का एक वर्ष गवां बैठे। दूसरे वर्ष अपने दार्शनिक विचारों में डूबे रहने के कारण गणित का प्रश्नपत्र ही देना भूल गये और तीसरा वर्ष भी किसी अप्रत्याशित कारणों से खराब हो गया। बात यहां तक ही नहीं रुकी। उन्हें कालिज से निकाल भी दिया गया। इन परिस्थितियों में उन्हें विज्ञान छोड़ना पड़ गया और राजनीति व इतिहास लेकर उन्होंने 1904 में बी० ए० पास किया। उसके बाद दो वर्ष वकालत पढ़ी और तुरंत उसके बाद टण्डन जी ने सर सप्रू की छत्रछाया तले वकालत शुरू कर दी—उनके 'कनिष्ठ' के रूप में।

किंतु ज्ञान पिपासा तब भी बुझी नहीं थी और उन्होंने 1907 में

इतिहास लेकर एम० ए० कर लिया। टण्डन जी उन लोगा मे स थे जा यह मानकर चलत हैं कि अध्ययन के लिए आयु और अवस्था की कोई सीमा या शत नही होती। विवाह तो उनका तभी हो गया था (श्रीमती चन्द्रमुखी दवी स) जब उन्हान हाई स्कूल की परीक्षा दी थी। उनकी पत्नी वैस तो साधारण ही शिक्षित थी परन्तु थी एक आदश गहिणी।

वकालत जस पशे म पडकर भी टण्डन जी अपन सिद्धान्ता आचरणा और सत्यपरायणता पर एक चट्टान की तरह अडिग रह। वह सच्चरित्रता एव सरलता क लिए समस्त 'बार एसासियशन' म प्रसिद्ध थे जिसक कारण सभी वकीलों म उनकी इज्जत की जाती थी। कहना अतिशयोक्ति न हागा कि टण्डन जी अपन सादे रहन सहन सरल बातचाल और यहा तक कि अपनी सरलता व सच्चरित्रता के लिए मिसाल बन गय थे अनुकरणीय आदश। यह सरलता इस हद तक बढ गई थी कि आज के वनानिक और तडक भडक भरे ससार म उन्ह दकियानूसी और पिछडा हुआ प्रतिक्रिया वादी समझा जान लगा था परन्तु जो थे, अन्तिम दिन तक वही रहे।

बडा परिवार था टण्डन जी का। सात पुत्र और दो पुत्रिया। महामना मालवीय जी स उनकी आर्थिक स्थिति छिपी नही थी। उन्हान टण्डन जी का नाम नाभा राज्य के कानून मन्त्री के पद पर भिजवा दिया जहा अपनी याग्यता व कायनिष्ठा क कारण टण्डन जी कानून मन्त्री से विदश मन्त्री बना दिय गय। जब तक वह नाभा रहे, अपनी दक्षता व प्रतिभा से सभी का प्रभावित करत रह। 1914 से 1918 तक नाभा म रहकर परिवार सम्बन्धी विवशताओ क कारण उन्हे त्यागपत्र दकर इलाहाबाद वापस आ जाना पडा।

स्वतन्त्रता सग्राम म तो वह पहले ही कूद चुके थे। इलाहाबाद आकर नियमित रूप स वह राजनीति मे भाग लन लगे। साथ ही हिन्दी के प्रति भी उनका ध्यान आकर्षित हुआ। बचपन से चली आ रही रुचि अब सक्रिय अनु राग बनकर प्रस्फुटित होने लगी। वैस 17 फरवरी 1915 का ही मुजफ्फर नगर म आयाजित सहृदय सघ के 17वें वार्षिक अधिवेशन म उन्होंने कहा था ' लोग कहत हैं कि मैं साहित्य और राजनीति म समन्वित दोहरा व्यक्तित्व रखता हू पर सच्ची बात यह है कि मैं पहल साहित्य मे आया और प्रेम

स आया। हिन्दी साहित्य के प्रति मेरे उसी प्रेम ने उसके हितों की रक्षा और उसके विकास पथ को स्पष्ट करने के लिए मुझे राजनीति में सम्मिलित होने को बाध्य किया।'

वास्तव में टण्डन जी पहले साहित्य में ही उतरे थे। जब उन्होंने 1908 में इलाहाबाद हाइकोर्ट में वकालत शुरू की थी और साथ ही आरम्भ किया था अभ्युदय का सम्पादन। कालान्तर में पंडित बालकृष्ण भट्ट के अनुरोध पर 'प्रदीप' में लिखने भी लगे थे। 10 अक्तूबर 1910 को वाराणसी में पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन आयोजित किया गया था, और उस अधिवेशन के मंत्री पद का भार टण्डन जी को सौंपा गया था। फिर सम्मेलन की स्थापना के तीन चार वर्ष बाद तो सारा काम ही उनके पास आ गया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि टण्डनजी वह सभी काम अत्यन्त कुशलता से करते रहे और सम्मेलन का टण्डन जी से नाता उनकी अंतिम सांस तक बना रहा।

1923 में सम्मेलन के अध्यक्ष मनोनीत किये गये तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वागताध्यक्ष का भार वहन किया। टण्डन जी ने सम्मेलन की प्रथम नियमावली बनाई थी और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित कराने के लिए गांधीजी व राजेन्द्र बाबू आदि के साथ सदा समन्वय बनाए रखा। आज हिन्दी देश की राजभाषा के सिंहासन पर विराजमान है, उसका श्रेय राजर्षि को ही जाता है। आने वाला भारत कभी क्या भूल सकेगा?

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में मंगला प्रसाद पारितोषिक की स्थापना टण्डनजी ने ही की जो प्रतिवर्ष किसी न किसी साहित्यकार को उसकी श्रेष्ठ रचना पर दिया जाता है। अपरोक्ष रूप में जहां साहित्यकारों को आर्थिक सहयोग दिया जाता है, वहां उनकी कृतियों का सम्मान भी मिलता है।

किसान आन्दोलन के अग्रदूत के रूप में टण्डनजी ने सक्रिय भाग लिया। यह आंदोलन जौनपुर प्रतापगढ़ रायबरेली आदि जिलों में जोर पकड़ गया और फिर अन्त में वह एकता आंदोलन के रूप में समस्त युक्त प्रान्त में फैल गया। गांव गांव में किसान सभाएं की गईं और किसानों में नवजागृति

का शख फूका गया। 1930 और 1931 म महगाई की वजह किसाना के सामने आई समस्याओ का समाधान भी जी जान स किया और इसी प्रकार, आदोलन की चिगारी से मारा देश भडक उठा।

इसमे दस वष पूव 1921 के सत्याग्रह म पहली बार जलयात्रा की थी टण्डनजी न। साधु स्वभाव, सौम्य छवि, स्वाध्याय, परिश्रम, त्याग व निष्ठा के कारण राजर्षि जनता के आकषण केन्द्र बन गए और 'युक्त प्रात का गाधी' कहा जाने लगा उन्हे। 1923 म गोरखपुर की प्रातीय काग्रेस के 18वें अधिवेशन म टण्डन जी को अध्यक्ष बनाया गया।

राजनीतिक सक्रियता के कारण टण्डन जी वकालत छोड चुके थ। इस कारण उनका आर्थिक चक्र मध्यम पड गया। इसलिए मित्रा के आग्रह पर उन्होंने फिर से वकालत शुरू कर दी। लाला लाजपत राय को उनक आर्थिक सकट भलीभाति मालूम थे और उन्होंने टण्डनजी को पजाब नेशनल बैंक के मनेजर के पद पर लाहौर भिजवा दिया परन्तु वहा केवल चार वष रहकर इलाहाबाद वापस आ गये। लालाजी उन्हे बहुत प्यार करते थे और वह अपन जीवन काल म ही टण्डन जी को अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे परन्तु बड़े परिवार की जिम्मेदारी स बोझिल उनके कधो परऔर बोझ डालने से सदा हिचकिचाते रहे। लालाजी द्वारा स्थापित 'तिलक स्कूल ऑफ पालिटिक्स' म टण्डन जी ने बडी तन्मयता से काम किया। यही स्कूल बाद म 'द पीपुल सोसाइटी (लाक सेवक मण्डल) के रूप म बदल गया। लालाजी के निधन के पश्चात् गाधीजी के आदेशानुसार टण्डन जी ने मडल का अध्यक्ष होना स्वीकार कर लिया था।

लोक सेवक मण्डल के अध्यक्ष के रूप मे उन्होन लाला लाजपत राय स्मारक निधि के लिए पाच लाख रुपये एकत्रित किए और साथ ही काग्रेस का काम भी उतनी मुस्तैदी से किया।

6 अप्रैल, 1930 का नमक सत्याग्रह सारे दश मे एक विचित्र उत्साह, पुलिस के डण्डो की बौछार नमक सत्याग्रहिया का मौन प्रतिवाद। सबसे पहले डाडी के समुद्र-तट पर महात्मा गाधी को गिरफ्तार किया जाता है। उनके पश्चात श्री अब्बास तैयब जी पकडे जाते है फिर भारत कोकिला सरोजिनी नायडू। उत्तर प्रदश मे सबसे पहले प्रताप के सम्पादक पण्डित

गणेशशंकर विद्यार्थी की गिरफ्तारी हुई। फिर जवाहरलाल नेहरू पकड़े गये और उनके बाद बारी आई पुरुषोत्तम दास टण्डन की।

सिविल नाफरमानी आन्दोलन स्थगित कर दिये जाने पर कांग्रेस प्रांतीय चुनावों के लिए राजी हो गई और भारी बहुमत से अधिकतर प्रान्तों में कांग्रेस ने सरकारें बना लीं। युक्त प्रान्त में पंडित गोविन्द वल्लभ पंत के नेतृत्व में सरकार बनाई गई। धारा सभा के अध्यक्ष पद के लिए चुना गया श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन को। परन्तु उन्होंने उक्त पद इसी शर्त पर स्वीकारा कि वह राजनीति में भी भाग लेते रहेंगे। वह इंग्लैंड के हाउस ऑफ कॉमन्स के स्पीकर की तरह केवल धारा सभा से ही बंधकर नहीं रहना चाहते थे। टण्डनजी चाहते थे कि अमरीका के हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्ज अथवा फ्रांस के स्पीकर की तरह उन्हें भी राजनीति में भाग लेने की खुली छूट मिले। कांग्रेस महासमिति में इस पर विचार किया गया और टण्डन जी का प्रस्ताव 45 मतों की अपेक्षा 114 मतों से जीत गया। यह धारा सभा के इतिहास में क्रांतिकारी कदम था जिसका प्रभाव अन्य धारा सभाओं पर भी पड़ा और आज भी इस नियम को निभाया जाता है। विधान परिषद के सभापति अथवा प्रधानमन्त्री (मुख्यमन्त्री) रहते हुए कोई व्यक्ति पार्टी का अध्यक्ष बना रह सकता है।

परन्तु कांग्रेस सरकार अधिक समय तक चल नहीं पाई। यूरोप में दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया। अंग्रेजों ने भारत को बिना किसी प्रकार की अनुमति जाने भारत को भी युद्ध में झोंक दिया। इस बार वह किसी भी मूल्य पर अंग्रेजों का साथ नहीं देना चाहते थे। विरोध हुआ और 3 नवम्बर, 1939 को कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया। सारे भारत में एक नारा बुलंद हुआ—"न दो एक पाई न दो एक भाई" क्योंकि पिछले विश्व युद्ध में जो वायदे किये थे अंग्रेजों ने वह रौलेट एक्ट और जलियांवाला बाग के रूप में पूरे किये थे। जिसकी याद अभी ताजा थी।

विधान सभा से बाहर निकलकर टण्डनजी पुनः जन कार्य में लग गये। कानपुर, फर्रुखाबाद आदि नगरों में व्यायामशालाओं, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों आदि की योजनाएं चलाईं।

1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह के अन्तर्गत वह फिर जेल गये।

और फिर आई 9 अगस्त, 1942 की 'भारत छाडो क्राति'। टण्डनजी का नतृत्व तब भी उतना ही सुलभ रहा जितना पहले था। उन्होंने बडे उत्साह से युवको का नतत्व किया और पुन जेल गय। यह उनकी सातवीं जेल यात्रा थी जो 1944 तक रही।

1945 म युद्ध समाप्त हो गया। अंग्रेज जीतन पर भी काफी टूट चुके थे। इग्लड म मन्त्रिमडल बदल गया। मन्त्रिमडल बदलन से सारी नीतिया म परिवतन आना भी जरूरी था। भारत की आजादी और समीप दिखाई दन लगी। 1946 मे नय चुनाव हुए। टण्डन जी को फिर उत्तर प्रदेश की विधान सभा का अध्यक्ष बनाया गया। इस बार मन्त्रिमडलो को अधिकार ज्यादा मिले थे। सबस पहल जमीदारी उन्मूलन विधेयक पारित किया गया जिसम टण्डन जी की भूमिका प्रमुख थी। परन्तु 1948 मे किन्ही कारणो स उन्होंने अध्यक्ष पद स इस्तीफा दे दिया।

दश विभाजन का विरोध जितना महात्मा गाधी ने किया था उतना ही टण्डन जी ने किया। वह महात्मा गाधी स मिले। सयोग से वह दिन मौन दिवस था। गाधीजी पहले ही क्षुब्ध थ। टण्डन जी स जब वही बात सुनी तो उन्होंने दो उगलिया उठा दी मानो कहा कि हम दोनो ही विभाजन के विरोध म ह बस।

और दश के टुकडे हो गये। एक अकल्पित विभीषिका एक अनकही हत्याओ और अप्रत्याशित परेशानियो का सिलसिला शुरू हुआ जो आबादी क अदला-बदली से बने लम्बे जुलूमो स भी लम्बा था। इसी बीच म 15 अगस्त, 1947 को देश को स्वतन्त्रता के अभूतपूव पव से मण्डित भी किया गया। परन्तु उसके रिसत हुए जख्मो पर मरहम लगा रहे थे वह महात्मा दिल्ली से दूर पूर्वी बगाल के एक गाव मे और टण्डन जी थे अलग थलग उस सब शोर शराबे से दूर अपना दुखी मन लिय।

भारतीय विधान सभा का सदस्य चुने जाने पर टण्डन जी को काफी समय के लिए राजधानी म ही रहना पडा। तब हिन्दी के प्रति उनकी सक्रियता और भी बढ गई। 1950 म काग्रेस का अध्यक्ष के लिए उन्ह चुना गया परन्तु कायकारिणी क गठन के प्रश्न पर उनका मतभेद तत्कालीन प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नहरु स हो गया जिसके कारण उन्होंने

अध्यक्ष पद से त्यागपत्र द दिया। उन्होंने कहा था, 'आज देश को नेहरू के नेतृत्व की जरूरत है। नेहरू देश की आवाज है' और देश की आवाज की अपेक्षा टण्डन जी ने अपने को मंच से हटा लेना ही उचित समझा।

परन्तु 1952 में इलाहाबाद से लोकसभा के लिए पुनः चुन लिये गये और टण्डन जी फिर दिल्ली आ गये। 1956 में वह उत्तर प्रदेश से राज्य सभा में निर्वाचित किये गये और दिल्ली ही बने रहे।

उन दिनों उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था फिर भी नेहरूजी की षष्ठी पूर्ति के अवसर पर नेहरू 'अभिनन्दन ग्रन्थ' का सम्पादन किया जो स्वयं साहित्य की अमूल्य निधि है। उस सम्पादन में सहयोग दिया था डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद डाक्टर राधाकृष्णन तथा श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी। इसके अतिरिक्त टण्डन जी ने संसदीय विधिक प्रशासकीय शब्दों के लिए गठित संयुक्त समिति की अध्यक्षता भी की।

कड़े परिश्रम के कारण स्वास्थ्य सम्हल नहीं पाया। उन्हें राजधानी के विलिंग्डन अस्पताल में भरती कर दिया गया और ज्यों ही स्वास्थ्य सुधरा, वहां से बाहर आकर काम में जुट गये।

और 3 अक्तूबर, 1960 को प्रयाग में राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने एक विशाल समारोह में उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया। उनकी सेवाओं को देखते हुए वह अभिनन्दन ग्रन्थ शायद पर्याप्त नहीं था। इसीलिए अगले वर्ष 1961 में उन्हें 'भारत रत्न' से अलंकृत करके उनकी देशसेवा का सही मूल्यांकन किया गया था।

हिन्दी की आधुनिक मीरा श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में— सन्त पुरुषोत्तम दास जी सत्य के ऐसे शिल्पी हैं जिनके मूल्यांकन के लिए साधारण मापदण्ड से भिन्न मापदण्ड की आवश्यकता पड़ेगी। उनके शरीर व जीवन दोनों ने इतने परीक्षणों का भार झेला है कि वे सैद्धांतिक सत्यों का खरापन सिद्ध करके भी जर्जर हो गये। स्वर्ण को खरा प्रमाणित करने के लिए अंगारे क्या भस्मशेष नहीं हो जाते?'

कृश दुर्बल लम्बी देहयष्टि कुछ लम्बी मुखाकृति, नुकीली नासिका नुकीली श्मश्रु कुछ बढ़े केश पीठ पर पैबन्द लगा खादी का कुर्ता घिसी सूतवाली पुरानी धोती, चर्म रहित रबर की अस्त व्यस्त सिली चप्पलें

आदि मिलाकर आज के भारतीय जीमस काइस्ट सम्पादक, कांग्रेस के भूत-पूर्व अध्यक्ष उत्तर प्रदेश विधान सभा के स्पीकर, भारतीय विधान, लोक तथा राज्य सभाओं के सम्मानित सदस्य, भारत रत्न, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन की तस्वीर चित्रित की है महादेवी वर्मा ने जो उनके ही शब्दों में, "उन्हें (टण्डनजी को) एक ओर संत विनोवा के समीप बैठा देते हैं तो दूसरी ओर दरिद्र भारतीय जन का प्रतिनिधि बना देते हैं।"

जन्म मास में एक माह पूर्व—1 जुलाई, 1962 को प्रातः 10 बजकर 5 मिनट पर कल्याण देवी स्थित अपने निवास स्थान से उठकर आकाश के सप्तर्षियों में एक और (आठवां) ऋषि और जुड़ गया जो जितना दिखाई नहीं देता उससे अधिक याद आता है याद आता रहेगा।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद—1962

और यह है कथा उस यक्ति की जिसका ज म हुआ था एक एस निपट दुर्बोध गाव म जहा स तरा और सेब नियामत थे और अगूर काई दवी फल। उसका ज म हुआ ऐस परिवार म जा सम्पूण रूप से सादा और सरल था। जहा बडा आदमी बनने का सपना दखना भी मुहाल था—ता एक प्रसिद्ध व लोकप्रिय जननेता तथा ससार के एक महान प्रजातत्र दश का प्रथम राष्ट्र पति हो जाने की बात मात्र कल्पना ही थी।

फिर भी उसे देखकर कहीं भी ऐसा अवश्य आभास होता था आरम्भ से ही, कि वह अतिशय प्रतिभासम्पन्न, चमत्कार तथा कौतुक भरे यक्तित्व का स्वामी था, कि तु सादगी और सरलता जा उ ह विरासत म मिली, वह अ तिम समय तक नही गयी। एक बार श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित न मक्सिको क राष्ट्रपति को उनका चित्र दिखाया ता उ होन पूछा, क्या य ही हैं भारत के राष्ट्पति ? यह ता बिल्कुल हमार मक्सिको के किसी साधारण किसान जसे ह। इनक सिर से गाधी टोपी हटाकर अगर हमारे किसानो द्वारा पहना जान वाला साम ब्रियो' पहना दिया जाए ता य बिल्कुल मैक्सिका के किसान लगेग।"

यही थे डा० राजे द्र प्रसाद जि होन अपनी शक्ल की अपक्षा अक्ल के कारण इतनी व्यापक प्रसिद्धि व लोकप्रियता प्राप्त की थी। उ होन अपन कपडा की आर कभी ध्यान नहा दिया। एक बार डुमरावा रा ज क मुकदम के सम्ब ध म उनकी भेंट उनस वरिष्ठ वकील पण्डित मातीलाल नहरू स हा गयी जो अपन समय म सब शानदार वशभूपा पस द करत थ।

राजेन्द्र बाबू को देखते ही पण्डितजी ने उन्हें समझाया, "आप यह कोट फिट करा लीजिए और यह पायजामा भी तो आप चुस्त और स्मार्ट दखेंगे" राजेन्द्र बाबू पण्डितजी को एक दफा देखते रह मुस्कराते हुए, मानो कुछ समय न पाये हो और उसी मुकदमे के सिलसिले में वही ढीलमढाली पोशाक पहन विलायत भी जा पहुंचे प्रिवी कौंसिल में बहस करने। उन्हें देखकर वहा एक अन्य वकील ने कहा था। उन (राजेन बाबू) से चाहे भारतीय राजनीति को लाभ भले न मिल जाय किन्तु यह निश्चित है कि कानून-पेशे को अवश्य भारी क्षति पहुंचेगी।

राजेन बाबू शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहन तो लेते थे (विवशता मे) परन्तु धोती में कुर्ता या कमीज पहनकर जितना सहज अपने को पाते थे उतना और किसी वेशभूषा मे नहीं। सर्वप्रथम गणतन्त्र समारोह मे उन्हें राष्ट्रपति का आसन ग्रहण करना था। उस समय उनके भतीजे ने एक अच्छी चुस्त सिली हुई शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहनने के लिए जिस कठिनाई मे उन्हें राजी किया वह उनके भतीजे श्री जनार्दन प्रसाद का अपना विशेष अनुभव था। नहीं तो राजेन बाबू पहले की तरह घुटनो तक ऊंची धोती लम्बा ढीला ढाला कोट और खसखस बालो वाली खोपडी पर गांधी टोपी जो शायद ही कभी सीधी पहनी गयी हो पहनकर ससार के महान प्रजातन्त्र का सर्वोच्च पद ग्रहण करने के लिए तैयार थे और मजा यह कि जब उन्हें मालूम हुआ कि शेरवानी की सिलवाई सत्तर रुपय गयी है तो उन्हें उस समय तक विश्वास नहीं हुआ जब तक कि उन्होंने दर्जी का बिल न देख लिया। कौन जाने, उस फिजूलखर्ची पर उन्हें दुख भी हुआ हो।

वह हजामत तो अवश्य बना लेते थे। परन्तु बेचारी मूछें उपेक्षित नारी की भाति अनछुई ही रह जाती थी और कभी-कभार ही उनका भाग्योदय होता था कि उन्हें अच्छी तरह से तराशा जाए। सभाला जाए। अच्छे से अच्छा दत पाउडर या पेस्ट उनके लिए हेय था। केवल नीम की दातुन ही प्रिय थी। भोजन उन्होंने सदा सादा पसन्द किया। चपाती, दाल, भात—दाल मे खासतौर से अरहर की दाल, उनका सर्वप्रिय भोजन था। आम के दिनो में आम और आम का पन्ना। चाय भी पी लेते थे। उसमे कितनी शक्कर हो इस पर उन्होंने कभी भी ध्यान नहीं दिया जब कभी कोई

चाय बनाते समय उनसे पूछ लेता, 'कितनी शक्कर ?' तो वह कह देते, 'जितनी आप चाहें।

वह शुद्ध शाकाहारी थे यद्यपि कायस्थ होने के नाते उनके परिवार के कई लोग मांस मछली का सेवन करते थे। एक बार विश्व शाकाहारी सम्मेलन के अवसर पर एक संवाददाता ने उनसे पूछा, "राष्ट्रपति भवन के भोजों में मांस क्यों परोसा जाता है।" (जब राष्ट्रपति स्वयं शाकाहारी हैं) तो उन्होंने हंसते हुए उत्तर दिया, "अरे भाई, मैं शाकाहारी हूं, सरकार नहीं।'

कुछ लोगों को यह महसूस हो कि राजेन बाबू में लालित्य व नफासत की कमी थी। शायद उन्होंने इस बारे में कभी ध्यान दिया ही नहीं, किस कपड़े के साथ कौन सा कपड़ा मेल खायेगा, कमरों की दीवारों के रंग के अनुसार किस रंग के पर्दे अच्छे लगेंगे। उनकी मेज पर फूलदान में कौन से फूल लगने चाहिए आदि आदि। भोज (डिनर) पर भी वह 'टेबिल मैनर्स' में भी ज्यादा निपुण नहीं थे और हमेशा उनके छुरी कांटे बहुत ही अनाड़ी ढंग से रहते थे उनकी उंगलियों में, शायद, इसीलिए, इस प्रकार के सामाजिक उत्सवों में जहां छुरी कांटों आदि का दखल रहता, उन्हें अटपटा लगता था। वह न तो राजाजी की तरह हाजिर-जवाब थे, न ही सरदार पटेल की तरह हास्य परिहास में चुस्त। उनमें जवाहर लाल जैसी सम्मोहन शक्ति भी नहीं थी फिर भी उनमें जो अप्रत्यक्ष आकर्षण था, सरलता का सौम्यता का आत्म समर्पण का, वही उन्हें देश रत्न बना देने के लिए पर्याप्त था।

जैसाकि श्री गोपालकृष्ण गोखले ने राजेन बाबू के सम्बन्ध में एक बार कहा था कि राजेन बाबू सदा भारत के सेवक बने रहे। उनके लिए देश सेवा के नाम पर कोई भी काम छोटा या अपमानजनक नहीं था समाजवाद उन्हें प्रिय परन्तु गांधीवाद सर्वप्रिय। साथ ही हिंदुत्व और अध्यात्मवाद का रंग भी उन पर भली भांति चढ़ा हुआ था। बचपन से ही अपनी माता से सुनी हुई रामायण और महाभारत की कथाओं का प्रभाव था। इसीलिए भारतीय संस्कृति और सनातन परम्पराओं की गंगा यमुना के दर्शन हो जाते थे उनमें। परन्तु इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं कि वह

रूढिवादी थे। आधुनिकता एव प्रगतिशीलता के प्रति उदासीन नही थे। हाथ जोडकर मुस्कान भरी उनकी 'नमस्ते' और आखो मे दीप्त भविष्य के प्रति आस्था उन्हे देखते ही दिख जाती थी। किसी के साथ द्वेष उन्होने भूल-कर भी नही किया, चाहे इस प्रक्रिया म उन्हे कितनी हानि उठानी पडी हो। राष्ट्रपति भवन के सभी कर्मचारियो से उनका परिवार जैसा व्यवहार रहा। देश के सर्वोच्च पद पर आसीन और देश के सर्वोच्च राज्यप्रासाद मे रहने के बावजूद वह ऐसे ही रहे मानो सदाकत आश्रम म रह रहे हो।

उन्हे दमा था। इलाज भी कराते थे पर दमा से मुक्ति मिल पाना इतना सरल तो था नही। एक बार एक व्यक्ति उनके पास पहुचा दमा का इलाज लेकर। और दमा ठीक करने का दावा किया उस आत्मघोषित चिकित्सक ने। राजन बाबू उसके आग्रह को टाल न पाए और निश्चित समय पर कुछ तो जडी बूटिया अपने साथ ले गया था कुछ अपेक्षित सामग्री उसे राष्ट्रपति भवन से दे दी गई। न जाने कितनी प्रकार की जडी-बूटिया को जलाकर उस चिकित्सक ने धूनी तैयार की और राजेन बाबू को उसी दुष्कर धूनी के समक्ष बिठा दिया गया। धूनी के कारण दमे के रोगी राजेन बाबू का खासते खासते बुरा हाल हुआ जा रहा था। परन्तु न तो चिकित्सक महाशय ही धूनी बन्द कर रहे थे, न ही राजेन बाबू को वहा से हटने को कहा जा रहा था और राजेन बाबू की दशा निरन्तर दयनीय और शोचनीय होती जा रही थी। राष्ट्रपति के ए० डी० सी० तथा अन्य कर्मचारीगण राष्ट्रपति की दशा को देखकर क्रोध से अन्दर ही अन्दर उबल जा रहे थे जब कभी कोई उन्हे वहा से हटने के लिए सकेत करता या कहता तो राजन बाबू उसे मना कर देते। अन्त मे वह भयानक दु खदायी धूनी समाप्त हुई और चिकित्सक महोदय का सधन्यवाद दक्षिणा आदि देकर विदा किया गया और रोगी को आराम करने के लिए वहा से हटाया गया। कुछ दिन पश्चात् किसी ने उनसे पूछा, "जब आपकी दशा इतनी खराब हो रही थी तो फिर उसी धूनी उपचार को बन्द क्यो नही करवा दिया गया।" राजेन बाबू सकुचाते हुए बोले, "देखिए, वह व्यक्ति कितने उत्साह व प्यार से आया था यदि मैं मना कर देता या वहा से बीच म हट जाता, तो जानते हैं उसके दिल पर कितनी ठेस पहुचती

प्रश्नकार न जाने क्या सोचकर चुप हो गया। शायद यह भी—इस व्यक्ति (राजेन बाबू) म अपने दु ख न्द की अपेक्षा दूसरे की कितनी चिन्ता है। चाहे अपने प्राण निकल जाए किन्तु दूसर के उत्साह को ठेस न पहुचे। और वह राजेन बाबू म साक्षात विदेह के दशन कर स्वत नतमस्तिक हो गया।

बिहार प्रान्त के सारन जिला म जिरादेई गाव के एक कायस्थ घराने मे 3 दिसम्बर 1884 को श्री राजेन्द्र प्रसाद का जन्म हुआ—काग्रेस की स्थापना (1885) से एक वष पूव। राजेन बाबू का परिवार वास्तव म उत्तर प्रदेश के अमरोहा का रहने वाला था जो कभी बिहार जाकर सारन मे बस गया था। परिवार म तीन बेटिया व दो बेटे थे। राजेन बाबू सबस छोटे थे। पितामह श्री मिश्रीलाल काफी कच्ची उम्र म स्वग सिधार गए थे और राजेन बाबू के पिता श्री महादेव सहाय की शिक्षा दीक्षा का भार उनके ताऊ श्री चौधर लाल न अपने बेटे श्री जगदव सहाय के साथ ही वहन किया बिना किसी भेदभाव के। श्री चौधर लाल बिहार क एक ताल्लुक— हथुआ राज्य के दीवान थे। कालान्तर म उन्होन उत्तर प्रदेश के एक और ताल्लुका—तमकुही रियासत म भी दीवानी की। और क्योकि वहा का वातावरण भी उन्ह रास नही आया। वहा स भी त्यागपत्र देकर अपन गाव जिरादेई म आ बस। वहा वह अपने अन्त तक रह।

राजेन बाबू के पिता श्री महादेव सहाय फारसी के विद्वान् थे और सस्कृत पर भी उनका ही अधिकार था। उन्ह पहलवानी का भी बहुत शौक था। बडे पहलवान माने जात थे। उनके पास घोडा था और घुडसवारी कमाल की करत थ। राजेन बाबू के चाचा श्री बलदव सहाय अचूक निशानेबाज थे और घुडसवारी व शतरज उनकी दो कमजोरिया थी जिन पर उनका अधिकार भी था किन्तु राजेन बाबू न तो अपने पिता की तरह पहलवान हुए और न अपने चाचा की तरह निशानेबाज घुडसवार और शतरज क खिलाडी। आरम्भिक शिक्षा उन्ह एक मौलवी स मिली जिसन उन्ह फारसी पढाई। हिन्दी उन्होने स्कूल म पढी। बाद म वह हिन्दी म अच्छा लिखन लग थ। अपनी आत्मकथा ऐस समय म मूल रूप से उन्होने हिन्दी म लिखी थी जब अग्रेजी म ही आत्मकथाए लिखने का

'फैशन' था। बचपन मे उन पर अपनी मा श्रीमती कमलेश्वरी देवी का बहुत कुछ प्रभाव पडा। फारसी घुडसवारी, पहलवानी, निशानेबाजी तथा शतरज की बाजिया क रईसाने व कायस्थाना वातावरण मे राजेन बाबू रोज सान से पहले अपनी मा से रामायण, महाभारत की कथाएं सुनते थे। उनके बाल मानस पर इन कथाओ के सस्कारो का गहरा प्रभाव पडा। जब वह पाचवी कक्षा म पहुचे तब उनका विवाह बडी धूमधाम से कर दिया गया। उस समय उनकी आयु केवल तेरह वष की थी।

हाई स्कूल से एम० ए० तक राजेन बाबू प्रथम श्रेणी म ही पास होते रहे। बी० ए० मे अग्रेजी इतिहास, अथशास्त्र व दशनशास्त्र विषय थे उनके। एम०ए० अग्रेजी म किया था। आई०सी०एस० के लिए विलायत जाना लगभग तय ही हो गया था किन्तु अनायास पिता के निधन के कारण जाना न हो सका। उनकी प्रतिभा के सम्बन्ध म कई किंवदन्तिया आज भी प्रचलित हैं। सम्भवत कानून की परीक्षा म गलती से उन्हे अपनी कक्षा से ऊची कक्षा का प्रश्न-पत्र मिल गया था जिसे उन्होने उतनी ही सरलता से हल कर दिया जैसे वह सब अपने ही पाठयक्रम क अनुसार रहा हो और उसमे भी उन्हे सवाधिक अक प्राप्त हुए थे। एक अन्य परीक्षक न उनकी उत्तर पुस्तिका पर टिप्पणी लिखी थी कि शिक्षार्थी परीक्षक से अधिक योग्य मालूम पडता है परन्तु इन किंवदतियो म सत्य कितना है भगवान ही जाने।

अपने छात्र जीवन मे ही राजेन बाबू ने विहार स्टूडेन्टस कान्फ्रेस का सगठन किया और उसम सक्रियता से भाग लिया। यह पहला अवसर था जब वह सावजनिक मच पर उपस्थित हुए थे। 1911 म काग्रेस के सदस्य बने और कलकत्ता अधिवेशन म भाग लिया परन्तु इससे पाच वष पूव ही 1906 मे उन्हे राष्ट्रप्रेम का गुरु मत्र मिल चुका था जब पजाब केसरी लाला लाजपत राय क्रातिकारी योगीराज अरविन्द घोष, स्वतन्त्रता उदघोषक गोपाल कृष्ण गोखले, समाज सुधारक राष्ट्रवादी नेता फीरोजशाह महता, बगाल के प्रसिद्ध नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे दिग्गजो के निकट सम्पक मे आए।

वकालत पास करके कलकत्ता मे ही प्रैक्टिस आरम्भ कर दी। पहले ही

मुकदमे में राजेन बाबू ने अपनी प्रतिभा व योग्यता का झण्डा गाड़ दिया। श्री आशुतोष मुखर्जी का ध्यान राजेन बाबू की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने राजेन बाबू को ला कॉलेज में अध्यापन काय के लिए आमन्त्रित किया। इससे पूर्व भी वह मुजफ्फरपुर कालेज में अध्यापन कार्य कर चुके थे जब उन्होंने एम०ए० कर लिया था और वह निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि सरकारी नौकरी की जाए जिसे वह बिलकुल पसन्द नहीं करते थे, या कानून का अध्ययन किया जाए जो अधिक आकर्षित नहीं कर पा रहा था उन्हें। फिर भी परिस्थितियोंवश उन्हें कानून ही पढ़ना पड़ा था।

कानून अध्ययन करते समय उनकी भेंट श्री गोखले से हुई जिन्होंने 'सर्वेण्टस ऑफ इण्डिया' नाम से एक संस्था संगठित की थी और उन्हें संस्था के लिए कुछ नौजवानों की आवश्यकता थी। राजेन बाबू उन्हें पसन्द आ गए थे। लगभग दो घण्टे बात हुई ताकि राजेन बाबू को वह 'जीत' सकें। उन्होंने राजेन बाबू को बताया "और चूंकि तुम्हारा सारा जीवन अत्यन्त मेधावी रहा है तुममें शक्ति भी है हो सकता है कि कानून पढ़कर वकालत में ज्यादा धन कमा लो और ऐशोआराम की जिन्दगी बसर कर लो किन्तु क्या इतना ही कर लेने से सब ठीक हो जाएगा? देश के प्रति तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है। वह भी पूरा हो जाएगा? हजारों लाखों लोगों के साथ ही तुम भी क्या रहना चाहोगे? जबकि अभी तक तुमने इस आम आदमी से हटकर जीवन जिया है—सदा प्रथम श्रेणी में पास हुए हो तुम सबसे अलग"

राजेन बाबू द्वन्द्व के अथाह सागर में गोता खाने लगे एक ओर था, गोखले जी के शब्दों के अनुसार स्वदेश के प्रति उनका कर्त्तव्य और दूसरी ओर था उनका परिवार—एक व्यापक और महान तो दूसरा उतना ही संक्षिप्त और लघु। वह द्वन्द्व गहनतम होता चला गया। एक ओर स्वदेश की पुकार, विदेशी सत्ता का विरोध, यातनाओं का कभी न समाप्त होने वाला सिलसिला था तो दूसरी ओर परिवार की व्यवस्था अपनों का स्नेह और उसके प्रति धनोपार्जन द्वारा सुख व सन्ताप भरा जीवन बिताने की परम्परायुक्त प्रणाली। यह खींचा तानी कुछ समय चली राजेन बाबू के मन मस्तिष्क में और अन्त में उस पक्ष की विजय हुई जहां संघर्ष था यातनाएं

थी कुछ कर गुजरना था—सबसे अलग सबसे अधिक महत्वपूर्ण था फर्ज देश के प्रति अपनी उस माटी के प्रति जिसमें वह खेल-कूदकर बड़े थे, अपनी मातृभूमि के प्रति जो उनकी अपनी जननी के समान स्नेहमयी और सुखदायिनी है और उन्होंने गोखले का सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी की सदस्यता को अंगीकार कर लिया किन्तु यह सूचना वह अपने अग्रज तक किस प्रकार पहुंचाए यह नई मुसीबत । अग्रज बाबू महेन्द्र प्रसाद ही उनके संयुक्त परिवार के प्रमुख थे । पिता के देहान्त के पश्चात राजेन बाबू ने तो उन्हें ही अपना सब कुछ माना था । राजेन बाबू का सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी में जाना परिवार में पसन्द नहीं किया गया और वह उदास मन लेकर कलकत्ता चले गये और वकालत के पेशे में स्वयं को लगा दिया । साथ ही एल० एल० एम० की भी तैयारी शुरू कर दी । फलस्वरूप हमेशा की तरह इस परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी प्राप्त की । कलकत्ता में राजेन बाबू, डॉ० रासबिहारी घोष और श्री एस० पी० सिन्हा के साथ काम किया । यह सिन्हा वही थे जो बाद में बिहार के गवर्नर लार्ड सिन्हा के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

मार्च 1916 में पटना में उच्च न्यायालय की स्थापना हो जाने से राजेन बाबू कलकत्ता से पटना चले आये और बिहार के मुकदमे पटना स्थित उच्च न्यायालय में ही किये जाने लगे । तभी पटना में विश्वविद्यालय भी स्थापित किया गया परन्तु उसके स्थापना सम्बन्धी विधेयक में कुछ खराबियां थीं जैसे विश्वविद्यालय पटना नगर से बहुत दूर बनाया जा रहा था । राजेन बाबू ने उन कमियों और खराबियों के विरोध में आवाज उठाई । उनके विरोध ने एक व्यापक आन्दोलन का रुख ले लिया जिसके सामने तत्कालीन सरकार को झुकना पड़ा और प्रस्तावित सुधारों को कार्यान्वित करने के साथ साथ राजेन बाबू को विश्वविद्यालय की सैनेट में सदस्य भी बना लिया गया ।

लखनऊ कांग्रेस में उनकी सर्वप्रथम भेंट गांधीजी से हुई । दक्षिण अफ्रीका में अपने सफल सत्याग्रह के कारण गांधीजी भारत में एक नायक का आदर सत्कार पा रहे थे । प्रत्येक व्यक्ति उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था । लखनऊ में राजेन बाबू पर भी गांधीजी का जादू पूरा असर कर

गया।

बिहार के कांग्रेसियों ने गांधीजी से चम्पारन में नील की खेती में किसानों के प्रति अंग्रेज मालिकों का अत्याचार और शोषण के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की जिसे गांधीजी तुरन्त मान गए और तथ्यों की जानकारी तथा छानबीन करने के लिए एक शिष्टमण्डल के साथ स्वयं जाने के लिए तैयार हो गए। कलकत्ता कांग्रेस में लखनऊ की 'सर्वप्रथम भेंट' से बात आगे बढ़ी, राजेन बाबू गांधीजी के और निकट आये परन्तु अपने लजीले स्वभाव के कारण वह बोल फिर भी नहीं पाए।

चम्पारन सत्याग्रह के फलस्वरूप राजेन बाबू के दैनिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने में आया। पहले वह ब्राह्मणों के अतिरिक्त किसी अन्य जाति के व्यक्ति के पकाये हुए भोजन को छूते भी न थे परन्तु चम्पारन संघर्ष के पश्चात इन कट्टरपंथी व संकीर्णता से वह मुक्त हो गए। इस परिवर्तन ने वास्तव में उनके परिवार तथा साथियों को चकित कर दिया और चारों ओर से मिली जुली प्रतिक्रिया का वातावरण व्याप्त हो गया परन्तु राजेन बाबू स्वतन्त्रता आंदोलन में खुले रूप से आ गये।

उन्हीं दिनों 1917 में डाक्टर ऐनी बेसेण्ट और लोकमान्य तिलक ने होम रूल लीग स्थापित की थी जिसकी शाखाएं पूरे देश में खुल गई थीं। ब्रिटिश सरकार के कान खड़े हो गए थे और भारत के सचिव श्री इ० एस० माण्टेग्यू ने भारत आने की घोषणा की थी। कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में डा० एनी बेसेण्ट को अध्यक्ष चुना गया।

बम्बई अधिवेशन में माण्टेग्यू चैम्स फोर्ड सुधार को लेकर कांग्रेस में बड़ा भारी मतभेद उत्पन्न हुआ। लोकमान्य तिलक ने साफ तौर से उक्त सुधार रिपोर्ट को अस्वीकार करने की बात की। बम्बई से लौटते समय राजेन बाबू अहमदाबाद रुके, गांधीजी से मिले जो बीमार थे और उन्हें बम्बई कांग्रेस में उत्पन्न हुए मतभेद पर भारी क्षोभ भी था।

रौलट अधिनियम के माध्यम से ब्रिटिश सरकार देश में सभी क्रांतिकारी गतिविधियों का कुचलने व उससे उत्पन्न होने वाली किसी भी स्थिति से निपटने के लिए भारत सरकार को काफी बड़ी शक्तियां प्रदान करने के लिए कटिबद्ध थी। गांधीजी ने तत्कालीन वायसराय से उक्त शक्तियों के

प्रावधानो म ढील डालने के लिए अनुरोध किया परन्तु उधर कान पर जू तक नही रेंगी। फलस्वरूप देशव्यापी सत्याग्रह का आह्वान किया गया। सम्पूर्ण देश म हडताल की गई जिससे देश म एकता और गाधीजी के नेतत्व म निष्ठा का प्रमाण सामने आ गया। सत्याग्रह पूरी तरह से शान्तिपूर्ण और अहिंसात्मक हो, इसके लिए गाधीजी ने सभी सत्याग्रहियो से लिखित प्रतिज्ञा ले ली थी। राजेन बाबू ने सबसे पहले उस प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर किये थे।

परन्तु जलियावाला बाग के भीषण और निमम हत्याकाड के कारण सत्याग्रह वापस ले लिया गया और अगले वष 1920 म असहयोग आदोलन शुरू किया गया। राजेन बाबू ने अपनी वकालत छोड दी और बिहार म आदोलन का नेतत्व किया।

बारदाली सत्याग्रह मे भाग लेने के लिए राजेन बाबू को बुलाया गया परन्तु वहा पहुचने से पूर्व ही चौरी चौरा काड की सूचना उन्ह मिल गई जिसम जनता और पुलिस के मध्य मुठभेड हो जाने के कारण एक पुलिस कर्मी की हत्या कर दी गई थी। गाधीजी ने यह सोचकर कि देश अभी अहिंसात्मक सत्याग्रह के लिए पूरी तरह से शिक्षित व तैयार नही हुआ है। आदोलन रोक दिया और सजनात्मक कायक्रम पर जोर दिया।

ब्रिटिश सत्ता द्वारा चलाये जाने वाले शिक्षा सस्थाना के बहिष्कार के आह्वान क अतगत राजेन बाबू ने बिहार विद्यापीठ नामक एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की जिसमे उन्होन सबस पहले अपने बेटो को ही भर्ती कराया। इसके अतिरिक्त दो हजार स अधिक विद्यार्थी भी आकर्पित हुए। 1920 म राजेन बाबू ने पटना से देश' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक प्रकाशित करना आरम्भ किया। इसके साथ काग्रेस का पक्षधर एक अग्रेजी पत्र सचलाइट' के निदशक का पद भी ग्रहण किया। सचलाइट सप्ताह मे दो बार छपता था लेकिन अब तो वह दनिक हो गया है।

दिसम्बर 1922 म आयाजित गया के काग्रेस अधिवशन का सारा प्रबन्ध राजेन बाबू न सम्भाला। उसी अधिवशन मे इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि काग्रेस को विधान परिषदा म शामिल होना चाहिए अथवा नही। राजेन बाबू स्वय विधान परिषदो म शामिल होन के पक्ष

म नही थ और उनके समथन म सम्पूण बिहार उनर पीछे था। उनक हा पक्ष मे दशब धु चितरजन दास न अध्यक्ष पद स त्यागपत्र भी द दिया था। कायकारिणी न उनस अपन त्यागपत्र वापस ले लन का अनुरा ा किया भी परन्तु दास बाबू अपने निणय पर अटल रह और तभी स्वराज पार्टी का गठन किया जिसर म त्री पद पर चुना गया पण्डित मोतीलाल नेहरू का।

राजेन्द्र प्रसाद जी की सवाओ का उपयाग करने का सुअवसर कुछ दिन पटना नगरपालिका का भी मिला। वह नगरपालिका के चेयरमन क पदपर पहन ता राजी नही थे लकिन बाद मे उसे स्वीकार किया। उस अवधि में उन्होंने पटना के नागरिको की समस्याओ को सुलझाने और उनकी सुख सुविधाओ के लिए दिन रात काम किया परन्तु कुछ वैधानिक अडचनो क कारण उन्ह वाछित सफलता प्राप्त नही हो पाई।

व्यक्तिगत रूप से वह काग्रेसियो की स्थानीय सस्थाओ म चुनाव लडने के पक्ष में थे भी नही। उनके विचार मे इससे वमनस्यता और ईर्ष्या बढती है।

गया स्थित बोधगया के मन्दिर की प्रब ध समिति स भी राजेन बाबू सक्रियता से सम्बद्ध रहे। उसके सुधार के लिए एक रिपोर्ट भी तत्कालीन काग्रेस मन्त्रिमडल के समक्ष प्रस्तुत की और उसमें प्रस्तावित सुधारो को कार्यान्वित करन की सिफारिश की। परन्तु पूव इसके कि उन सिफारिशो पर काम किया जाता, काग्रेस मन्त्रिमडल ने त्यागपत्र द दिया।

6 अप्रैल, 1930 को प्रसिद्ध दशव्यापी नमक सत्याग्रह म बिहार का नेतत्व किया राजेन बाबू न। पटना म विशेषकर सत्याग्रह का जोर ज्यादा रहा। लाखो की सख्या म स्वयसेवक नमक बनाने के लिए जुलूस बनाकर चल। जिला मजिस्ट्रेट न अन्तिम चतावनी दी, 'यदि आधे घण्ट मे भीड नही हटी तो जो भी कुछ होगा उसका उत्तरदायित्व राजेन्द्र प्रसाद परहोगा।' राजेन बाबू काग्रेस के मुख्यालय सदाकत आश्रम दौडे। सब साथियो से विचार विमश किया। सभी न एक मन स निणय लिया कि जिला मजिस्ट्रट के मन म जो आय कर। जनता नही हटेगी। निणय दूरभाष के द्वारा बता दिया गया और राजेन बाबू अपन सभी साथियो के साथ पुन मोर्चे पर जा

हट। उधर घुड़सवार पुलिस को आदेश दे दिया गया चार्ज' फिर भी सत्याग्रही शान्तिपूर्वक अपने अपने स्थानों पर बैठे रहे। पुलिस ने सत्याग्रहियों को सशरीर उठा-उठाकर पुलिस की गाड़ी में डाल दिया और शहर से तीन साढ़े तीन मील ले जाकर छोड़ दिया। यद्यपि उक्त सत्याग्रह में सम्मिलित होने के लिए कोई विशेष सूचना अथवा प्रबन्ध नहीं किया गया था। फिर भी जनता अपने प्रिय नेता के आह्वान पर ही हजारों की संख्या में एकत्रित हो गई थी और उनके एक संकेत पर जान देने के लिए तैयार थी। यह सत्याग्रह बिहार में जून तक चलता रहा। और राजेन बाबू के सफल एवं कुशल नेतृत्व में चलाया गया यह सत्याग्रह यादगार सत्याग्रह बनकर रह गया सदा के लिए। इस सत्याग्रह में नमक बनाने के अतिरिक्त विदेशी वस्त्रों व शराब की दुकानों पर भी धरने दिये जाते थे। छपरा में पहली बार राजेन बाबू गिरफ्तार किये और छः महीने की जेल हुई उन्हें। उन दिनों जेल में बंदियों में किसी प्रकार का वर्गीकरण नहीं था। सभी को लोहे की रकाबियों में भोजन दिया जाता था। कुछ समय पश्चात् उन्हें हजारीबाग की जेल में भेज दिया गया जहां अन्य सत्याग्रही साथियों से उनकी भेंट हुई।

राजेन बाबू सदा अच्छे पाठक रहे। जेल में पढ़ने के लिए वह पुस्तकें मंगा लेते थे। चूंकि जेल में राजनैतिक विचारधारा की पुस्तकों पर रोक थी वह अन्य प्रकार की पुस्तकें पढ़ते थे जैसे धार्मिक आध्यात्मिक, दार्शनिक और आर्थिक (कुटीर उद्योग) आदि विषयों की पुस्तकें उन्हें मिल जाती थीं। परन्तु जेल में अधिकतर समय गांधीजी के लेखों का एकत्रित करते रहते और अहिंसा, स्वराज्य, सत्याग्रह पर शिक्षाप्रद लेखों का अच्छा संकलन तैयार कर लिया जिस पर उन्होंने संक्षिप्त भूमिका भी तैयार की।

गांधीजी के अछूतोद्धार आन्दोलन के अन्तर्गत राजेन बाबू ने राजा जी के साथ दक्षिण की यात्राएं कीं। वहां मदुरई और श्रीरंगम के मन्दिरों में हरिजनों के प्रवेश के लिए प्रयास किया। उन मन्दिरों में तो नहीं, फिर भी अन्य मन्दिरों के द्वार अवश्य खोल दिये गये हरिजनों के लिए। वही प्रयास उन्होंने आंध्र और केरल में भी किया। तत्कालीन त्रावनकोर कोचीन के महाराज पद्मनाभ के मन्दिर में हरिजनों के प्रवेश के लिए राजी हो गये और

राजा जी तत्कालीन मद्रास प्रान्त के मुख्यमन्त्री हुए तो मदुरई सहित अनेक मन्दिरों के कपाट भी हरिजनों के लिए खुल गये।

15 जनवरी 1934 को बिहार भूकम्प की चपेट में आकर क्षतविक्षत हो गया। सारे संसार का दिल दहल गया उस दारुण अवस्था को सुनकर, देखकर। समस्त समाज सेवी संस्थाएं बिहार दौड़ पड़ी। राहत कार्य शुरू कर दिया गया। राजेन बाबू अपना रोग भूलकर उन घायलों की सेवा में जुट गये। सारा देश राजेन बाबू का हाथ बटाने लगा। वह स्वयं राहत कार्य के केन्द्र बन गये। इसी प्रकार क्वेटा के भयानक भूकम्प में भी राजेन बाबू तन्मयता से जुट गये थे।

बम्बई कांग्रेस की अध्यक्षता राजेन बाबू ने की। श्रीमती सरोजिनी नायडू के बहुत कहने पर जुलूस में राजेन बाबू के साथ उनकी पत्नी श्रीमती राजवंशी देवी को भी बिठाया गया। शायद यह शोभायात्रा पहली थी जब श्रीमती राजवंशी देवी अपने पति के साथ सड़कों पर निकली थीं उस अपार जनसमूह के समक्ष।

1942 की महान क्रांति ! 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव !! 'करो या मरो' का महामंत्र !!! प्रति उत्तर में ब्रिटिश का क्रूरतम दमन चक्र। राजेन बाबू समेत सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और अज्ञात स्थान पर भेज दिया गया।

1943 के बंगाल में 'बनाये गये' महाअकाल की विभीषिका की सारी यातनाएं उन्होंने जेल की दीवारों में कैद रहकर सहीं, भोगीं क्षोभ व दुःख के साथ।

जेल में अन्य नेताओं के साथ उन्होंने भी अपना कैदी जीवन का उपयोग रचनात्मक ढंग से किया—लिखकर। जेल में उन्होंने एक पुस्तक लिखी—'दि इण्डिया डिवाइडैड' जो 1946 में प्रकाशित हुई जब सभी जेलों से मुक्त हुए। साथ ही उन्होंने अपने संस्मरण भी लिखे जिसे हिन्दी में प्रकाशित किया गया। उनकी यह आत्मकथा शायद पहली आत्मकथा है जिसे मूल रूप से हिन्दी में लिखा गया है।

2 सितम्बर 1946 को भारत की अन्तरिम सरकार के अन्तर्गत राजेन बाबू को खाद्य एवं कृषि मन्त्रालय सौंपा गया। छः वर्षों के युद्ध के कारण देश

की आर्थिक दशा अत्य त जजर तथा शाचनीय थी। महगाई और अनुप लब्धता का बालबाला था। कालाबाजारी और मुनाफाखोरी का चलन शुरू हो गया था। घूसखोरी ता पहले स ही थी। चाह वह रिश्वत के रूप म रही हो चाहे बडे बड त्योहारा पर साहब लोगा क बगला पर 'डाली' के रूप म। राजन बाबू ने अपने सगठन एव प्रशासनिक योग्यता का परिचय 1934 म बिहार म भूकम्प के समय द ही दिया था। इसलिए दश म खाद्य व कृषि की स्थिति सुधारन के लिए राजेन बाबू स याग्य कोई अन्य विकल्प था भी नही प० जवाहरलाल नेहरू के सामन। खाद्य कृषि मत्री के रूप मे डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद न अन्न अधिक उपजाओ का अभियान आरम्भ किया गया। साथ म विदश स भी अनाज मगाया और इस प्रकार आत्म निभरता क लक्ष्य की दशा को अग्रसर करने की महती योजना बनाई जिसका लाभ आज (1982 म) दश को मिलना आरम्भ हुआ है। अनाज के सुरक्षित भण्डार की प्रणाली भी तभी न आरम्भ हुई थी जिस आर्थिक आपातकालीन स्थिति के समय उपयोग में लाया जाए

कुछ ही दिन वह खाद्य व कृषि मत्रालय दख पाये थे कि 11 दिसम्बर, 1946 को उन्ह देश की सर्वोच्च विधान सभा का स्थायी अध्यक्ष चुन लिया गया। उक्त पद क लिए उनका नाम आचाय कृपलानी न प्रस्तावित किया था और सरदार पटेल न उनका समथन किया था। सवसम्मति से तथा जयहिन्द व इन्कलाब जिन्दाबाद क बुलन्द नारो के बीच आचाय कृपलानी और मौलाना आजाद ने उन्ह अध्यक्ष पद पर ल जाकर पदासीन किया था।

और 24 जनवरी, 1950 को मगलवार के मगलमय वेला म विधान सभा ने एकमत होकर अपन दश, भारत क गणराज्य का प्रथम राष्ट्रपति चुना दशरत्न राजेन बाबू को। उस समय उनका नाम प० जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्तावित किया था और सरदार बल्लभ भाई पटल न प्रस्ताव का समथन किया।

26 जनवरी को उन्हान प्रथम राष्ट्रपति के पद की शपथ ली। वायस रीगल लाज राष्ट्रपति भवन के रूप म परिवर्तित किया गया। उसक हरे गुम्बद पर नया ध्वज फहराया जाने लगा जिसके स्थान पर कालान्तर

राष्ट्रीय ध्वज फहराया जा सका। राष्ट्रपति भवन के सभी कर्मचारी एक सीधे सादे किसान जैसे व्यक्ति को पाकर सुखद आश्चर्य में भरकर गद्गद हो गये।

यह व्यक्ति सन्त था, सर्वोच्च व्यक्ति था। उस राज्य प्रासाद में रहने वाले पूर्व वायसरायों में भी बड़ा। फिर भी न उसे समाट बहु सुख्नू में रहना था न ही शासकीय घमण्ड में चूर रहना था। उसकी सुबह सन्ध्या पाठ से आरम्भ होती थी। उसके कार्यालय में अत्यन्त स्वच्छ वातावरण छाया होता था। उसका भोजन अत्यन्त सात्विक और निरामिष होता था। उसकी सांझ राष्ट्रपति भवन के सुन्दर उद्यान में कर्मचारियों के बच्चों के बीच रामधुन के कीर्तन के साथ बीतती थी। सन्त सन्त और बिहारी गांधी को देश ने दुबारा चुना अपना राष्ट्रपति। पहली बार और शायद अन्तिम बार और दो बार राष्ट्रपति के पद पर देश की सेवा करने के उपरान्त राजेन्द्र बाबू 1962 की मई में राष्ट्रपति भवन त्यागकर पटना स्थित सदाकत आश्रम में रहने लगे हमारे आधुनिक विद्रोह जनक। डॉक्टर राधाकृष्णन के कथनानुसार डॉक्टर राजेन्द्र भारत के उन सपूतों में से हैं जिनमें देश का दर्शन और आत्मसम्मान अवतरित हुआ है।

"डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के सम्बन्ध में एक पंक्ति में कुछ कहने की फरमाइश की गई है मुझसे"—भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू ने एक बार कहा था, "और मैंने उत्तर में यही कहा है कि मैं अवश्य लिख सकती हूं यदि मुझे सोने का कलम मिल जाए जिसे मैं मधुपात्र में डुबा सकूं, फिर भी उनके बारे में लिखने के लिए यह सब पर्याप्त नहीं होगा। मेरे मानस में एक प्रतिभा उतरती है जो किसी भी शस्त्रधारी योद्धा की सी नहीं है—वह प्रतिमा है एक फरिश्ते की जिसके हाथ में कलम है और उसने जनमानस पर विजय पा ली है। वह प्रतिमा डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद से बिलकुल मिलती है।"

राजेन बाबू ने जब विदेश भ्रमण किया था अपने डुमरावां के मुकदमे के सिलसिले में, तभी एक युद्ध विरोधी सम्मेलन में भी भाग लिया था। सम्मेलन में जर्मनी आस्ट्रिया फ्रांस इंग्लैंड हालैंड चेकोस्लोवाकिया तथा फिलस्तीन आदि अनेक देशों के शांति पसन्द प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। उन्होंने

युद्ध की त्रासदी को स्वयं भोगा था। सम्मेलन में डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद ने गांधीजी द्वारा किए गए चम्पारन चमत्कार के सम्बन्ध में बताया था। उक्त सम्मेलन में ही कुछ विरोधी तत्वों ने उपद्रव खड़ा कर दिया था और सम्मेलन के आयोजकों के बचाने के चक्कर में राजेन बाबू का सिर फूट गया था। उसी यात्रा के मध्य व रोमां रोलां आदि अनेक यूरोपीय विचारकों से भी मिले थे।

अपने व्यस्त जीवन के बावजूद राजेन बाबू ने कुछ पुस्तकों की रचना की जिनमें चम्पारन सत्याग्रह का इतिहास (1917) अंग्रेजी में, महात्मा गांधी के चरणों में (1955) अंग्रेजी में, विभाजित भारत (1946) अंग्रेजी में और आत्मकथा (1957) हिन्दी में प्रमुख हैं।

1962 में ही राजेन बाबू को उनकी अनगिनत सेवाओं के लिए देश का सर्वोच्च अलंकरण भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

और अगले वर्ष ही 28 फरवरी, 1963 को सम्पूर्ण देश को शोक-सागर में डुबाकर राजेन बाबू अनंत में लीन हो गए। सदाकत आश्रम में ही उनकी समाधि बनाई गई जो अब तीर्थ है।

डॉक्टर जाकिर हुसैन—1963

कहते हैं कि पैगम्बर इब्राहीम केवल इसलिए प्रसिद्ध नहीं हैं कि उन्होंने काबा बनाया था बल्कि इसलिए कि वह खूबसूरती के साथ आग मे बठ गय थे। डाक्टर जाकिर हुसैन ने न केवल काबा (जामिया मिल्लिया) बनाया था बल्कि वह गरीबी और अभावो की आच मे तप भी थे। लगभग 24 वर्षों के कडे परिश्रम स उस पाला पोसा था। जसाकि कवि शली न कहा है—

> ओ पवन
> शरद आता है यदि
> तो क्या—
> बहार आने मे ज्यादा देर नहीं लगती

और वास्तव म डॉक्टर साहब का श्रम कुसुम जामिया के रूप म प्रफुल्लित है और उनकी स्मृति के रूप म आने वाली दुनिया के सामन मूर्ति मान है। शेख सादी के शब्दो म—

> अच्छे काम वाले आदमी के लिए नहीं है मौत, ओ सादी।
> मर तो वह जाते ह जिनका नाम कभी लिया नहीं जाता॥

नई तालीम के जनक, राष्ट्रीय मुसलमानो के लिए बेमिसाल प्रणेता और आजीवन श्रमजीवी अध्यापक डॉक्टर जाकिर हुसन का ज म 8 फरवरी 1897 को हैदराबाद (दक्षिण) म हुआ था। उनके पूवज सीमा प्रात क अफ्रीदी कबील क थे और लगभग ढाई सौ वप पहले उत्तर प्रदश के फरुखाबाद जिले म कायमगज ग्राम म आ बसे थे। आपके पिता जनाब फिदा हुसन खा

हैदराबाद मे नामी वकील थे और इज्जतदार पठान थे।

आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई परन्तु अभी जाकिर हुसैन नौ वर्ष के ही थे कि उनके सिर से पिता का साया उठ गया और उन्हे हैदराबाद छोडकर वापस कायमगज आ जाना पडा। वहा उनकी शिक्षा का सारा भार उनकी मा पर आ पडा। बचपन से ही, इसलिए उन पर मा का प्रभाव ज्यादा रहा जो अत्यन्त साध्वी और धार्मिक महिला थी। उन्होने अपने बेटे को हमेशा एक सच्चा मुसलमान बनने की प्रेरणा दी और सबसे बिना किसी प्रकार के धर्म जाति अथवा रग भेद के बराबरी का व्यवहार करने की शिक्षा दी। साथ ही, एक सूफी सत हसन शाह का भी प्रभाव उन पर खूब पडा।

आरम्भिक शिक्षा के पश्चात जाकिर हुसैन का नाम इस्लामिया हाई स्कूल, इटावा मे लिखवा दिया गया। वहा वह कई राष्ट्रवादी अध्यापकों के निकट सम्पर्क मे आए और सामाजिक चेतना उजागर करने मे काफी सहायता मिली। उन्होने समाचार पत्र पढने की आदत डाली जिससे ससार के सामान्य ज्ञान से निरन्तर जानकारी बनी रही।

इन्ही दिनो पश्चिम एशिया मे त्रिपाली युद्ध चल रहा था और युवक जाकिर हुसैन तुर्कों के प्रति सहानुभूति रखने लगे थे। वह तुर्कों के उत्पीडन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने उनकी सहायतार्थ एक कोष शुरू कर दिया।

साथ ही मौलाना अबुल कलाम 'आजाद' तथा मौलाना मोहम्मद अली के लेखो से भी प्रभावित हुए और निरन्तर 'अलहिलाल' व 'कामरेड' पत्र पढने लगे। यह दोनो पत्र मुसलमानो मे राष्ट्रीय चेतना जागृत कर रहे थे।

1911 मे प्लेग महामारी के प्रकोप से जाकिर हुसैन को अपने परिवार से हाथ धोना पड गया। परन्तु इस वज्रपात को इन्होने सच्चे पठान की तरह बहादुरी से बर्दाश्त कर लिया और अपनी शिक्षा मे रुकावट नही आने दी। सोलह वर्ष की किशोर अवस्था मे ही आपने मैट्रिक परीक्षा पास की और सभी विषयो मे विशेष योग्यता (डिस्टिंगशन) प्राप्त की। इससे आपको आगे पढने मे जहा प्रेरणा मिली वहा आर्थिक सहयोग भी। 18 वर्ष की आयु मे अलीगढ मे मोहमडन एग्लो ओरिन्टियल कॉलेज से विज्ञान लेकर

आपने इन्टर परीक्षा पास की। इसी समय आपका विवाह भी हुआ 10 वर्षीया शाहजहान् बेगम से, जो जीवन भर उनके साथ छाया सी बनी रहा। अलीगढ़ में आप उर्दू के दो प्रसिद्ध साहित्यकारों—रशीद अहमद सिद्दीकी और इकबाल हुसैन के निकट सम्पर्क में आए जो उन्हें 'मुर्शिद' के नाम से सम्बोधित करते थे।

जाकिर हुसैन की गतिविधियां अपने तक ही सीमित नहीं रहीं। वह सदा अपने सहपाठियों के दुःख दर्द में हाथ बटाते थे और इसी से वह छात्र समुदाय में बहुत लोकप्रिय हो गए थे। वह सदा विचारगोष्ठियों में भाग लेते थे और तकसंगत भाषण देते थे।

1918 में आपने दर्शन, अंग्रेजी साहित्य तथा अर्थशास्त्र लेकर बी०ए० की परीक्षा पास की। जब आपने कानून और अर्थशास्त्र में एम० ए० का अध्ययन शुरू किया तभी आपकी नियुक्ति उसी कॉलेज में कनिष्ठ प्रवक्ता के पद पर हो गई। महत्ता के फूल खिलने शुरू हुए। कठिनाइयों के बादल छटने लगे। भविष्य का सूर्य साफ दीखने लगा।

कि तभी प्रथम महायुद्ध समाप्त हो गया। देश में एक नई आंधी आयी। अंग्रेजों ने जो विश्व युद्ध से पूर्व भारतवासियों को आजादी के सब्ज बाग दिखाए थे अब कुम्हलाने लगे। जीत जाने के बाद उन्होंने आंखें चुराना शुरू कर दिया। गांधीजी ने इस शर्त पर लड़ाई में सहायता देना स्वीकार किया था कि लड़ाई के बाद भारत को आजादी मिल जाएगी। परन्तु अब तो पासा ही पलट चुका था। आजादी देना तो दूर रहा, उल्टे उन्होंने दमन चक्र और भी मजबूत और क्रूर कर दिया था। खिलाफत आन्दोलन की चिंगारियों से सारा देश दहक उठा था। जलियांवाला बाग काण्ड ने तो उस आग को और भी तेज भड़का दिया।

गांधीजी ने असहयोग का नारा बुलन्द किया। ब्रिटिश सरकार से असहयोग का आह्वान सारे देश में गूंज उठा। लोगों ने नौकरियां छोड़ दीं। वकीलों ने अदालतों से मुंह मोड़ लिया। छात्र भी पीछे नहीं रहे। अलख जगाते हुए अली बन्धुओं के साथ महात्मा गांधी अलीगढ़ भी आ पहुंचे और छात्रों से कॉलेज छोड़ने का आह्वान किया। कुछ तो अंग्रेजों का दबदबा, फिर मुसलमानों का अपना पृथकवादी दृष्टिकोण अलीगढ़ के उस मुस्लिम

कॉलेज क छात्रो पर सकोच का भारी पर्दा पडा रहा। परन्तु सकोच का पर्दा तार तार कर दिया वहा क अध्यापक छात्र युवक जाकिर हुसन न। उसन घोषणा की कि गाधीजी की आज्ञानुसार वह कॉलेज छोडता है। कॉलेज छोडने का मतलब था—अध्यापन छूटना और साथ ही बधी-बधाई नियमित आमदनी। परन्तु जाकिर हुसन न तो फसला कर लिया था। सभी को आश्चय भी हुआ उनके इस बहादुराना फसले पर। कॉलेज के प्राध्यापकों तथा आचार्य ने भी उन्हें समझाया। डिप्टी कलेक्टरी का लालच भी दिया पर वह छात्र तथा कनिष्ठ प्रवक्ता अपन इराद से एक इच भी नही डिगा और महात्मा गाधी के जत्थे मे जा मिला और आत्मा से किया गया वह अटल फैसला जाकिर हुसैन के साथ जीवन भर रहा।

जब सकोच का पर्दाफाश हो गया तो जाकिर हुसैन क साथ तीन सौ और छात्रों ने भी कॉलेज छोड दिया और देश की आजादी पर मर मिटने वाले दीवानो की टोली म जा मिले।

जाकिर साहब चाहते थे कि उन छात्रो की पढाई म रुकावट न आए। अत उन्होंने एक अलग विद्यालय की नीव डाली जो जामिया मिल्लिया इस्लामिया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस राष्ट्रवादी सस्थान को हकीम अजमल खा और मौलाना मोहम्मद अली स बहुत सहयोग मिला। जाकिर साहब न अथशास्त्र की कक्षाए स्वय लेना शुरू कर दी। 1922 म, जब आगे की पढाई के लिए इग्लण्ड जाने का चलन' जोरो पर था, तब जाकिर साहब न अथशास्त्र म आगे की शिक्षा के लिए जमनी जाना उचित समझा। जमनी म उनकी भेंट प्रोफेसर मुजीब और जनाब आबिद हुसैन से हुई जिन्होंने जीवन भर जामिया मिल्लिया की सेवा करने का वचन दिया। वहा जाकिर साहब को जामिया मिल्लिया क आर्थिक सकट के समाचार भी मिले और यहा तक आशका हुई कि कही वह ब द न हो जाए। अपने खून पसीने से सीचे हुए पौधे को इस तरह से सूखना सुनकर जाकिर हुसैन बहुत बचैन हो उठे। परदेस मे रहकर इतनी दूर म वह आखिर कर भी क्या सकत थे कि तभी हकीम अजमल खा और डाक्टर असारी यूरोप पधारे। जाकिर साहब उनसे तुरन्त मिले और सहयोग की प्राथना की। हकीम साहब और डाक्टर साहब ने उन्हें विश्वास दिलाया कि उनके इस पवित्र

वाय को इस प्रकार नष्ट नही होन देंगे। स्वदश लोटन पर इ होंने उसके लिए आर्थिक सहयोग की अपील की और जामिया मिल्लिया अलीगढ़ स दिल्ली ले आया गया।

विदेश मे रहकर जाकिर साहब ने विश्व की अनक साहित्यिक विभूतियो से सम्पक स्थापित किया जि होने जामिया मिल्लिया को सहयोग दत रहने का वचन दिया।

1926 म बर्लिन विश्वविद्यालय से पी एच० डी० की उपाधि तथा अपन विश्वासपात्र सहयोगी प्रोफेसर मुजीब और डॉक्टर आबिद हुसन का अपने साथ लेकर स्वदेश लौटे। यहा आकर दखा कि जामिया मिल्लिया का दिवाला निकला हुआ था और जनता का सहयोग भी नाम मात्र ही था। जाकिर साहब ने हिम्मत नही हारी और फिर से अपने जामिया को बनान सवारने के लिए जुट गय। यदि यह कहा जाए कि जामिया का इतिहास जाकिर साहब की आत्मकथा है तो बिल्कुल अतिशयोक्ति नही होगा।

आर्थिक सकट से उबरने के लिए जाकिर साहब न अजुमन ए-तालीम ए मिल्ली का गठन किया। इसके अध्यक्ष डाक्टर अ सारी और कोषाध्यक्ष जमनालाल बजाज को बनाया गया। सचिव का पद स्वय सभाला। अनेक साथियो ने कम स कम दो दशको के लिए केवल 150 रुपय मासिक वेतन पर काम करने का वचन दिया। इसके साथ ही जामिया मिल्लिया के प्रति सहानुभूति रखन वालो की सस्था—'हमदर्दान ए जामिया की भी स्थापना की गई। इस सस्था के अ तगत धन एकत्रित किया जाना रहा।

1935 मे जामिया मिल्लिया को दिल्ली मे करोल बाग से उठाकर ओखला ले जाया गया और सस्थान की आधारशिला अनेक महत्त्वपूर्ण विभूतियो की उपस्थिति के बावजूद जाकिर साहब ने एक बालक के न हे मुन्ने हाथो से रखवाई। सविनय अवज्ञा आ दोलन के दिनो म तो जामिया मिल्लिया का भारत की स्वत त्रता के सग्राम के लिए सच्चे और कमठ सेनानियो का प्रशिक्षण के द्र क रूप म उपयोग किया जाने लगा। शिक्षा क क्षेत्र मे अपने अनूठे प्रयोगो और उनम सफलता का परिणाम यह निकला कि जब गाधीजी को अपनी बेसिक शिक्षा के लिए योग्य व्यक्तियो की जरूरत पडी तो जाकिर हुसैन सा उपयुक्त शिक्षा शास्त्री चिराग जलाकर

ढढे से भी नही मिला। 1937 मे आयोजित वर्धा मे अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्ष की स्थिति मे आकर जाकिर साहिब ने बेसिक शिक्षा के विभिन्न पहलुओ का सुधारा सवारा और एक सुनिश्चित एव सुगठित योजना की रूपरेखा तैयार की। इसे काग्रेस ने जब कई प्रान्तो मे अपने मत्रिमण्डल बनाए तब उन प्रान्तो म कार्यान्वित किया। परन्तु दूसरे विश्व युद्ध छिड जाने और काग्रेस मत्रिमडल भग हो जाने के कारण वह योजना अधूरी ही रह गई। जामिया मिल्लिया पर भी कडी नजर रखी जाने लगी।

देश विभाजन के साथ साथ उदय हुआ सूय आजादी का। इतने समय मे जामिया ने जितनी विशाल छवि बनाई उतनी ही गिराई अपनी छवि अलीगढ के मुस्लिम विश्वविद्यालय ने। दिन प्रतिदिन विश्वविद्यालय की ख्याति घटती गई। एक अनियमित सभ्यता और अव्यवस्थित सस्कृति पनपती चली गई। वहा के योग्य शिक्षकों ने भी देश त्यागकर पाकिस्तान चला जाना उचित समझा और विश्वविद्यालय दिवालियेपन व खोखलेपन से रिक्त सा हो गया। ऐसे कठिन समय पर पडित जवाहरलाल नेहरू और मौलाना आजाद ने जाकिर साहब के हाथ मे विश्वविद्यालय सौंप दना चाहा परन्तु जाकिर साहब सरकारी मनोनीत अधिकारी के रूप म नही जाना चाहते थे। उन्होने कहा कि वह तभी जा सकते है जब विश्वविद्यालय का कोट' उन्ह उपकुलपति के रूप मे एकमत हो आमत्रित करे। और वह तभी गए भी जब उन्ह बहुमत से आमत्रित किया गया।

उनके व्यक्तित्व म अलीगढ विश्वविद्यालय फिर मुखरित हो उठा। उन्होने उसे फिर सभाला और सशक्त शिक्षा सस्थान के स्तर पर लाकर फिर से राष्ट्रीय मच पर प्रस्थापित कर दिया।

1952 में जाकिर साहब को राज्य सभा का सदस्य चुना गया। उन्होंने देश के शिक्षा एव आर्थिक क्षेत्रो में दिलचस्पी दिखाई। इसी अवधि में आप अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सामाजिक एव सास्कृतिक परिषद की अखिल विश्वविद्यालय तथा अन्तर्राष्ट्रीय छात्र सेवाओ से भी सम्बन्धित रहे।

1957 में आप बिहार क राज्यपाल नियुक्त किये गये और इसी काल में बिहार विश्वविद्यालय (सशोधन) विधेयक में परिवतन लाने के ि

परिषद को राजी किया। 1962 में भारत क उपराष्ट्रपति बनाय गय डॉक्टर जाकिर हुसैन। यह दूसरा अवसर था कि एक अध्यापक को यह सम्मान दिया गया था और 1967 में आपको राष्ट्र के सर्वोच्च पद के लिए चुन लिया गया। यह भी पहला अवसर था कि राष्ट्रपति पद के लिए बाकायदा चुनाव हुआ था जिसमें कांग्रेस के उम्मीदवार थे डाक्टर साहब जबकि विरोधी पक्ष न मुख्य न्यायाधीश श्री के० सुब्बाराव को खडा किया था और ससार के इस महान प्रजातन्त्र दश के सर्वोच्च पद पर राष्ट्रपति एक मुसलमान बनाया गया था। भारत के पास धमनिरपेक्षता का इसस बडा प्रमाण और क्या हो सकता है।

जाकिर साहब ने 'प्लटो के रिपब्लिक' का उर्दू अनुवाद किया और कई अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं। डॉक्टर साहब का ललित कलाओं से विशष लगाव रहा था। स्नातक होने के तुरन्त बाद उन्होंने प्रोफेसर कैनन की 'एलिमेण्टरी पोलिटिकल इकानामी' का उर्दू रूपान्तर 'महादिए माशियत' के नाम स किया। प्लैटो के रिपब्लिक के अनुवाद म तो आपकी शैली इतनी परिमार्जित और मौलिक है कि इस अनुवाद के सम्बन्ध म तो आलोचकों ने यह तक कहा कि रिपब्लिक म उर्दू एस उतर कर आई है जसे डाक्टर जाकिर हुसैन साहब की अपनी ही जबान हो।' इसके अतिरिक्त फ्रेडरिक लिस्ट की पुस्तक का भी अनुवाद किया है डाक्टर साहब न।

हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद म माशियत (अथशास्त्र) पर भाषण दने के लिए आमन्त्रित किया गया (1932)। इन तीन भाषणों को एक पुस्तक म बाधकर उन्होंने अपने अध्यापक प्रोफेसर सामब्रत को समर्पित की है। इसके साथ ही डॉक्टर साहब जामिया की पत्रिका म नियमित रूप से लिखा करत थे। 1960 म हैराल्ड लास्की इन्स्टीच्यूट ऑफ पोलिटिकल साइंसेज अहमदाबाद म मावलकर स्मारक भाषण माला के अन्तगत भी व्याख्यान दिय।

डाक्टर साहब का साहित्यिक परिचय अधूरा ही रह जाएगा यदि उनके बाल-साहित्य के सम्बन्ध म कुछ न कहा जाए। 'रब्बा ए रिहाना क नाम स डॉक्टर जाकिर हुसैन न जामिया पत्रिका— पयाम ए-तालीम' में बच्चो के लिए कई कहानियां लिखी। य कहानियां अन्नूखा की बकरी' और

'चौदह कहानियां' में संकलित हैं। इन कहानियों के लिए सतीश गुजराल ने चित्र बनाए हैं। एक और कहानी लिखी— 'कछुआ और खरगोश'। इस कहानी में आज के संदर्भ को लेकर उन्होंने लिखा है।

उन्हें सौंदर्य और प्रकृति से अगाध प्यार था। उनकी रुचियां सौम्य और सुसंस्कृति पूर्ण थीं। उन्हें काव्य चित्रों तथा बागवानी का खास शौक था। उनके प्रिय कवि थे जामीरूमी, उर्फी, निजामी, सादी, गालिब और इकबाल। चित्रकारों में उन्हें हुसैन, गुजराल और रामकुमार खासतौर से पसन्द थे। *उन्होंने मुगल उद्यान में काफी दिलचस्पी दिखाई। एक गुलाब* उन्होंने स्वयं बनाया था जिसे जाकिर हुसैन का नाम दिया गया था।

एक बार सिकन्दर अली 'वज्द' की कविताओं की तारीफ की डॉक्टर साहब ने। उसके सात वर्ष पश्चात जब 'वज्द' ने अपना दीवान छपवाया और डॉक्टर साहब को भेंट किया तो उन्होंने तमाम रात पढ़कर सुबह ही 'वज्द' साहब से शिकायत की कि उन्होंने अपने दीवान में अपने अमुक 'शेर नहीं दिये हैं और वास्तव में वह अशआर छपने से रह गये थे।

डॉक्टर साहब प्रसिद्ध कलाकार मकबूल फिदा हुसैन से मिले। 1961 में हुसैन की कलाकृतियों की प्रदर्शनी हो रही थी। कलाकार अपनी प्रत्येक कृति पर अपने हस्ताक्षर के रूप में 'हुसैन' ही लिखते हैं। डॉक्टर साहब स्वयं कलाकार के पास पहुंचे और बोले "खाकसार को भी हुसैन कहते हैं।" हुसैन ने डॉक्टर साहब का भव्य चित्र भी बनाया है जो अपने आपमें एक मिसाल है। डॉक्टर साहब को पढ़ने का बेहद शौक था। वह हमेशा कोई-न-कोई पुस्तक पढ़ते ही रहते थे और बहुधा नेहरू जी से पूछते थे कि वह कौन-सी पुस्तक पढ़ रहे हैं। अक्सर तत्कालीन साहित्यकार और साहित्य पर चर्चा में लीन हो जाना साधारण बात थी उन दोनों के लिए, सारी राजनीति का बखेड़ा एक तरफ सरका कर। गुलाबों का उन्हें बेहद शौक था। रूस यात्रा के दौरान वे रूस से गुलाबों के कुछ पौधे लेकर आए थे।

उन्होंने जर्मनी के अतिरिक्त अमेरिका, थाईलैंड, कम्बोडिया (कम्पूचिया), मलेशिया, आदि देशों का भ्रमण भी किया था और वहां भारत का संदेश पहुंचाया।

"मैं हरएक आदमी के बेटे को, चाहे वह मुस्लिम हो, चाहे हि

या ईसाई अपना भाई समझता हू। मुझे इसकी परवाह नही कि दूसरे इसे समझते ह या नही " जाकिर साहब ने एक पत्र म लिखा था।

और 1963 म डाक्टर जाकिर हुसैन को देश के सर्वश्रेष्ठ अलकरण भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

उन्ह फारसी की कविता से विशेष दिलचस्पी थी और कहा जाता है कि जब उन पर दिल का दौरा पडा था तब वे हाफिज का दीवान ही पढ रहे थे। उनके पास कुछ हाथ से लिखे खूबसूरत पर्चे थे जिन्ह देखते ही बनता है।

"प्यासा सारे जहान म पानी ढूढता है / पानी को भी उन्ही आदमियो की तलाश है जो प्यासे ह / पानी कम ढूढो अपनी प्यास ज्यादा बढाओ / तुम्हारे चारो तरफ/जमीन से फूटता हुआ पानी मिलेगा तुम्हें।"

—मौलवी

पाण्डुरग वामन काणे—1963

तब महाराष्ट्र बम्बई प्रिजिडसी कहा जाता था और वतमान महाराष्ट्र की भौगोलिक सीमा तत्कालीन बम्बई प्रिजिडेंमी की भौगोलिक सीमा से भिन्न थी। फिर भी उसम था एक जिला रत्नागिरि, जो अब भी महाराष्ट्र म ही है। रत्नागिरि गरीब प्रदश है परन्तु अपनी विपन्नता के बावजूद भी वह सदा सम्पन्न रहा है। अनेक मूल्यवान रत्ना से सम्पन्न रही है रत्नागिरि की मिट्टी। प्रात स्मरणीय लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रसिद्ध विद्याशास्त्री व राजनेता गोपालकृष्ण गोखले, न्यायमूर्ति रानाडे, आचाय विनोबा भावे और 'भारत रत्न' पाण्डुरग वामन काणे इसी रत्नागिरि की ही 'उपज' हैं। इन सभी न अपने अपने कायक्षेत्र म विशेष एव अद्वितीय स्थान बनाया है।

सस्कृत के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रकाण्ड पण्डित, प्रसिद्ध विधिवत्ता और सासद श्री पाण्डुरग वामन काणे का जन्म चत्र त्रियोदशी 1802 (7 मई 1880) को रत्नागिरि के दापोली ग्राम निवासी एक चितपावन परिवार म हुआ था। उनके पितामह श्री शकरराव सस्कृत के विद्वान तो थे ही साथ म कुशल वद्य भी थे। उनके सुपुत्र अर्थात पाण्डुरग वामन काणे के पिता श्री वामनराव शकरराव न अपने पिता के लीक से हटकर वकालत करनी शुरू कर दी थी। स्कूल मे श्री वामनराव के समकालीन थ समाज सुधारक श्री धोधू केशव कर्वे और भारतीय खगोलशास्त्र की अनेक पुस्तका के लेखक श्री शकर बालकृष्ण दीक्षित। शिशु पाण्डुरग का जन्म उनकी ननिहाल मे हुआ था जो चिताली परिवार था। काणे और चिताली दोना

परिवारो मे वदिक शिक्षा का प्रचलन था। स्पष्ट है, बालक पाण्डुरग पर भी आरम्भ से ही सस्कृत शिक्षा पर जोर दिया गया। दापाली म ही शिक्षा आरम्भ की और वही के एस० पी० जी० हाई स्कूल म 1897 म मद्रिक परीक्षा पास की। समस्त प्रिजिडेंसी म उनका पच्चीसवा स्थान था।

आगे की शिक्षा के लिए उन्हे बम्बई जाना था किन्तु उन दिना बम्बइ मे प्लेग फली हुई थी। वह बम्बई जाना भी नही चाहत थे साथ मे शिक्षा की हानि भी उन्ह सहन नही थी। उन्हाने बम्बई स्थित विलसन कालेज के प्रधानाचाय डाक्टर मैकिकन को अपनी सारी समस्याओ और कठिनाइयो के साथ शिक्षा म व्यवधान न पडने की अपनी आकाक्षा से भी अवगत कराया और अनुरोध किया कि विलसन कालेज म प्रवेश कृपापूवक दे दिया जाए। और डॉक्टर मैक्किन ने तुरन्त उनकी प्राथना स्वीकार कर ली। उन्ह एक टम के लिए घर पर ही पढाई करते रहन की अनुमति द दी गई। परीक्षा आदि से सम्बन्धित अय समस्याओ को यथासमय विश्व विद्यालय से सुलझा लेन का आश्वासन भी दिया डाक्टर मैकिक्न न।

1901 म पाण्डुरग वामन काणे ने बी० ए० पास किया। तभी उन्ह भाऊ दाजी सस्कृत पुरस्कार भी प्रदान किया गया। बस, इसस पूव भी सस्कृत के कुशल छात्र होन के कारण उन्हे कई छात्रवृत्तिया मिली थी। बी० ए० कर लेन के पश्चात उन्हे विलसन कालेज म ही दो वर्षो के लिए दक्षिणा फलोशिप मिल गई जिसक सहारे उन्होन साथ साथ कानून भी पढ़ना शुरू कर दिया। 1902 म एल०एल०बी० की परीक्षा मे प्रथम श्रेणी म सफल घोषित हुए। अगले वप 1903 म सस्कृत व अग्रेजी म एम० ए० भी कर लिया और जाला वेदान्त पुरस्कार प्राप्त किया। उल्लेखनीय है कि उनके उक्त एम० ए० क परीक्षक थे श्री एम० एम० वासुदव शास्त्री अभयकर और डाक्टर आर० जी० भण्डारकर।

इतना कर लने के पश्चात श्री काणे का रत्नगिरि क एक हाई स्कूल म ही अध्यापकी करनी पडी। वकालत तो वह स्वय करना नही चाहत थे। अध्यापन काय क लिए उन्होंने स्वय डॉक्टर मक्किन से शिक्षा विभाग म उनके लिए सिफारिश करने के लिए अनुराध किया था।

क्या तुम चितपावन ब्राह्मण हो? डॉक्टर मक्किन ने पूछा।

जा हा" श्री काणे ने स्वीकारा।

डाक्टर चुप हो गए। गभीर चिन्ता व निराशा उनके चहरे पर छा गई। उन दिनो ब्रिटिश सरकार प्राय सभी चितपावनो के सम्बन्ध म अच्छे विचार न रखती थी क्योकि रानाडे, तिलक आदि सभी चितपावन थे जिन्होने देश के स्वतन्त्रता सग्राम म अपनी उग्र राजनीति स सरकार की नीद हराम कर दी थी। फिर भी डॉक्टर मकिकन के प्रयासो के बावजूद काणे को 60 रुपये प्रति माह के वेतन पर रत्नागिरि म अध्यापक की नौकरी मिल गई। वहां उन्ह कई विषय पढाने पडते थे। शिक्षा के क्षेत्र म जब श्री काणे पहुचे तो उन्होने 1905 म शिक्षा की परीक्षा दी और पूरी बम्बई प्रेसिडेन्सी मे प्रथम श्रेणी मे उत्तीण हुए। अगले वष विभागीय परीक्षा मे भी बठे और सफलता प्राप्त की। फलस्वरूप उन्ह शिक्षा विभाग ने सहायक शिक्षा निरीक्षक का पद दिया जिस उन्होने स्वीकार करने स इन्कार कर दिया क्योकि उन्ह अपने शोधकाय के लिए पर्याप्त समय न मिल पाता यदि वह उक्त पद स्वीकार कर लेते। रत्नागिरि हाईस्कूल म अध्यापन काय के साथ श्री काणे ने अलकार साहित्य के इतिहास पर शोधकाय किया और उसके लिए उन्हे व्ही० एन० माण्डलिक स्वणपदक प्रतिस्पर्धा म उनके सर्वोत्तम निबन्ध के लिए स्वण पदक प्रदान किया गया।

1907 मे श्री काणे बम्बई स्थित एलफिन्स्टन हाई स्कूल मे स्थानान्तरित कर दिए गए और वहा उन्ह सस्कृत का मुख्य अध्यापक नियुक्त किया गया। अनुसधान काय वहा भी जारी रहा। इस बार उनका विषय था प्राचीन भारतीय साहित्य जिसके शोध निबन्ध पर उन्ह व्ही० एन० माण्डलिक पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पुरस्कार का मुख्य विषय था, प्राचीन महाकाव्यो म आर्यों की रीतियां एव नतिकताए 1908 म श्री काणे ने एल० एल० बी० का दूसरा खण्ड भी पास कर लिया।

अगले वष एक टम के लिए प्रोफेसर एस० आर० भण्डारकर के रिक्त स्थान पर अध्यापन काय मिल गया। पूना की डैक्कन कालज म सस्कृत के एक प्राध्यापक के पद का सजन किया गया और श्री काणे के लिए सुझाव भी प्रस्तुत किया गया। श्री काणे उस पद के लिए सवथा उपयुक्त एव योग्य भी थे फिर भी उनकी उपेक्षा की गई जिसमे उनके आत्मसम्मान को

आघात पहुचा और उन्होंने चार वर्ष सेवा करने के पश्चात सरकारी नौकरी से 'राजीनामा (त्यागपत्र) दे दिया।

एल० एल० बी० वह पहले कर चुके थे परन्तु इतने से ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने हिन्दू व मुस्लिम कानून जैसे गहन विषयों को लेकर एल० एल० एम० पास किया।

श्री काणे का उनका खोया हुआ आत्मसम्मान पुनः प्राप्त हुआ जब बम्बई विश्वविद्यालय का ध्यान कानून में श्री काणे के अपार ज्ञान की ओर आकर्षित हुआ और उन्हें विश्वविद्यालय की ओर से अपार ज्ञान की विलसन भाषा विज्ञान भाषणमाला के अन्तर्गत भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया गया। विषय 'संस्कृति और सहयोगी भाषाएं' जिस पर उनके विद्वत्तापूर्ण भाषण से अधिकारी वर्ग अत्यन्त प्रभावित हुआ और उन्हें सौ रुपये प्रतिमास की दो वर्षों की स्प्रिंगर अनुसंधान छात्रवृत्ति प्रदान की गई, जब वह केवल तीस वर्ष के थे और यह बात है 1913 की, 1913 के अनुसंधान का विषय था 'महाराष्ट्र का प्राचीन भूगोल'। व्यापक अध्ययन के पश्चात उन्होंने उक्त विषय पर अपना शोधकार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। सम्भवतः उनके इसी शोधकार्य से प्रभावित होकर प्रोफेसर भण्डारकर के रोग ग्रस्त हो जाने के कारण उनके रिक्त स्थान पर श्री काणे को नियुक्त कर लिया गया उसी विलसन कॉलेज में जहां वह छात्र रह चुके थे। यह क्या कम गौरव की बात थी कि जिस विद्यालय में उन्होंने अध्ययन किया था उसी में उन्हें अध्यापन का कार्य मिला चाहे वह अवधि एक टर्म भर की ही क्यों न रही हो।

विलसन कालेज से निवृत्त होते ही उन्हें राजकीय कानून विद्यालय में कानून पढ़ाने का कार्य मिल गया जिसे उन्होंने छः वर्षों तक कुशलतापूर्वक किया।

फिर भी श्री काणे का संस्कृत के प्रति अनुराग लुप्त नहीं हुआ। उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन जारी रखा और साहित्यशास्त्र का शोध किया। अलंकार साहित्य का इतिहास नामक ग्रंथ के प्रथम संस्करण पर ही उन्हें पांच सौ रुपयों की नकद राशि प्राप्त हुई जिससे उन्होंने तुरन्त उच्च न्यायालय की सनद प्राप्त कर ली जो उन्हीं के शब्दों में सबसे

उत्तम व उचित पूंजी निवेश लगाने की प्रक्रिया थी" ताकि वह वकालत कर सकें। बस उनका प्रिय व्यसन रहा शोध एवं अध्ययन। कालान्तर में उन्होंने धर्मशास्त्र के इतिहास पर कार्य किया जो वास्तव में भारतीयवाद के अन्तर्गत अद्वितीय शोध ग्रंथ प्रमाणित हुआ है। धर्मशास्त्र के शोधकार्य का विचार भी उनके मन में एक रोचक घटना के कारण आया। जब वह धर्मशास्त्र का अध्ययन कर रहे थे तो उन्हें इस विषय के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के विचारों को भी पढ़ने का अवसर मिला और उन्होंने हर स्थान पर पाया कि पश्चिम के अधिकतर विद्वानों ने संस्कृति साहित्य के सम्बन्ध में न केवल तथ्यों को तोड़ा मरोड़ा है बल्कि कहीं कहीं तो वह धर्मशास्त्र अथवा संस्कृत साहित्य के प्रति अत्यन्त दुराग्रही भी हो गए हैं। अतः श्री काणे ने अपना राष्ट्रीय एवं धार्मिक कर्तव्य समझा कि संसार के समक्ष सही एवं सत्य तथ्यों को लाया जाए और पश्चिम द्वारा प्रसारित अथवा प्रचारित मिथ्यापूर्ण तथ्यों का निराकरण किया जाए। इस कार्य के लिए उन्होंने जर्मन एवं फ्रांसीसी भाषाओं को भी दक्षता से आत्मसात किया। तत्पश्चात संसार के सम्मुख धर्मशास्त्र के सम्बन्ध में सही तथ्यों को प्रस्तुत किया और पश्चिम की आंखों पर भ्रामक व मिथ्यात्मक प्रचार का पर्दा पड़ा हुआ था, उसे अपने पैने एवं तथ्यपूर्ण तर्कों से हटा दिया। इस प्रकार श्री काणे ने भारतीय धर्मशास्त्र का वास्तविक दृश्य अंतर्राष्ट्रीय मंच पर प्रस्तुत किया। श्री काणे के इस अद्वितीय एवं अविस्मरणीय सुकृत्य के लिए हमारे देश में उन्हें सदा याद किया जाएगा और आने वाली पीढ़ियां उनके प्रति कृतज्ञ रहेंगी।

वकालत में भी श्री काणे किसी से पीछे नहीं रहे। प्रत्येक मुकदमे में अपने पक्ष को सशक्त एवं युक्तिसंगत बनाने के लिए वह अत्यन्त गहन अध्ययन करते थे ताकि कहीं से भी कोई कसर न रह जाए। साथ ही आत्मसम्मान भी सदा सुरक्षित रखते थे। अपने साथी वकीलों से चाहे वह उनसे कनिष्ठ ही क्यों न हों, बहुत ही आत्मीयता का सम्बन्ध रखते थे। 'बार' में उनकी उपस्थिति सदा ही मनोरंजक और उत्साहवर्धक हुआ करती थी। बात बात पर शास्त्रीय ग्रंथों के श्लोकों की वर्षा होती और आत्मानुभव के पुष्प खिलते जिनके सौरभ से सभी विभोर हो जाते।

न्यायालय में न्यायाधीश के समक्ष भी उनका प्रत्येक तर्क ठोस आधार पर होता और उनकी बहस से न्यायालय में एक अनोखे सम्मान एवं गौरव का वातावरण सृजित हो जाता। एक बार किसी न्यायाधीश ने श्री काणे के किसी तर्क को एबसर्ड (अनर्थक) कह दिया। फिर क्या था उन्होंने तुरंत उत्तर दाग दिया कि मेरा यह तर्क प्रिवी कौंसिल (तत्कालीन देश का सर्वोच्च न्यायालय) की न्याय सम्बन्धी समिति द्वारा प्रदान किए गए निर्णय पर ही आधारित है श्रीमान ! साथ ही उक्त निर्णय की प्रतिलिपि भी विधिवत दिखा दी। फलस्वरूप न्यायाधीश निरुत्तर हो गया और उसे श्री काणे के पक्ष में निर्णय देने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प शेष नहीं रहा।

जहां तक हिन्दू कानून का सम्बन्ध है श्री काणे का कथन अथवा मत अंतिम और अधिकृत समझा जाता था। 1933 में सरकार ने पूना स्थित डैक्कन कालेज बन्द कर देने का निर्णय ले लिया। श्री काणे यद्यपि डक्कन कॉलेज के छात्र नहीं रहे थे फिर भी उनके हृदय में उसके प्रति अपार श्रद्धा एवं इज्जत थी क्योंकि वहां से ही तिलक और आग्रेकर जैसी महान विभूतियों का प्रादुर्भाव हुआ था—कॉलेज एक ट्रस्ट के अंतर्गत चलाया जाता था इसलिए उसे बन्द कर देने का अधिकार सरकार को था ही नहीं। श्री काणे कॉलेज के प्रायः सभी भूतपूर्व छात्रों से मिले और एक संगठन बनाया। श्री बी० जी० खेर जो बाद में बम्बई प्रान्त के शिक्षा मंत्री तथा कालांतर में मुख्यमंत्री भी हुए उस समय बम्बई में सोलिसिटर का कार्य करते थे, उन्होंने इस सम्बन्ध में सहायता दी। डा० एन० आर० जयकर ने भी सहयोग दिया और सबने एक साथ मिलकर न्यायालय में सरकार के विरुद्ध मुकदमा चला दिया। पूना के जिला न्यायाधीश ने कॉलेज बन्द करने पर रोक लगा दी तो सरकार ने बम्बई के उच्च न्यायालय में अपील कर दी। श्री काणे ने पूर्ववत कड़े परिश्रम के साथ सारा पक्ष दृढ़ और मजबूत बनाया। सुनवाई हुई और उच्च न्यायालय ने भी पूना के जिला न्यायालय के निर्णय का ही अनुमोदन किया। कालांतर में इसी डक्कन कालेज में ही सरकार ने एक शोध संस्थान भी स्थापित किया जो आज भी भाषाओं एवं भारतीय विद्याओं पर शोध कार्य कर रहा है।

उनकी विभिन्न शाखाओ मे उपर्युक्त विषय पर शोध काय किया जा रहा है। श्री काणे को सम्मान के रूप म डैकन कालेज के भूतपूव छात्र सघ का सम्मानित सदस्य भी बना लिया गया यद्यपि वह वहा के छात्र नही थे।

श्री काणे ने एक और मुकद्मा लडा था जो अत्यन्त रोचक और असाधारण था। किस्सा यो था कि पण्ढरपुर मे विठोवा मदिर के 'मठाधीश' पुजारी न भगवान विठोवा की प्रतिमा स्पश करन के लिए अमुण्डित विधवा को वर्जित कर दिया क्योकि धर्म के ठेकेदार उस पुजारी के मतानुसार उसका वह कृत्य 'धमशास्त्र के विरुद्ध' था। श्री काणे न जब यह सुना तो उस विधवा महिला की ओर से पुजारी के विरुद्ध न्यायालय मे एक याचिका प्रस्तुत कर दी। मुकदमा शुरू हुआ। धमशास्त्र क धुरधर पण्डित प्रत्यक पक्ष क साक्षी के रूप मे न्यायालय मे प्रस्तुत हुए। श्री काणे को स्वय धमशास्त्र पर अधिकार था। उन्होने पुजारी को चुनौती दी कि कोई भी व्यक्ति वेदो अथवा महाराष्ट्र मे इस प्रकार की घटना का उल्लेख कर द जब विधवाओ के अमुण्डित रहने पर रोक लगाई गयी हो। श्री काणे ने स्कन्ध पुराण के एक पद्य को उद्धरित किया जिसके अनुसार विधवाओ के मुण्डन के पक्ष मे उल्लेख नही था। धमशास्त्री जो पुजारी के पक्ष का दम भर रह थे श्री काणे के तर्कों के सम्मुख एक क्षण भी टिक न पाय। श्री काणे न अपने पक्ष म विद्वान साक्षियो को प्रस्तुत किया जिन्होने पुजारी के पक्ष की धज्जिया उडा दी। उन साक्षियो मे तो कुछ स्वय अमुण्डित विधवाए थी जिन्होने भगवान विठावा की प्रतिमा का स्पश ही नही किया था अपितु पूजन-अचन भी किया था। उल्लेखनीय है कि श्री काणे के पक्ष म मराठी साहित्यकार व समाज-सुधारक श्री हरिनारायण आप्टे ने भी अपने तक प्रस्तुत किए थ। कहने की आवश्यकता नही कि श्री काणे की मुवक्किल' उस अमुण्डित विधवा की विजय हुई और न्यायालय से उसे भगवान विठावा की प्रतिमा स्पश करने की विधिवत अनुमति मिल गयी।

ब्राह्मण सभा, बम्बई की सेवा उन्होने तन मन धन से की थी। बाईस वर्षों तक वह उसकी प्रबन्ध समिति के सदस्य रहे। दस वर्षों तक भी। तत्पश्चात सलाहकार सदस्य के रूप म काय किया। व - मि

की सदस्यता के समय उन्होंने प्रबन्ध समिति को समझाया, मनाया कि गणपति त्योहार के अवसर पर 'अछूतों' को भी आमन्त्रित किया जाए। श्री काणे का यह क्रांतिकारी एवं प्रगतिशील सुझाव निश्चित ही ब्राह्मण समाज के कट्टरपंथी पाखण्डी तत्वों को भड़काने वाला था, वह यह 'भ्रष्टाचार' और 'अत्याचार' कैसे सहन करता। श्री काणे को धमकियां मिलने लगी परन्तु वह शांति व धैर्य से अपने प्रस्ताव पर अडिग रहे। अन्त में पुलिस का संरक्षण लेना पड़ा और 'अछूतों' को उत्सव में सम्मिलित होने की अनुमति मिल गयी। पाखण्डवादी कट्टरपंथी ब्राह्मण ने न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। बम्बई उच्च न्यायालय में श्री काणे के विरुद्ध मुकदमा चला। रोचक बात तो यह है कि इस घटना विशेष की, कि पाखण्डी ब्राह्मणों के पक्ष में खड़े हुए थे मोहम्मद अली जिन्नाह, फिर भी बात बनी नहीं।

ब्राह्मण सभा की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए श्री काणे ने जी जान से प्रयत्न किया और घर घर जाकर धन एकत्रित किया।

बम्बई के मराठी ग्रन्थ संग्रहालय से भी श्री काणे का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। वह विनायक मण्डल के वर्षों तक अध्यक्ष रहे। ग्रन्थ संग्रहालय के लिए भी उन्होंने धन इकट्ठा किया और भवन के लिए भी प्रयत्नशील रहे। संग्रहालय के तो वह आजीवन सदस्य भी थे।

राजसभा में अपनी सदस्यता की अवधि में कई बार ऐसा अवसर आया जब उन्होंने सरकार के विरोध में ही आवाज उठाई। एक सरकारी विधेयक का विरोध करते हुए उन्होंने कहा था, जितना दण्ड क्रूर होगा, जुर्म (पाप) भी उतना ही क्रूर होता जाएगा। इसके अतिरिक्त भी श्री काणे ने एक अन्य अवसर पर गोद प्रथा के कानून के सम्बन्ध में सुझाव दिया था कि गोद लेने वाले और गोद लिये जाने वाली पुत्र की आयु में पर्याप्त अन्तर होना चाहिए नहीं तो उन्हें भय था कि इस प्रथा की आड़ में कानून का सहारा लेकर कदाचित कुछ लोग अनुचित लाभ उठा लेंगे। उदाहरणार्थ यदि कोई पच्चीस वर्षीय युवक किसी अट्ठारह वर्षीय युवती को अपनी दत्तक पुत्री

बना लेना है तो परिणाम अच्छे और मर्यादापूण निकलने की आशका कम होगी।

कड परिश्रम म विश्वास रखन वाले श्री काणे न सदा कम को प्रधान महत्व दिया। कम उनके लिए पूजा थी। न्यायाधीश रानाडे की भाति उन्होंन अपन बहुमूल्य' जीवन का एक क्षण भी व्यथ नही गवाया। पडित जवाहरलाल नहरू की तरह बुढाप मे भी प्रतिदिन 18 घण्टे काम किया करत थ। जब काई उनसे बात करता तो ऋग्वद की ऋचाओ से अलकृत उनकी भाषा भागीरथ से तप्त होकर लौटता। सभी आत्मीय जन उन्ह अदर स अन्ना साहेब सम्बोधित करत थे।

अन्ना साहेब (श्री काणे) विलक्षण बुद्धि एव अपार ज्ञान के भण्डार थे। काल मार्क्स कौटिल्य हो अथवा कीटस, नारद चाहे न्यूटन उनका अधिकार सभी पर समान था। बात-बात पर कि वशिष्ठ या वात्सायन उद्धरित करत।

आत्मसम्मान इतना कि अपने लिए किसी के सामने हाथ नही फलाया। चाहे वह व्यक्ति हो चाहे सरकार। तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री यशवत राव चव्हाण ने एक बार सुखद आश्चय के साथ अनुभव किया था कि उनसे श्री काणे का कभी भी सम्पक नही हुआ। श्री काणे ने सरकार से कभी भी कुछ नही चाहा—अपने लिए। शायद वह बम्बई विश्वविद्यालय के पहले (और अन्तिम भी) उपकुलपति थे जो अपने घर से कार्यालय ट्राम पर आते जात थे। सरकारी निमत्रणो पर भी जात तो अपनी ही किराये की गाडी पर।

अठारह पुस्तका, इक्कीस महत्वपूर्ण पत्रो (पेपस), पाच मराठी ग्रन्थो, उन्नीस स्फुट लेखो के रचयिता। 'भारत रत्न' से अलकृत अन्ना साहेब श्री पाण्डुरग वामन काणे ने जीवन भरपूर आनन्द और पवित्रता से जिया। आकाशवाणी पर प्रसारित होन वाले विशेष कायक्रमो को सुनने के लिए जब भी अवसर मिलता, आकाशवाणी के सभागार मे जाकर सुनत, देखते। वह वास्तव मे भारतीय सस्कृति क दिव्य दूत थे जिन्होंने अपने ज्ञान की

रश्मियो से समस्त ससार को आलोकित किया था।

औसत कद, गठीला किन्तु छरहरा शरीर, काश्मीरियो जसा गोरा रग चेहरा—न बिलकुल गोल, न लम्बा, पैनी आंखें और आखो पर लग कमानी की ऐनक लम्बी नाक, भरी भरी पर कतरी हुई मूछें, जिन पर किंचित मुस्कान से सुशोभित होठ, बन्द कालर का काला पारसी कोट और इस्तरी किया हुआ सिलवट विहीन पायजामा—थोडा छोटी मोरी का। पैरो म काले जूते और सिर पर पूना फैशन की गोखले टाइप पगडी और कधो पर सफेद उत्तरीय। कभी कभी धोती कमीज, किश्ती जसी काली टोपी और पैरो म कोल्हापुरी चप्पलें इतना सब यदि मिला दें तो जिस व्यक्ति की आकृति अथवा छवि आपके मानस पर उभरेगी वह निश्चित ही श्री काणे की छवि जैसी ही होगी।

बम्बई की विट्ठल भाई पटेल रोड पर स्थित आग्रेवाडी की सामने वाली चाल की दूसरी माला म किराये पर एक खण्ड पर एक कमरा—जो 'ड्राइगरूम' भी था और 'अध्ययन कक्ष' भी। दादर म निर्मित अपने भव्य बगले म रहने की अपेक्षा उन्होने अपनी उसी पुरानी चाल म रहते रहना पसन्द किया जहा से वह बिलकुल 'कुछ नही' से ऊपर उठे थे।

कोई उनसे मिलने जाता तो उसे श्री काणे की मधुर एव अभिवादन-मयी, किन्तु गम्भीर मुस्कान से स्वागत मिलता परन्तु ध्यान रहे, अन्दर आने से पहले उसे मुखद्वार बाकायदा बन्द करना होता था—यह सावधानी अनिवार्य थी। कमरे मे लगभग सभी ओर पुस्तको से सजी आलमारिया। एक ओर एक आलमारी म जिसे 'रैक' कहना उचित होगा एक खाने से झाकती हुई दिखाई देती थी मा सरस्वती की सुन्दर प्रतिमा—अपने वरद पुत्र का आशीर्वाद देती हुई सी। उन सबके बीच वह आधुनिक सत बैठा मिलता था निर्विघ्न अपनी तपस्या मे लीन नीचे सडक पर बम्बई परिवहन की घडघडाती बसो का निरन्तर शोर, बच्चो के खेलने से हो रहे शोर से भी निर्लिप्त। बच्चा के साथ तो वह स्वय बच्चा ही हो जाते थे। कैरम की बाजिया लग जाती थीं उनके साथ। कभी-कभी उन्हे कहानियां भी सुनाते, तब वह भूल जाते कि श्री पाण्डुरग वामन काणे, एम० ए०, एल० एल०

एम०, डी० लिट, विल्सन कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर, बम्बई विश्वविद्यालय क भूतपूर्व उपकुलपति, बम्बई न्यायालय तथा देश के सर्वोच्च न्यायालय के योग्य विधिवक्ता अथवा राजसभा के निर्भीक सासद, आदि आदि रह चुके हैं और उन्हे देश का सर्वोच्च अलकरण 'भारत रत्न' से सुशोभित भी किया जा चुका है। परन्तु नही, तब तो वह केवल बालक हो जाते थे—मात्र बालक।

श्री काणे का देहात उनकी बानवे वर्ष की आयु म 18 अप्रल, 1972 को हुआ।

लाल बहादुर शास्त्री—1966

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी ने एक बार कहा था "भारत म वह समय आएगा जबकि दरिद्रनारायण का प्रतीक कोई व्यक्ति देश समाज के सर्वोपरि पद पर सुशोभित होगा', और लाल बहादुर शास्त्री जसा (दरिद्र नारायण) व्यक्ति का भारत का प्रधानमंत्री बन जाना वास्तव म एक आश्चयजनक घटना थी क्योकि नेहरूजी के बाद विदेशो मे यह गुमान भी नही था कि कोइ गुटनिरपेक्ष नेता उनके रिक्त आसन पर बैठ सकेगा। कहा नेहरू का विशाल, आकपक और सवव्यापी व्यक्तित्व ! और कहा लालबहादुर शास्त्री का 'मामूली' अपना सब कुछ। इसी स्थिति को उजागर कर दिया था प्रसिद्ध व्यग्य चित्रकार लक्ष्मण ने—"एक बडी ऊची कुर्सी पर एक ऐसे व्यक्ति को बिठाकर जिसके पाव जमीन तक पहुचना तो दूर कुर्सी की आधी दूर भी बमुश्किल तमाम लटक रहे थे और वह व्यक्ति था पाच फीट क कद वाला लाल बहादुर शास्त्री। शायद उस समय वह सबसे ठिगने प्रधानमत्री थे। किन्तु नेपोलियन भी पाच फीट का ही था और लेनिन की भी ऊचाई पाच फीट की ही थी। आदमी का बडप्पन कद से नही दिमाग से नापा जाता है फिर नेहरूजी स्वय कौन से लम्बे थे। बादशाह खान की बगल म खडे हो जात तो बच्चे स लगते थे।

नेहरू के बाद कौन ?' का अकस्मात उत्तर बनकर प्रकट हो गय थ शास्त्रीजी। मटर्डे रिव्यू के सम्पादक श्री नामन कजिस न नहरू स प्रश्न किया था— जसे गाधीजी ने आपको अपने जीवन म ही अपना उत्तरा धिकारी चुन लिया था, क्या आपने भी ऐसा किया है ?'

तो नेहरूजी ने उत्तर दिया था—'इस देश की चालीस करोड़ जनता में अब अपना नेता चुनने की शक्ति है—मैं नही समझता कि हमारे देश की महान जनता अपना नेता चुनने में विफल हो जाएगी चुनाव गलत नही होगा।'

और चुनाव गलत नही हुआ।

लाल बहादुर शास्त्री का जन्म 2 अक्तूबर, 1904 को मुगलसराय में हुआ था। उनके पिता श्री शारदा प्रसाद श्रीवास्तव मध्यम श्रेणी के कायस्थ थे। वह शिक्षक थे मामूली जो बाद में उत्तर प्रदेश सरकार के राजस्व विभाग में क्लर्क हो गए थे। शिशु लाल बहादुर केवल डेढ़ वर्ष के ही थे कि पिता उन्हें बेसहारा छोड़ स्वर्ग सिधार गए थे।

माता श्रीमती राम दुलारी जी अपने पिता श्री हजारी लाल जी के यहाँ चली गईं। वहीं लाल बहादुर का लालन-पालन हुआ। उन्होंने छठी कक्षा तक यही अपनी ननिहाल में रहकर पढा। गाव में छठी कक्षा से अधिक प्रबन्ध न था तो उन्हें उनके मौसा श्री रघुनाथ प्रसाद जी के पास बनारस भेज दिया गया जहाँ हाई स्कूल तक पढ़ा। श्री रघुनाथ प्रसाद म्युनिसिपलिटी में हेड क्लर्क थे। वेतन कम था। जैसा उन दिनो रिवाज था। उसके विरुद्ध ऊपर की आमदनी के वह कायल नही थे, परिवार बडा था जिस पर लाल बहादुर और जुड गये थे पर उन्होंने कभी भी उफ नही की। उनके तप, त्याग और परिश्रम से बालक लाल बहादुर ने बहुत कुछ सीखा। संघर्षों के झंझावातो में पला यह चिराग बुझा नही क्योंकि उसे एक दिन पूरे देश को आलोकित करना था।

श्री लाल बहादुर शास्त्री एक मेधावी छात्र थे। हिसाब से जरा कतराते थे पर अंग्रेजी और इतिहास में तो वह सदा आगे रहे जब स्कूल का निरीक्षण होता तो लाल बहादुर से ही अंग्रेजी पढ़वायी जाती।

परन्तु आजादी की लडाई के प्रभाव से वह अछूते न रह सके। उन दिनो बनारस आए थे बाल गंगाधर तिलक। उस समय लाल बहादुर बनारस से पचास मील दूर थे। उनका जिज्ञासु मन तिलकजी के दर्शन करने तथा उनकी अमर वाणी सुनने के लिए 'जल बिन मछली' की तरह तड़प उठा। किसी प्रकार उन्होंने अपने मित्रो से पैसे उधार लिये और

पहुचे। फिर (1919 मे) दशन किए गाधीजी के। बनारस म ही हिंदू विश्वविद्यालय के भवन का शिलान्यास करने के अवसर पर मालवीयजी के विशेष अनुरोध पर गाधीजी पधारे थ। उस सभा म आए थे लाड हार्डिग भी जिन्ह शिलान्यास करना था। अध्यक्षता कर रहे थे महाराजा दरभगा। एसे पेचीदा व नाजुक मौके पर गाधीजी ने अपने भाषण म बम्ब की तरह घोषणा कर दी "राजाओ, नवाबो ! अपने हीरे (अलकार) बेच दो ताकि उसका धन दरिद्र नारायण के लिए उपयोग किया जा सके।' गाधीजी की स्पष्टवादिता और निर्भीकता पर लोग मुग्ध हो गए थे।

यह उनके जीवन म नया मोड था। हमेशा उनके कानो मे तिलक का महामन्त्र स्वतत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' और गाधीजी की सिंह गजना अपने हीरे बेच दो' गूजते रहते यह समय उनके लिए सघष का था। उनके सामने दो रास्ते थे। एक यह कि वह मन लगाकर पढें, अच्छे नम्बरो से पास हो जाए। स्कालरशिप मिलन पर आगे पढें और अपने परिवार को पालने के लिए नौकरी कर ले, छोटी मोटी नौकरी सरकारी दफ्तर म—और दूसरा रास्ता था कि जब परिवार की ही दख भाल करनी है और नौकरी करनी है तो भारत दश के चालीस करोड वाल परिवार की ही देखभाल क्यो न की जाए और जब सेवा (नौकरी) ही करनी है तो पूरे मुल्क की खिदमत क्या न करें।

पढाई की अवधि म जब लडके' को 'ब्रिगटत और काग्रेसियो क जलसा जुलूसो म जाते दखा तो सभी को चिन्ता हुई। उन्हे समझाया गया— बटा अपनी मा की ओर देखो जिसन इतनी मुसीबतें थेल कर तुम्ह इस योग्य बनाया कि तुम उसे आराम दोग ?" पर एक और मा भी है चालीस करोड जनता की मा—भारत मा की आर ही दखा उन्होंने और उनका मन आजादी के सघष म रमता चला गया।

नागपुर अधिवशन म सिविल नाफरमानी का प्रस्ताव पास हात हुए गान्धीजी उसमे जा मिले। उनके अध्यापक न समझाया, "तुम पढन म तज हा हाई स्कूल अच्छे नम्बरो स पास करना तुम्हार लिए काइ बडी बात नही है। स्कॉलरशिप भी मिल जाएगी। आग पढना और खूब नाम कमाना।' पर नाम क्या दश-सेवा करक नही कमाया जा सकता ?

शास्त्रीजी क तरुण मन म तक उठा और उन्हाने साफ कह दिया—"मुझे अपन दश के अलावा किसी चीज स प्यार नही रहा मैं जहा पहुच चुका हू वहा से पीछे हटना मरे लिए बहुत मुश्किल हो गया है।"

किन्तु उनके मन के एक कोने म चिन्ता अवश्य थी। अपने परिवार की थी। उनके बाल सखा श्री त्रिभुवन नारायण सिंह के अनुसार वह ज्यादातर अपना सारा काम खुद करते थे। यहा तक कि वह कभी-कभी अपना जूता तक स्वय गाठ लेत थे। कपडे धोना और सीना आदि तो मामूली बातें थी उनके लिए। हरिश्चन्द कॉलेज म पढते थे। सारे परिवार का बोझ उनके कन्धो पर था। परन्तु यह सब बोझ उन्हें अपने पथ से डिगा नही पा रहे थ। एक सघष जारी था, चिन्ताओ का, जिम्मदारियो का, कत्तव्यो का—सभी का भीषण सघष था। जिसम उनके भविष्य की नाव हिचकोले खा रही थी जबकि उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि 'नाफरमानी' म भाग अवश्य लेना है।

उन्ही दिनो उनकी नाव को मिला एक नाविक—डाक्टर भगवानदास। उन्होने सलाह दी कि वह 'काशी विद्यापीठ' म प्रवश पा लें। पढाई म बाधा भी नही पडेगी और स्वतन्त्रता सग्राम म भाग भी लेत रहेंगे। काशी विद्यापीठ उन दिनो दश भक्तो का गढ था। प्रिंसिपल स्वय डाक्टर भगवानदास थे और अध्यापको म थ आचाय नरेन्द्र, आचाय कृपलानी, श्री प्रकाश जी डाक्टर सम्पूर्णानन्द आदि।

काशी विद्यापीठ म रहकर लाल बहादुर की आत्मा तप्त हुई पूणत। वहा उन्होने रामकृष्ण परमहस, विवेकानन्द, तालस्तॉय, काल मार्क्स तथा लनिन के साहित्य का अध्ययन किया। वह चार वष लाल बहादुर शास्त्री के जीवन म अत्यन्त महत्त्वपूण थे। शास्त्रीजी रोज घर से छह-सात मील पैदल चलकर विद्यालय पहुचत थे।

शिक्षा समाप्त करके शास्त्रीजी सवप्रथम लोक सवक मण्डल म आ गए और बाकायदा राजनीतिक जीवन आरम्भ कर दिया उन्होने। अपने सहपाठी श्री अलगूराय शास्त्री के साथ मिलकर मुजफ्फरनगर म अछूतो-द्धार का काय शुरू किया। उनके इस साहसी काय न लाला ल
का ध्यान आकर्षित किया और उन्होने इस नये जन सेवक को

मण्डल का आजीवन सदस्य बना लिया।

साइमन कमीशन के सिलसिले में लालाजी 'पुलिस की लाठी' से घायल हुए और उसी में उनकी मृत्यु भी हुई। तब लोक सवक मंडल का कार्यालय लाहौर से इलाहाबाद आ गया था और अध्यक्षता संभाली थी राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने। शास्त्रीजी भी इलाहाबाद चले आए और दिन रात उसी काम में लग गए।

1927 में उनका विवाह हुआ। उस समय उनकी आयु 23 वर्ष और ललिताजी की 17 वर्ष की थी। शास्त्रीजी के शब्दों में वह बहुत अच्छी और गृहस्थ जीवन के सारे गुणों से सम्पूर्ण थी।

1930 से 1947 का समय। इलाहाबाद राजनीतिक हलचलों का प्रमुख केन्द्र बना हुआ था। नेहरू व टण्डनजी प्रमुख नेता थे। इन दोनों में कहीं कहीं मतभेद भी था। परन्तु शास्त्रीजी ने सदा ही दोनों के साथ काम किया और एक प्रकार का समन्वय बनाए रखा। उन्होंने इन दोनों महान पर्वतों के बीच की खाइयों को पाटा और सदा ही सेतु की भूमिका निभाई। 1930 में शास्त्रीजी जिला कांग्रेस के सचिव बने। तभी उन्होंने इलाहाबाद म्युनिसिपलिटी के सदस्य के रूप में भी काम किया। साथ ही इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के सदस्य भी रहे। उनकी निश्चल सेवा ने सभी का मन जीत लिया था। श्री मोतीलाल नेहरू तो उन्हें विशेष रूप से पसन्द करते थे और शास्त्रीजी का नेहरू परिवार में एक सदस्य की ही नाईं समावेश हो गया था।

सिद्धान्तों के पक्के शास्त्रीजी ने कभी किसी अनुचित बात पर झुकना नहीं जाना। उसमें चाहे उन्हें कितनी भी कड़ी अग्नि परीक्षा से क्यों न निकलना पड़ा हो। एक बार वह नैनी जेल में थे। उन्हें सूचना मिली तार से कि घर पर उनकी बेटी बीमार है। जेल अधिकारियों ने उन्हें एक शर्त पर पैरोल पर मुक्त करने को कहा कि वह जेल से छूटने के बाद वह किसी भी आन्दोलन में भाग नहीं लेंगे। परन्तु शर्त उन्हें स्वीकार नहीं थी। बेटी की तबीयत खराब होती जा रही थी और पिता जेल में किसी शर्त पर छूटकर बेटी को नहीं देखना चाहता था। अपने सिद्धान्तों पर एक बेटी तो क्या वह अपना सब कुर्बान कर देने को तैयार थे और अडिग चट्टान की

तरह अरस थे। अन्त म जेल अधिकारियो को ही झुकना पड़ा और उन्हें रिहा कर दिया गया। पर उस समय तक बहुत देर हो चुकी थी और बीमार बेटी अपने बहादुर दशभक्त पिता को अंतिम बार नही देख पाई किन्तु यह आघात उन्होंने भगवान शिव के गरलपान की तरह आत्मसात कर लिया।

दूसरी बार उनके जेल जीवन की अवधि म उनका पुत्र बीमार पडा। जेल अधिकारी यह जानते थे कि उनका कैदी किसी शर्त पर झुकेगा नही। उन्होंने उन्हें तुरत पैरोल पर छोड दिया। समय के पख लग गए और पैरोल की अवधि ऐसे गुजर गई जैसी वह पल ही जल्द स आए हो। उनका समय आ गया फिर से बद म जाने का जबकि पुत्र मुक्त नही हो पाया टाइफाइड म। परोल का समय बढाया जा सकता था यदि वह लिखकर आश्वासन दें कि वह किसी प्रकार के आन्दोलन सभा या जुलूस म भाग नही लेंगे। परन्तु यह तो हिमालय को नीचे झुकाने जसी बात थी।

बुखार 106^0 तक जा पहुचा था।

परोल का समय बढ सकता था यदि

नही हिमालय एक इच भी अपने स्थान स नही डिगा।

सास रुक रुककर आ रही थी।

मवकी गीली आंखें उस अडिग शिखर की ओर देख रही थी।

पैरोल की शर्त अब भी स्थिर थी।

और वह भी अपने सिद्धात से सूत बराबर नही हटे थे।

बच्चे के मुह स रुक रुककर निकल रहा था—बाबूजी मुझे छोडकर मत जाइए बाबूजी मत जाइए।

पैरोल की शर्त तब भी वसी ही कायम थी।

और शास्त्रीजी भी एक मजबूत चट्टान की तरह खडे थ।

बाबूजी मत जाइय

शर्त ?

नही शर्त के आगे झुकना नही है

बाबूजी

शर्त

देश

और दश जीत गया। शास्त्रीजी पुन जेल लौट गए। वह चट्टान वस ही डटी रही और 'बाबूजी मत जाइए' तथा पैरोल का समय बढ सकता है यदि ' की नहरे बार बार अपना सिर मारती रही शायद इन्ही सब कारणो मे नेहरू ने कहा था—"उच्चतम व्यक्तित्व वाले निरतर सजग और कठोर परिश्रमशील व्यक्ति का नाम है—लाल बहादुर शास्त्री।"

1936 के पश्चात शास्त्रीजी की गतिविधियो का केद्र लखनऊ हो गया और वह काग्रेस का काम अधिक निष्ठा और लगन से करन लगे। वस इलाहाबाद स ही प्रातीय विधान सभा के चुनाव म भाग लिया और भारी मत से विजय प्राप्त की। काग्रेस न विधान सभा मे पहुचते ही सबस पहला काम भूमि सुधार को हाथ म ले लिया।

परतु द्वितीय महायुद्ध छिड जाने से काग्रेस का अग्रेज सरकार से मत भेद हो गया और विधान सभाओ स काग्रेस ने हाथ खीच लिया जिसके फलस्वरूप भूमि सुधार पर इतने परिश्रम से तैयार की गई रिपाट का तुरत लाभ नही उठाया जा सका।

8 अगस्त 1942। भारत एक बार फिर (1857 के पश्चात) कमर कसकर और ताल ठोककर खडा हो गया। बम्बई मे काग्रेस अधिवशन म गाधीजी ने सीधे शब्दो म 'भारत छोडो' कहकर ब्रिटिश सरकार को लल कारा। फिर क्या था सारे देश म आग भडक उठी। सारे नता जेला म ठूस दिए गए। शास्त्रीजी बम्बई म गिरफ्तार नही किए जा सके। वह इलाहाबाद चल दिए। पुलिस भी चौकन्नी थी और उन्हे इलाहाबाद स्टशन पर पकड लेने की याजना बना ली गई परतु इसका आभास शास्त्रीजी को भी मिल गया और वह पुलिस को चकमा दकर नैनी पर ही उतर गये और भूमिगत हो गए। उनका विचार था कि जेल म वक्त खराब करने के बजाय बापू क महामत्र को गांव गांव म फूकना अधिक अच्छा हागा परन्तु जब काग्रेस की नीति ही यह थी कि कानून तोडकर गिरफ्तार कराओ तो शास्त्रीजी न भी अपना इरादा छोड दिया और उन्होने 20 अगस्त को इलाहाबाद के चौक म छाट भाषण के बाद स्वय को पकडवा लिया।

यह एक दुखनाथ था। एक मपन क्रान्ति जो रग लाई 1945 और

46 मे भारत को आजाद करने लिए अंग्रेजो को मजबूर हो जाना पड़ा और 1947 म 15 अगस्त के उगते सूय ने भारत को बन्धनमुक्त दखा।

1947 म रफी अहमद किदवई उत्तर प्रदेश स केन्द्रीय मन्त्रिमडल म बुला लिये गए तो प० गोविन्द बल्लभ पत ने शास्त्रीजी को पुलिस एव यातायात मत्री पद सौंप दिया। पुलिस विभाग की सर्वविदित गदगी और जोर जबरदस्ती को रोकन के लिए शास्त्रीजी न प्रान्तीय रक्षा दल की स्थापना की जो बाद मे साम्प्रदायिक दगो का दमन करने के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित हुआ। इसी प्रकार यातायात विभाग म भी अनेक सुधार किये और अपनी प्रशासनीय योग्यता का सबूत दिया।

एक बार वह आगरा गए। वहा उनके स्वागताथ पुलिस तथा अधिकारी स्टेशन पर आये हुए थे। जिस डिब्बे म शास्त्री जी बैठे थे वह प्लटफाम छोडकर जरा आगे रुका और शास्त्रीजी चुपचाप उतरकर तीसर दर्जे के गेट स बाहर जान लगे कि तभी एक सिपाही ने बहुत रोब से उन्ह एक ओर ठेलत हुए कहा, "हटो एक तरफ, मालूम नही ? आज हमारे पुलिस मन्त्री आये हैं।"

केन्द्र मे रेल मन्त्री बने तो उन्होने रेलो के सुधार के लिए रेलवे उपभोक्ता सलाहकार समितियो का गठन करके प्रजातन्त्र की ओर अनुकरणीय कदम उठाया और रेल भाडे के पूरे ढाचे का अध्ययन करने के लिए रामस्वामी मुदालियर समिति का निर्माण किया।

और महबूब नगर (आध्र प्रदेश) की प्रसिद्ध और भयानक रेल दुघटना का सारा दायित्व अपने सिर आढकर मत्री पद से त्यागकर दे दिया और अनोखी मिसाल कायम की। जबकि स्पष्ट है कि रेल दुघटना का दायित्व मत्री पर होने का कोई तक नही था परन्तु इस घटना स साफ प्रगट हो गया कि शास्त्रीजी न कभी भी कुर्सी की चिन्ता नही की।

श्री टी० टी० कृष्णमाचारी द्वारा त्यागपत्र देने के पश्चात मत्रिमण्डल के फेरबदल के अन्तगत शास्त्रीजी को वाणिज्य एव उद्योग मत्रालय सौंप दिया गया था। इसी काल म उन पर दिल का दौरा पडा था।

गृहमत्री के पद पर शास्त्रीजी के कुछ काम अत्यन्त प्रसिद्ध है। पहला असम राज्य मे बगाली व असमी भाषाओ का विवाद और उसको लेकर

दग की जटिल समस्या का समाधान निकाला और एक फार्मूला दिया जिससे बगाली व असमिया दोनो सन्तुष्ट हो गये। इसी प्रकार पजाब म अकालियो की गडबड ठीक की। अपनी योग्यता की धाक तो तब जमा ली शास्त्रीजी न जब काश्मीर म पवित्र 'हजरत बाल' गुम हो जाने स सारा काश्मीर राजनीतिक दगा के कारण खून की होली स रग गया और नेहरूजी न इस पचीदा गुत्थी सुलझाने का कठिन काय शास्त्रीजी को सौंप दिया। शास्त्रीजी काश्मीर गये और अपनी प्रशासन योग्यता, कुशाग्र बुद्धि तथा कुशल कूटनीति स समस्या सुलझा ली। परमात्मा न भी उन पर कृपा की कि हजरत बाल मिल गये और दगे खतम हो गये। तब स नेहरूजी का अटूट विश्वास पा लिया शास्त्रीजी न और फिर भुवनेश्वर काग्रेस से तो नेहरूजी का प्राय सारा काम शास्त्रीजी ही देखने लगे।

नेहरूजी के निधन के पश्चात् 9 जून, 1964 को शास्त्रीजी छोटे कद के मामूली दिखने वाले आदमी को भारत जसे महान देश के प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बिठा दिया गया।

प्रधानमंत्री की हैसियत से शास्त्रीजी ने युगोस्लाविया की यात्रा की और राष्ट्रपति मार्शल टीटो से भेंट कर उन्ह विश्वास दिलाया कि नेहरूजी के पश्चात भी तटस्थ राष्ट्रो का सगठन कमजोर नहीं होने दिया जाएगा। फिर अक्तूबर म वह काहिरा गये जहा प्रसिद्ध है कि उनके सम्मान म राष्ट्रपति नासिर द्वारा दिय गये भोज के पश्चात उन्होने होटल मे स्वय खाना पकाकर खाया था क्योकि उक्त भोज पूर्ण रूप से सामिष था जबकि शास्त्रीजी जन्म से शाकाहारी थे। काहिरा म ही उन्होंन विश्व शांति के लिए पाच सूत्री कायक्रम प्रस्तुत किया था।

12 अक्तूबर को कराची म पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खा से भी मिले।

अप्रल 1965 म भारत नेपाल मित्रता बढाने के लिए नेपाल की सदभावना यात्रा की।

12 मई 1965 के भारत रूस क सम्बन्धो को और दृढ करने के लिए रूस की यात्रा की।

10 जून को कनाडा गये।

17 जून को राष्ट्र मण्डलीय सम्मेलन में भाग लेने लन्दन पहुंचे। वापसी में काहिरा दुबारा गये।

किन्तु हमेशा की तरह भारत का यह शान्ति अभियान पाकिस्तान व चीन को नहीं सुहाया। शास्त्रीजी जब नेपाल गये हुए थे, पाक सेनाओं ने कच्छ के 25 मील लम्बे मार्ग पर छह मील अन्दर घुसकर अपने पूरे ब्रिगेड के साथ हमला कर दिया। युद्ध छिड़ जाने के लिए यह घुसपैठ काफी थी परन्तु महान देश के महान प्रधानमन्त्री की भूमिका सम्पूर्ण परम्परा, गौरव तथा धैर्य से निभायी गई और समझौता वार्ता की पेशकश की। इसी को लेकर लोकसभा में विरोधी पक्ष को उत्तर भी दिया—"प्रतिपक्ष के कुछ सदस्य देश की प्रतिष्ठा के लिए सबसे अधिक चिंतित दिखाई दे रहे हैं—यह बात हम नहीं मान सकते। पर सरकार (देश) चलाने की जिम्मेदारी हम पर है। हमें भी पता है कि देश की इज्जत किसमें है।"

और 30 जून '65 को समझौता हुआ। दोनों देश एक-दूसरे पर हमला नहीं करेंगे और भारत का जो क्षेत्र पाकिस्तान ने हड़प लिया, उसे वापस करना पड़ा।

परन्तु युद्ध स्थायी रूप से टल नहीं पाया। इस बार काश्मीर की वादियों में घुसपैठियों को भेजकर पाकिस्तान ने गड़बड़ी फिर शुरू कर दी। पहली सितम्बर को बाकायदा छम्ब क्षेत्र पर जबरदस्त आक्रमण कर दिया जिसमें अमरीका के पैटन टैंकों का पाकिस्तान की फौजों में उपयोग किया गया था। 5 सितम्बर को अमृतसर पर हवाई हमला कर दिया। अब भारत के लिए बचने का मात्र एक ही रास्ता था कि पाकिस्तान के विरुद्ध नये मार्चे खोलकर उसकी सैनिक शक्ति बांट दी जाए। शास्त्रीजी ने हमारे सेनाध्यक्षों को खुली छुट्टी दे दी, "सैनिक दृष्टि से जो भी उचित हो कीजिये"

फिर क्या था, हमारे जवानों को और क्या चाहिए था, अभी तक जितनी भी मुठभेड़ हुई थीं, उनमें राजनीतिक अथवा कुछ सैद्धान्तिक कारणों से उनके हाथ बंधे-बंधे ही रह थे। अपने हौंसले और अरमान निकालने का अवसर नहीं मिल पाया था उन्हें। परन्तु इस बार तो युद्ध का खुला आकाश उनके सामने फैला दिया गया था। युद्ध स्थल पर जवानों और खेतों में

किसानो को बराबर का सम्मान दिया गया था इस बार। शास्त्रीजी ने नया नारा बुलन्द किया 'जय जवान, जय किसान'। और बहादुर जवानों ने हाजी पीर (पाकिस्तान) पर ही जाकर राष्ट्रीय तिरंगा फहरा कर ही दम लिया। लाहौर उनके हाथों मे था

पाकिस्तान का युद्ध का मजा पूरी तरह से चखाकर शास्त्रीजी ने पश्चिमी शक्तियों को पूरा एहसास करा दिया कि भारत जहां शान्ति और अहिंसा का प्रचार करता है वहां तलवार भी उठा सकता है। जब यह भय होने लगा कि पाकिस्तान का चिह्न भी मिट जाएगा तब सन्धिवार्ता की कोशिशें की जाने लगी।

हमने तो लड़ाई चाही नही थी। वह तो हम पर जबरदस्ती थोपी गई थी। 14 सितम्बर को युद्ध बन्द कर दिया गया और स्थायी शान्ति के लिए रूस के आयोजन पर ताशकन्द मे शास्त्रीजी व अयूब खां से सन्धि वार्ता शुरू हुई।

परन्तु यह कीर्तिमान शास्त्रीजी के जीवन मे अन्तिम सिद्ध हुआ। जब समझौता पूरा हो गया और वह दूसरे दिन काबुल मे बादशाह खां से मिलते हुए भारत आने वाले थे। जब तक सन्धिपत्र पर हस्ताक्षरों की रोशनाई सूखी भी नही थी कि शास्त्रीजी के हृदय ने जवाब दे दिया।

और 11 जनवरी को भारत का यह नन्हा सा मामूली दिखने वाला, धोती पहनने वाला प्रधानमंत्री विजय घाट की मिट्टी मे समा गया। समस्त देश ने आंसुओं से डूबी हुई श्रद्धांजलि अर्पित की।

फिर सम्मानित किया लाल बहादुर शास्त्री को मरणोपरान्त 'भारत-रत्न' के सर्वोच्च अलंकरण से।

श्रीमती इन्दिरा गांधी—1972

भारत की नई आशा को मेरा प्यार लिखकर भेजा था भारत-कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू ने पंडित जवाहरलाल नेहरू को, जब उनकी प्यारी पाउण्ड की बेटी प्रियदर्शनी का जन्म हुआ था 19 नवम्बर 1917 को। कौन जानता था कि भारत-कोकिला का प्यार भरा आशीर्वाद भविष्य में एक दिन शत प्रतिशत सत्य साबित होगा और इंदिराजी वास्तव में भारत की आशा-आत्मा का ही रूप धारण कर लेंगी।

एक थी जोन ऑफ आर्क' एक साधारण गडरिये की बेटी। उन दिनों उसके देश पर शत्रुओं ने आक्रमण किया हुआ था और भीषण युद्ध चल रहा था। शत्रु प्रबल था और उसके देश के राजा का प्रत्येक प्रयत्न अपने देश की सुरक्षा का विफल होता जा रहा था। पराजय और उसके पश्चात परतन्त्रता प्रचण्ड बवण्डर की भांति उसके देश-द्वार पर दस्तक देने लगी थी। सब ओर निराशा और अकर्मण्यता का वातावरण बनता जा रहा था कि तभी उस लड़की (जान) ने स्वप्न में देखा कि 'उसने अपने देश की सेना का नेतृत्व सम्भालकर शत्रुओं के दांत खट्टे कर दिये हैं और देश को पराजय और परतन्त्रता की तबाही से बचा लिया है।" प्रातः वह जागी तो तुरन्त उसने अपना स्वप्न अपने मां बाप को सुनाया और अनुरोध किया कि वे उसे राजा के पास ले चलें। बहुत मनाने पर भी जब जोन नहीं मानी तो उसे किसी न किसी प्रकार राजा के समक्ष प्रस्तुत करने की व्यवस्था की गई। जान ने राजा से भी प्रार्थना की। राजा अपनी सेना का नेतृत्व जान को सौंप दें। जोन शत्रुओं को निश्चित पराजित कर देगी और देश को

परत त्रता से बचा लगी। राजा गया, सभी मन्त्रिया तथा सनाध्यक्षा का जोन की उस हवाइ योजना पर हसी आइ और बचपना समझकर टाल दना चाहा। परन्तु जान का अनुराध और आग्रह जिद में बदलता चला गया। सभी को उस भाली बच्ची की जिद पर तरस आया और साथ ही उसक स्वदश प्रेम की प्रशसा भी की परन्तु सना का नतत्व? वह भी उस नाजुक स्थिति म? प्रश्न ही नही उठता था, कि दश क साथ किसी भी प्रकार का खिलवाड किया जाए। परन्तु जान थी कि अपनी जिद पर अटल, एक अडिग चट्टान की भाति। अन्त म राजा न मन्त्रिया स मन्त्रणा की, 'पराजय ता निश्चित है ही इस भाली लडकी का उत्साह क्यो ताडा जाए' और जोन आफ आव को उस दिन—शायद अन्तिम दिन के लिए सना का नतत्व सौप दिया गया।

'जोन आफ आर्क' न वास्तव म शत्रुआ का दश स बाहर खदड दिया और अपन देश का परतन्त्रता क चगुल स बचा लिया।

जान आफ आर्क' की उत्साह एव वीरतापूण कहानी बालिका इदिरा न भी पढी। एक स्फूर्ति और कुछ कर गुजरन' की लालासा स उसका नहा मन भर गया। उन दिना हमारे दश म भी ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता का सग्राम चल रहा था। उनक पिता, पितामह एव पूरा परिवार स्वतन्त्रता आदोलन म सम्पूण रूप स डूबा हुआ था। इलाहाबाद स्थित उनका निवास-स्थान आन द भवन दश के मुक्ति आदोलन का केन्द्र माना जाता था। पडित मोतीलाल नहरू नामी वकील थे और वकालत म उन्होने कीर्ति व एश्वय दोना अजित किय थ। बेताज बादशाह की तरह थे वह। परन्तु स्वतन्त्रता सघष के कारण सार एश्वय को तिला जलि दकर सादा जीवन बिताने का प्रण कर लिया था उन्होंने। वह विधान सभा के सदस्य भी थे। उन्होन उस भी छाड दिया। अपनी बेटी कृष्णा का स्कूल स हटा लिया। गाडिया मूल्यवान चायना ऩाकरी, शराब का 'खजाना, घाडे कुत्ते—सब हटा दिय। नौकरो का भी कम कर दिया। बशकीमती रेशमी व किमखाब, मलमल और तनजब, जार्जेट व जरी का जगह हाथ क कत व बुन माट खद्दर न ल ली। विदशी वस्तुआ को जला दिया गया। उनके सुपुत्र श्री जवाहरलाल नहरू भी उसी रग म रग हुए थ।

विलायत मे जब वह बरिस्ट्री का अध्ययन कर रहे थे तभी से साम्राज्यवाद के विरुद्ध ज्वाला भभक रही थी उनके मन मे। ससार मे समाजवाद का नया सूर्योदय हो रहा था और उसकी रश्मियो से युवक जवाहरलाल नेहरू अपने विद्यार्थी जीवन मे ही अनभिज्ञ नही थे। स्वदेश मे परिस्थितिया नई करवट ले रही थी। स्वदेश लौटते ही वह भी मैदान मे आ गये और इस मुक्ति आन्दोलन मे शनै शनै सारा नेहरू परिवार सक्रियता से भाग लेने लगा। उनका आनन्द भवन और उसके समीप ही स्वराज भवन जो पहले आनन्द भवन ही था और जिसे पडित मोतीलाल नेहरू ने काग्रेस को दे दिया था और एक छोटा भवन बनवाकर आनन्द भवन नाम दे दिया था जो भारतीय क्रान्ति का केन्द्र माना जाने लगा था।

विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार, विदेशी कपडो की होलिया, शराब की दुकानो पर धरने। सभाए जुलूस और जलसे बडे बडे नेताओ की बठकें आनन्द भवन मे। जेल यात्राए और जेलो मे यातनाए इस प्रकार के सघषपूर्ण रोमाचकारी वातावरण से बालिका इदिरा अभ्यस्त होती जा रही थी। नित नई चुनौती उनके सामने मूर्तिमान होती थी और 'जोन आफ आर्क' उनके नन्हे से मानस पर पूणत छाती जा रही थी। उनका बालसुलभ मन उस बहादुर लडकी के अद्भुत शौय से बिलकुल ओतप्रोत हो गया था एक दिन उन्होने अपने पिता पण्डित जवाहरलाल नेहरू से पूछ ही तो लिया— 'क्या वह स्वय 'जोन आफ आर्क' नही बन सकती ?''

'क्यो नही', पिता ने अपनी नन्ही बेटी मे भारत का भविष्य झाकते हुए कहा था, और भारत की 'जोन ऑफ आर्क' ने 1971 मे अपने देश(की सेना) का नेतत्व किया तथा उस सपने की तरह ही शत्रुओ के दात खट्टे ही नही किये बल्कि तोड भी दिये। दो राष्ट्रो के सिद्धात को सदा के लिए झूठा प्रमाणित कर दिया जिसके आधार पर भारत का विभाजन किया गया था। क्या यह उन सभी सिरफिरो की करारी हार नही थी ? जिन्होने अपने निहित स्वार्थों और झूठे अभिमान के थोथे उसूलो पर देश के टुकडे करवा कर ही दम लिया था जिसके परिणामस्वरूप ससार मे सबसे बडी आबादी का परिवतन और विनाश हुआ। भारत के टुकडे करने वाले के 'स्वप्न' को श्रीमती इन्दिरा गाधी ने चूर चूर कर दिया और एक नये राष्ट्र का

उदय हुआ—बागला दश का स्वर्णिम उदय।

और दश ने अपनी इस निर्भीक 'जोन ऑफ आर्क' को अपने सर्वश्रेष्ठ अलकरण—'भारत रत्न' स सम्मानित कर उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

इदिराजी का यह निर्भीक तेवर उनकी बाल्यावस्था स ही दिखाई दन लगा था। आनन्द भवन म पास पडोस के अपनी हमउम्र के बच्चे वह इकट्ठा कर लेती और उस छोटी सी बाल सभा म भाषण देती। कभी कभी उनक इस बाल अभिनय' का उनके मा बाप दख लत तो वह बाल सुलभ स्वभाव के कारण शरमा जाती, किंतु वह छोटी सी बाल सभा तब से लगभग चालीस पचास वष पश्चात एक विराट सभा म बदल गई जा एतिहासिक लाल किले की प्राचीर से ललकारती हुई अपनी उसी नता को सुन रही थी और उस ललकारती ज्वालामुखी के माता पिता दोनो स्वग म निहार रहे होग अपने गद्गद मन से।

बारह वष की बाल्यावस्था मे उन्होने 'वानर सेना' का सगठन किया था जो उन्ही के नेतत्व मे राष्ट्रीय आदोलन म अपनी 'तुच्छ' फिर भी विशष और लाभप्रद भूमिका अदा करती रही, होनहार बिरवान के होत चीकने पात।'

उन्ही दिनो की एक घटना—उन्ही के शब्दो मे, मेरी पहली तकरार मरे पिता से ही हो गई जब मैं बच्ची थी, हमारे ही मकान म विदेशी कपडा की होली जलाने का आयोजन किया जा रहा था। ऐसे अद्वितीय अवसर पर मुझसे कहा गया कि मैं जाकर सो जाऊ, मैंने अनुरोध किया कि मैं भी देखूगी।' पर मुझे मना कर दिया गया और चुपचाप सो जाने का आदेश मिला। किन्तु मैं सोई नही। बल्कि सीधे अपन दादाजी के पास चली गई। उन्हे सारी बात बता दी। और उन्होन वायदा किया कि वे मुझे 'होली' दिखलाने अवश्य ले जायेंग। शायद पण्डित मोतीलाल नहरू न बालिका इन्दिरा मे उनके चट्टानी इरादे को भलीभाति भाप लिया था। एक ज्वाला देखी थी जो वे स्वय अपने अन्दर अनुभव कर रहे थे

स्वतन्त्रता आंदोलन मे सारा नहरू परिवार उलझा रहने के कारण बालिका इन्दिरा म रिक्तता सी आ गई थी। सदा वह अपने को अकेला-अकेला पाती और अपरोक्ष म मन उदासी स भर जाता। यद्यपि उनके

माता पिता, दादा दादी सदा प्रयत्न करते कि उनके परिवार की मात्र मनोरंजन में रहे फिर भी व सभी आन्दोलन और जल यात्राओं के कारण विवश थे। इसी कारण इन्दिरा जी की शिक्षा में व्यवस्थित रूप से तारतम्यता नहीं आ पाई। शुरू शुरू में वह दिल्ली के एक किंडर गार्टन में आ गई फिर इलाहाबाद के एक माडर्न स्कूल में पढ़ी—सात वर्ष की आयु तक पहुंचने से पूर्व ही माडर्न स्कूल से हटा ली गई और तीन यूरोपियन महिलाओं द्वारा चलाये जाने वाले एक प्राइवेट स्कूल में भेज दिया गया। यद्यपि पिता प० जवाहरलाल नेहरू को पसन्द नहीं था। तभी कुछ समय पश्चात वह अपने माता पिता के साथ स्विटजरलैंड चली गई जहाँ उन्होंने एक के बाद दूसरे—दो स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की, साथ ही स्केट' और 'स्की' भी सीखा। विश्व प्रसिद्ध विचारक विद्वान श्री रोमा रोला से भी भेंट की। जब उनके पिता रोला से बात करते थे तब वह मौन बैठी उन दोनों विद्वानों को सुनती थी। केवल—एक अद्भुत समागम और संयोग था वह।

स्वदेश लौटने के पश्चात गांधीजी के सुझाव पर उन्हें पूना के एक 'प्यूपिल्स आन स्कूल' में भरती कर दिया। 1934 में बम्बई विश्वविद्यालय से इन्दिरा जी ने मैट्रिक परीक्षा पास कर ली। कॉलिज भेजे जाने के पक्ष में पिता जवाहरलाल नहीं थे क्योंकि कॉलिजों में व्याप्त राजकीय दबाव और एकाधिकार से भरा वातावरण उन्हें रुचिकर नहीं था। उनका विचार था कि ऐसे दबे दबे वातावरण में बच्चों का मानसिक विकास कुण्ठित हो जाता है अतः उन्होंने अपनी बेटी को गुरुदेव के संरक्षण में शान्ति निकेतन भेजना ज्यादा पसन्द किया।

शान्ति निकेतन में गाया जाने वाला गुरुदेव का समूह गीत इन्दिराजी को बहुत अच्छा लगा—

तुमी एकला चलो रे '

क्या यह सत्य नहीं है कि इसी गीत ने इन्दिरा जी के जीवन पथ को एक विशेष दिशा दी है। 1969 में राष्ट्रपति चुनाव के लिए कांग्रेसी उम्मीदवार के विवाद को लेकर कांग्रेस में उत्पन्न हुए मन मुटाव के समय कांग्रेस का प्रतिक्रियावादी पक्ष बिलकुल बेनकाब होकर सामने आ गया

इन्दिराजी अकेली पड गई थी। तब वह गीत उनके मन प्राण में आन्दोलित हुआ और वह नय उत्साह व नई स्फूर्ति स अपन प्रगतिशील सिद्धांता क साथ अखण्ड शिला की भाति खडी हो गई उस समय वह अकेली थी, परन्तु जब वह जान ऑफ आर्क' की तरह आगे बढी, तब उन्होने देखा, सारा देश उनके पीछे था। माना कोटि कोटि कण्ठ एक साथ फूट पड हो के बोल, "मा तुमी अकेले ?" 1971 में सावजनिक देशव्यापी चुनावो में इन्दिरा जी को राष्ट्रीय ससद में भारी बहुमत मिला, साथ ही राज्य सरकारो में भी उनका ही पक्ष विजयी रहा। फिर आया युद्ध ! भारत पर जबदस्ती थोपा गया युद्ध इस समय भी इट का जवाब पत्थर स देकर शत्रुओ के छक्के छुडा दिए भारत की इसी 'जोन ऑफ आर्क' ने शान्ति निकेतन की सीधी सादी शर्मीली लडकी सम्पूण रूप स रणचण्डी बनकर ललकार रही थी।

कमलाजी का स्वास्थ्य बिगडता जा रहा था, ऐसी अवस्था में मा से बेटी का अलग रहना सम्भव नही हो सका। एक तार द्वारा गुरुदेव स अनुरोध किया गया कि इन्दु को छुट्टी पर घर आने और मा के साथ विदेश जाने की आज्ञा दी जाय। रोगग्रस्त कमलाजी के साथ इन्दिराजी को यूरोप जाना पड गया वहा भी मा की सेवा के साथ साथ उन्होने पढाई जारी रखने का प्रयास किया। उन्होने कैम्ब्रिज में प्रवेश ले लिया। वह पढती थी और जब उनकी आवश्यकता पडती या उन्ह अवकाश मिलता वह स्विटजरलैड आकर अपनी मम्मी से जा मिलती— परन्तु मज बढता ही गया उनकी सेवा उपचार में किसी बात की कमी नही थी। अच्छे से अच्छा डाक्टर, अच्छे से अच्छा इलाज दवा दारू। परन्तु मृत्यु के ठण्ड और काले साये स कोई भी मुक्त नही हो सका और सब कुछ गवाकर खाली हाथ लौट आये बाप और बेटी स्वदेश ।

उनके इलाज के दिनो मे ही सेवा करने वालो मे एक पारसी युवक था फीरोज जो एक नौसेना अधिकारी का बेटा था और अपनी मौसी इलाहाबाद के सामाजिक क्षेत्रो में जाना पहचानी प्रसिद्ध डाक्टर समाज सेविका तथा रायल कालेज आफ सज स के साथ रहता था और उस समय लण्डन स्कूल ऑफ इकनामिक्स में पढता था इन्दिराजी ही की तरह वह भी जब

अवकाश मिलता था कमला जी का रोग अधिक बढ़ जाता तो लन्दन से स्विटजरलैंड आ जाता। कमलाजी को फीरोज बहुत पसन्द आए। मन के एक कोने में सोचा भी फीरोज को अपना बना लेने के सम्बन्ध में। (शायद) एक-आध बार चर्चा भी की होगी अपने पति से।

इसी कारण 26 मार्च 1942 को राम जन्म दिवस के शुभ अवसर पर इन्दिराजी का पाणिग्रहण संस्कार श्री फीरोज गांधी से सम्पन्न किया गया इलाहाबाद में। वैसे तो इस अंतर्जातीय विवाह का विरोध तो हुआ—विशेष रूप से पुरातन पंथी कश्मीरी ब्राह्मणों में फिर भी विवाह सहर्ष और साधारण तरीके से सम्पन्न हो गया। 'हरिजन' के द्वारा गांधीजी का समर्थन पूर्ण आशीर्वाद के साथ सभी देश के सभी धर्म निरपेक्ष प्रगतिशील विचारकों की शुभकामनाएं प्राप्त हुई, दोनों परिवारों के सदस्य आनन्द भवन में उस दिन एकत्रित हुए। पुष्पों से अलंकृत वधू इन्दिरा अपने पिता के हाथों कते सूत की साड़ी पहने विवाह वेदी पर बैठी। वह सूत पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने एक वर्ष के जेल प्रवास में काता था। वर फीरोज ने भी हाथ के कते सूत की बनी शेरवानी और पायजामा पहना था। सिर पर लगाई थी धवल गांधी टोपी और गले में थी पुष्पों की माला। 'कन्यादान' करते समय बार-बार पिता समीप ही एक कमरे की ओर देखते जा रहे थे जहां कमलाजी की पवित्र अस्थियां एक कलश में संजोई हुई रखी थी। वैसे सम्पूर्ण समारोह उनकी पावन स्मृति से सुरभित अवश्य था और उनके अनंत और अदृश्य आशीर्वाद से सुवासित ।

बम्बई में 9 अगस्त, 1942 कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का क्रांतिकारी प्रस्ताव पारित किया कि तभी सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और अज्ञात स्थानों पर भेज दिया गया। नेता विहीन जनता महात्मा गांधी के 'करो या मरो' के महामन्त्र का आधार बनाकर ही बौखला उठी। सारा देश जान हथेली पर रखकर अपने गौरांग प्रभुओं से जूझ गया था। जो नेता बम्बई में गिरफ्तार नहीं हो पाए थे उनमें से कुछों को तो कहीं-न-कहीं पकड़ लिया गया था और कुछ भूमिगत होकर मुक्ति आन्दोलन को सही दिशा देने में लगे हुए थे। फीरोज गांधी ने भी भूमिगत रहना ही उचित समझा था।

इन्दिराजी भी गिरफ्तार होना नही चाहती थी ताकि भूमिगत कार्यकर्ताओं को हर प्रकार की सूचना व सहायता पहुंचाने में वह अपने पति का सहयोग देती रहे। इसीलिए वह आनन्द भवन से निकलकर किसी अनजान स्थान पर रहने लगी थी।

यद्यपि यह बात गुप्त ही रखी गई थी और मुंह दर मुंह ही प्रचार किया गया था कि उस सांझ पांच बजे इलाहाबाद में उस सिनमा के सामने एक सभा को सम्बोधित करेंगी जवाहरलाल नेहरू की युवा बेटी इंदिरा। सिनमा का मैटनी शो छूटने से जरा भीड़ बढ़ गई थी कि तभी उसी भीड़ में एक दुबली पतली लड़की उठकर खड़ी हो गई। सब ओर एक समवेत स्वर उभरा— इंदिरा नेहरू—पण्डितजी की बेटी इन्दु! आसपास के घरों की छतों और छज्जों से स्त्रियां भी उत्साहित हो उठीं। दुकानों से दुकानदार कुछ सहमे फिर भी उत्साहित थे। सब तरफ एकाग्रता भरा बेसबरा सन्तोष उभरा। चारों ओर गोरी पलटन के सैनिक 'हुक्म' की प्रतीक्षा में तैयार खड़े थे व दूकें तानें। हर ओर आतुरता, असन्तोष, उत्साह और उत्सुकता— इंतजार हुक्म का और इन्तजार इंदिराजी के स्वर का।

श्री फीरोज ने केवल वह सब देखते रहने का फैसला किया था। एक घर की पहली मंजिल के एक बन्द कमरे की अधखुली खिड़की से देखते रहने की योजना बनाई थी उन्होंने। उनका नीचे उतरकर सभा में शामिल होने का कतई इरादा नहीं था। फिर भी वह भली भांति देख रहे थे कि गोरों की बन्दूक इन्दिराजी के सिर पर ही झुकी हुई थी। चिन्ता और उत्साह के कारण अनजाने में वह स्वतः ही नीचे उतर आए कि कहीं सार्जेण्ट की बन्दूक चल ही न जाए।

दस मिनट ही इन्दिराजी बोल पाई थीं कि उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। परन्तु उस गिरफ्तारी और अन्य साधारण गिरफ्तारियों में अंतर था। सारे वातावरण में सनसनी मच गई। इन्दिराजी को पुलिस की गाड़ी तक ले जाने के लिए सार्जेण्ट ने उनका बाजू पकड़ लिया। फिर क्या था! भीड़ अनायास उत्तेजित हो उठी। इन्दिराजी का हाथ पकड़ लिया यद्यपि कांग्रेस की एक महिला स्वयंसेविका इन्दिराजी का दूसरा बाजू पकड़े हुए थी, फिर भी आक्रोश को भयावह रूप धारण करते देर नहीं

लगी" । इसी आपा धापी और खीचा-तानी के कारण उत्तेजना और अधिक बढ गई भीड मे और फीरोज भी सामने आ गये । फलस्वरूप एक पत्थर से दो चिड़िया' मार ली गई । इन्दिराजी के साथ-साथ श्री फीरोज गाधी भी पुलिस के हाथ म आ गये जिनकी वास्तव म उसे तलाश थी ।

कुछ दिनो तक इन्दिराजी व फीरोज गाधी को एक ही जेल म रहने के बावजूद काफी प्रयासो के पश्चात अल्पकालीन 'मुलाकातो की आज्ञा मिल सकी । परन्तु कालान्तर मे श्री फीरोज को दूसरे नगर म भेज दिया गया ।

जेल म भी वह निश्चल व मौन नही बैठ सकी । अपने साथ की महिला कैदियो को पढाना शुरू कर दिया उन्होने, साथ ही बच्चो की देखभाल करना भी उन्होने महिला कैदियो को सिखाया । लेकिन वह स्वय स्वस्थ नही रह सकी । उनके स्वास्थ्य की सूचना जेल के बाहर भी पहुच गई । जनता म उनके स्वास्थ्य को लेकर चिन्ता उभरी और रोष भी प्रकट किया गया । तत्कालीन सयुक्त प्रात (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के गवर्नर के आज्ञानुसार एक सिविल सर्जन इन्दिराजी को देखने आया और उसने इन्दिराजी को विशेष भोजन और पौष्टिक आहार की सिफारिश की । साथ कुछ दवाइया भी लिखकर जेलर को दी कि इन्दिराजी को दी जाए । परन्तु सिविल सर्जन के जाते ही जेलर ने उन पर्चो को फाडकर टुकडे टुकडे कर दिया । नौ महीने बाद उन्हे जेल से मुक्त कर दिया गया ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त पश्चात विभाजन के फलस्वरूप आबादी की अदला बदली और साम्प्रदायिक झगडो के कारण लाखो लोग बेसहारा हो गये । इस नाजुक समय म इन्दिराजी देश के अन्य नेताओ के साथ शान्ति स्थापित करने और बेघर व बेसहारा शरणार्थियो के लिए राहत कार्य म जुट गई । पहले से ही एकाकी और अस्वस्थ रहने के बावजूद भी इन्दिरा जी किसी भी स्वस्थ कार्यकर्ता से पीछे नही रही । अपने पिता व देश के प्रथम प्रधानमन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू के साथ रहकर उनका सारा निजी कार्य करने के साथ अनेक सामाजिक व बाल सस्थाओ से भी सम्बद्ध रही ।

का प्रधानमंत्री बना दी गयी या इसे या यह लीजिए कि देश का नेतृत्व सौंप दिया गया अपनी बहादुर 'जोन ऑफ आर्क' को। जिसने शत्रुओं के दांत एक बार नहीं बार बार खट्टे किये।

1967 में चौथे सर्वसाधारण चुनाव में भी इन्दिराजी को पुनः देश का नेता चुना गया और वह पुनः प्रधानमंत्री बनी। श्री गिरि के राष्ट्रपति पद पर चुने जाने से (20 अगस्त 1969) एक महीने पूर्व ही इन्दिराजी ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके पूंजीपतियों की अशुद्ध योजनाओं को धूल धूसरित कर दिया और उसी वर्ष, नेहरूजी के जन्मदिवस पर उन्होंने आनन्द भवन भी राष्ट्र को समर्पित कर दिया।

जब यह निर्णय लिया गया कि प्रधानमंत्री ब्रिटिश काल के सेनाध्यक्ष के बंगले 'तीन मूर्ति' में रहेंगे तो उसकी सजावट स्वतन्त्र भारत के प्रधानमंत्री के अनुकूल बनाने का काम इन्दिराजी ने ही स्वयं संभाला। इन्दिराजी ने स्वयं खड़े होकर तीनमूर्ति का रंग बदल दिया। साम्राज्यवादी शान में चूर अकड़े हुए उन फौजी कर्नलों व जनरलों और महाराजाओं महारानियों के बड़े-बड़े तैल चित्रों को हटाकर रक्षा मंत्रालय के हवाले कर दिया गया। चित्रों के फ्रेमों व सिरों के हटने से कमरों व दालानों के आकार में विस्तार आया। दीवारों व पर्दों के रंग में भी भारी परिवर्तन आया। वाटिका में भी नेहरूजी का प्रिय पुष्प गुलाब के भिन्न प्रकार के पौधों को रोपा गया। किस कमरे में क्या होना चाहिए, कहां नेहरूजी का विशाल मनपसन्द पुस्तकालय रहेगा, कहां वह स्वयं बैठकर लिखेंगे पढ़ेंगे, किस ओर प्राकृतिक प्रकाश आना चाहिए। रात में कहां उनके लिए काम करने की व्यवस्था रहेगी। उनके निजी सहायक व आशुलिपिक कहां काम करेंगे। कहां सोयेंगे नेहरूजी कहां नाश्ता करेंगे, भोजन कहां करेंगे अपने अतिथियों से कहां मिलेंगे और किस कमरे में विशेष अतिथियों से वह भेंट करेंगे आदि आदि की सारी व्यवस्था अकेले इन्दिराजी ने स्वयं निजी रूपरेखा के अनुसार की थी।

इसके अतिरिक्त प्रधानमन्त्री निवास में विभिन्न प्रकार के अतिथियों के लिए आयोजित किए जाने वाले भोजों की व्यवस्था वह स्वयं किया करती थीं। नित नई समस्याओं का सामना करती और उन्हें सक्षमता और

जाए चाहे उधर से गोलियो की बौछार क्यो न होती रह।

फिर भी अकालिया और कट्टर सिख ने छावनी बन स्वण मन्दिर व अकालतख्त को आतकवादियो से मुक्त कराने की कायवाही को अपमान महसूस किया। उस अपमान को हवा दी विदेश म बसे व्यापारी सिखा ने और खालिस्तान की आवाज और तेजी स उठाइ गई। व उस आग को भडकाते रहे। यहा तक कि 31 अक्तूबर, 1984 को लगभग नौ बजे प्रात प्रधानमन्त्री निवास पर ही दो सुरक्षाकर्मियो द्वारा प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी की हत्या कर दी गई।

परन्तु हिंसा स कभी अहिंसा का अन्त हुआ ह। महात्मा गाधी की हत्या के पश्चात् क्या अहिंसा, शान्ति और सहिष्णुता मे कमी आइ ? जो श्रीमती इन्दिरा गाधी की हत्या के पश्चात आती। इस तरह से अहिंसा, शान्ति और सहिष्णुता की अमर ज्योति कभी बुझेगी नही।

वह मरी नही, अमर हो गयी।

वराह गिरि वेंकट गिरि

—1971

1916 की बात है। श्री गिरि आयरलैण्ड से बैरिस्टरी पढ़ करके स्वदेश लौट रहे। उनके साथ ही एक सहयात्री लंकावासी परिवार भी था जो कोलम्बो से दक्षिण भारत जा रहा था। परिवार का मालिक सिविल सर्वेण्ट था और काला होते हुए भी अपने को अंग्रेज से कम नहीं समझ रहा था। बातचीत के दौरान उसने गिरि से पूछा, 'हाऊ आर थिंग्स ऐट होम' (अपने 'घर' पे कैसा हालचाल है) होम (घर) से उस काले साहब का मतलब इंग्लैण्ड से ही था। सुनकर गिरि का तन मन क्रोध से भभक उठा। तड़ाक से बोले, इंग्लण्ड इज नॉट योर ग्राण्ड फादर्स प्लेस सिलोन इज योर होम। इफ यू आर रफरिंग टू इंग्लैण्ड आस्क मी ह्वाट द सिचुएशन देयर इज।' (इंग्लैण्ड आपके बाबा का घर नहीं है, लंका आपका घर है। अगर आपका मतलब इंग्लैण्ड से है तो मुझसे पूछिए कि वहां क्या हाल है।

युवक गिरि ने जब 1913 में सीनियर कैम्ब्रिज पास किया तो परंपरा के अनुसार उनके पिता श्री वी० वी० जोगय्या ने भी उन्हें कानून पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड भेजना चाहा। परन्तु गिरि ने सबके विपरीत आयरलैण्ड जाना पसन्द किया। वहां जाकर उन्होंने भारत का जैसा ही संघर्ष देखा आजादी के लिए। डबलिन में उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों का एक संगठन बनाया। दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी द्वारा प्रवासी भारतीयों के मौलिक अधिकारों के लिए शांतिपूर्ण सत्याग्रह के प्रति भी पूर्ण रूप से सजग थे और उन पर हुए अत्याचारों से प्रभावित भी थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के भयंकर

अत्याचार पर एक पुस्तक भी लिखी। हजारों प्रतियां छपवाकर बम्बई भेजी पर वहां चुंगी वालों ने पकड़ ली। पूछताछ शुरू हुई। बात आयरलैंड तक पहुंची पर आयरलैण्ड का वह द्रुमक भी कम राष्ट्रवादी नहीं निकला। उसने लेखक अथवा प्रकाशक का नाम बताया ही नहीं।

उन्हीं दिनों (14 अगस्त 1914) इंग्लैंड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। गांधीजी बिना किसी शर्त के अंग्रेजों की सहायता देने के लिए तैयार थे क्योंकि अंग्रेजों ने लड़ाई के पश्चात भारत को स्वायत्त शासन देने का वायदा कर लिया था। परंतु गिरि उन भारतीय नेताओं से सहमत थे कि अंग्रेजों को कोई मदद नहीं देना चाहिए और इस समय उनकी कमजोरी का लाभ उठाना चाहिए।

वह एक बार छुट्टियां बिताने डबलिन से लन्दन गये हुए थे और जहां वह ठहरे थे उसी स्थान के सामने वाले मकान में गांधीजी भी ठहरे थे और वहां वह रेडक्रास के लिए धन व सहयोग एकत्रित कर रहे थे। गिरि भी उनसे मिले और गांधीजी के आकर्षक व्यक्तित्व के सामने मना न कर सके परंतु उनसे अलग होकर जब उन्होंने सोचा तो बड़े असमंजस में पड़ गये। गांधीजी को दिया हुआ उनका वचन उनकी अंतरात्मा और सिद्धांत के बिलकुल विरुद्ध था। रात भर मंथन चलता रहा। सुबह उठते ही उन्होंने गांधीजी को क्षमा पत्र लिखा और कहा कि वह वचन उनके सिद्धांत के बिलकुल विरुद्ध है, अतः वह उसे वापस लेते हैं फिर भी उन्हें धन एकत्रित अवश्य कर देंगे। गांधीजी ने चुपचाप वह पत्र रख लिया और उन्हें वचन मुक्त कर दिया।

आयरलैंड के 'ईस्टर विद्रोह' से गिरि बेहद प्रभावित हुए थे और उन्होंने देखा कि राष्ट्र की असली ताकत उसके मजदूरों में निहित होती है। ईस्टर विद्रोह में रेल, गोदी, डाक-तार तथा सभी प्रकार के मजदूरों ने हड़ताल कर दी और शासन एकदम ठप्प हो गया था। उन्होंने भी अपनी पढ़ाई छोड़ दी और भारत में मजदूरों को संगठित करने का जैसे बीड़ा उठा लिया।

भारत आने पर मद्रास उच्च न्यायालय में आंध्र केसरी श्री टी० प्रकासम के निर्देशन तले गिरि ने वकालत शुरू कर दी। श्री प्रकासम श्री जोगय्या के

वराह गिरि वेंकट गिरि
—1971

1916 की बात है। श्री गिरि आयरलैंड से बैरिस्टरी पढ़ करके स्वदेश लौट रहे। उनके साथ ही एक सहयात्री लंकावासी परिवार भी था जो कोलम्बो से दक्षिण भारत आ रहा था। परिवार का मालिक सिविल सर्वेण्ट था और काला होते हुए भी अपने को अंग्रेज से कम नहीं समझ रहा था। बातचीत के दौरान उसने गिरि से पूछा, 'हाऊ आर थिंग्स एट होम' (अपने घर' पे कैसा हालचाल है) होम (घर) से उस काले साहब का मतलब इंग्लण्ड से ही था। सुनकर गिरि का तन मन क्रोध से भभक उठा। तड़ाक से बोले इंग्लण्ड इज नॉट योर ग्राण्ड फादर्स प्लेस सिलोन इज योर होम। इफ यू आर रफरिंग टू इंग्लैण्ड आस्क मी ह्वाट द सिचुएशन दयर इज।' (इंग्लण्ड आपके बाबा का घर नहीं है, लंका आपका घर है। अगर आपका मतलब इंग्लैण्ड से है तो मुझसे पूछिए कि वहां क्या हाल है।

युवक गिरि ने जब 1913 में सीनियर कैम्ब्रिज पास किया तो परंपरा के अनुसार उनके पिता श्री वी० वी० जोगय्या ने भी उन्हें कानून पढ़ने के लिए इंग्लण्ड भेजना चाहा। परन्तु गिरि ने सबके विपरीत आयरलैण्ड जाना पसंद किया। वहां जाकर उन्होंने भारत का जैसा ही संघर्ष देखा आजादी के लिए। डबलिन में उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों का एक संगठन बनाया। दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी द्वारा प्रवासी भारतीयों के मौलिक अधिकारों के लिए शांतिपूर्ण सत्याग्रह के प्रति भी पूर्ण रूप से सजग थे और उन पर हुए अत्याचारों से प्रभावित भी थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के भयंकर

अत्याचार पर एक पुस्तक भी लिखी। हजारो प्रतिया छपवाकर वम्बई भेजी पर वहा चुगी वालो न पकड ली। पूछताछ शुरू हुई। बात आयरलड तक पहुची पर आयरलैण्ड का वह द्रुमक भी कम राष्ट्रवादी नही निकला। उसन लेखक अथवा प्रकाशक का नाम बताया ही नही।

उन्ही दिनो (14 अगस्त, 1914) इग्लैंड ने जमनी के विरुद्ध युद्ध की घोपणा कर दी। गाधीजी बिना किसी शत के अग्रेजो का सहायता दन क लिए तैयार थे क्योकि अग्रेजो ने लडाइ के पश्चात भारत को स्वायत्त शासन दने का वायदा कर लिया था। परतु गिरि उन भारतीय नताओ स सहमत थ कि अग्रेजो का कोई मदद नही दना चाहिए और इस समय उनकी कमजोरी का लाभ उठाना चाहिए।

वह एक बार छुट्टिया बिताने डबलिन से लन्दन गय हुए थे और जहा वह ठहरे थे उसी स्थान क सामन वाल मकान म गांधीजी भी ठहरे थे और वहा वह रेडक्रास के लिए धन व सहयोग एकत्रित कर रहे थे। गिरि भी उनसे मिले और गाधीजी के आकपक व्यक्तित्व क सामने मना न कर सके परतु उनसे अलग होकर जब उन्होन सोचा तो बडे असमजस मे पड गय। गाधीजी का दिया हुआ उनका वचन उनकी अतरात्मा और सिद्धात के बिलकुल विरुद्ध था। रात भर मथन चलता रहा। सुबह उठत ही उन्हाने गाधीजी को क्षमा पत्र लिखा और कहा कि वह वचन उनके सिद्धात के बिलकुल विरुद्ध है, अत वह उसे वापस लेत हैं फिर भी उन्ह धन एकत्रित अवश्य कर देंग गाधीजी ने चुपचाप वह पत्र रख लिया और उन्हे वचन मुक्त कर दिया।

आयरलड के 'ईस्टर विद्राह' से गिरि बेहद प्रभावित हुए थे और उन्हाने देखा कि राष्ट्र की असली ताकत उसके मजदूरो म निहित होती है। ईस्टर विद्रोह मे रेल, गादी, डाक तार तथा सभी प्रकार क मजदूरो न हडताल कर दी और शासन एकदम ठप्प हो गया था। उन्होने भी अपनी पढाई छोड दी और भारत मे मजदूरो को सगठित करने का जम बीडा उठा लिया।

भारत आने पर मद्रास उच्च यायालय म आध्र कसरी श्री टी० प्रकासम क निर्देशन तल गिरि न वकालत शुरू कर दी। श्री प्रकासम श्री जागय्या क

सहपाठी थे और गिरि परिवार के मित्र भी । एक अ य मित्र यायाधीश न गिरि को यायपालिका म कोई नौकरी दनी चाही पर तु उ होन नम्रता पूवक मना कर दिया और प्रण किया कि वह ब्रिटिश सरकार क अधीन नौकरी कभी नही करेंग।

श्री गिरि न श्रीनिवास आयगर, श्री वरदाचारी, हसन इमाम, बी० सी० मित्तर, लाड सि हा एन० एन० सरकार के साथ काम किया और उनके समकालीन नामी वकीलो मे नताजी के पिता श्री जानकीनाथ बोस, के०सी० यागी और सी० आर० दास थे, जिनके साथ भी वकील गिरि को काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी वकालत खूब चली परतु गाधी जी के आह्वान पर सब कुछ छोडकर आजादी की लडाई मे आ मिल श्री गिरि।

1918 म व्यक्तिगत सत्याग्रह म भाग लिया और 1922 तक वह काग्रेस महासमिति के सक्रिय सदस्य भी रहे। मद्य निषेध आदोलन के दौरान अपने सारे परिवार क साथ ताडी की दुकानो के सामन धरना भी दिया और जेल यात्रा की।

सात लडक और पाच लडकिया क भरे पूरे परिवार के घर म 10 अगस्त, 1894 को जागय्या प तुलु गारू क यहा गिरि का ज म हुआ था। वह दूसरे नम्बर के लडके थे। जब वह 13 वष के ही थे तब उनक बड भाइ का दहात हो गया और तब से उनके ही क धो पर बडे लडक की जिम्मेदारिया आ पडी थी। पिता अच्छे और माने हुए वकील थे। के द्रीय विधान सभा के सदस्य भी रहे कुछ दिनो के लिए। राजाजी और प्रकाशम उनक अच्छे मित्रा म स थे। युवक गिरि न भी अपन पिता क अनुसार उदारवादी राजनीति म अपन को ढाला। साथ ही अपन मामा श्री हनुम तराव स समाज सेवा क गुणो को अगीकार किया। एक ओर चाचा थ श्री विश्वनाथ राव। उनस भी गिरि न जन सवा का पाठ ग्रहण किया।

बहरामपुर म, जहा वह रहते थे अपने साथिया क सहयोग से पुस्तकालय स्थापित किया। लगभग दो हजार पुस्तकें एकत्रित भी कर ली जिनम अधिकतर राष्ट्रीय नताओ की रचनाए थी। फिर पुस्तकालय क भवन क लिए धन भी एकत्रित किया।

उन्होंने एक यंग मैन स एसोसियेशन चलाया। इसने स्वय मेवक प्रत्येक परिवार म एक डलिया भरकर चावल लाते थे और सप्ताह म एक दिन गरीब बच्चों को भोजन खिलाते थे। इसी प्रकार के 'भारत गोखले का राष्ट्रीय कोप' और तिलक के पैसा कोष' के लिए इनके यंग मैन'स एसोसियेशन ने धन एकत्रित किया था। इन सारी गतिविधियों ने गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन के लिए भी अपरोक्ष रूप म एक मजबूत नीव बनती गई जो बाद म बडी सफल सिद्ध हुई।

गिरि अपनी मा से अधिक प्रभावित रहे जो विदुषी और कुशाग्र बुद्धि की महिला थी। उनके बारह बच्चे हुए। जोगय्या स्वय असहयोग आदोलन म भाग लेते थे और उनके जेल चले जाने पर भी गिरि की मा अत्यन्त धैर्य और कुशलता से परिवार का सारा प्रबन्ध चलाती रहती थी। इस प्रकार गिरि के रक्त म ही राष्ट्रीय आदोलन और धैर्यपूर्ण प्रबन्ध कौशल समाविष्ट होता रहा। अपने पिता की तरह वह भी गोखले के भक्त थे।

अपने जेल जीवन में भोजन ठीक न मिलने के कारण उन्होंने एक बार भूख हडताल कर दी। वैसे तो वह अपने तगडे स्वास्थ्य के कारण खराब से खराब भोजन भी पचा सकते थे पर उनका कहना था कि जब भोजन अच्छा मिल सकता है तो क्या नहीं मिलना और फिर सभी कैदी उनके जैसे ही तो तगडे नहीं है। जेल म चल रही उस धाधली के खिलाफ उन्होंने आवाज उठाई। जेल के वार्डन वगैरा कैदियों को दिये जाने वाले भोजन की मात्रा और गुणवत्ता मे घाटाला कर दिया करते थे। उनकी आवाज का असर यह हुआ कि राजनतिक कैदियों के साथ व्यवहार अन्य कैदियों से भिन्न किया जाने लगा।

जेल से निकलते ही खडगपुर के कुछ रेल कर्मचारियों ने गिरि जी से ट्रेड यूनियन बनाने की प्रार्थना की जिसकी योजना वह आयरलैंड से स्वदेश वापस आने के बाद से ही सोच रहे थे अत सबसे पहले बगाल, नागपुर

रेलवे[1] का मजदूर सघ गठित किया गया जो एक दशाब्दी म हा रेल कमचारियो का एक बडा मोर्चा बनकर देश के सामने उभरा। फिर मद्रास दक्षिण मरहट्टा रेलवे के मजदूर सघो से भी सम्बन्ध स्थापित किया। केवल हैदराबाद, मैसूर और त्रावनकोर की रियासतो की रेलो को छोडकर सम्पूर्ण दक्षिण भारत म एक व्यापक और सशक्त मजदूर सगठन बन गया जो अखिल भारतीय रेल कमचारी सघ के नाम से जाना जाने लगा। इसी सगठन से सम्बद्ध रहने के कारण श्री गिरि 1930 और 1932 के सत्याग्रहो म भाग नही ले पाये थे।

श्री गिरि आध्र केसरी श्री प्रकासम को अपना राजनीतिक गुरु मानते थे परन्तु दानो के स्वभावो म जमीन आसमान का अन्तर था। प्रकासम जहा अत्यन्त भावुक और सम्वेदनशील थे वहा गिरि शात और धयवान थे। प्रकासम जन नेता थे और अपने ओजपूर्ण भाषणो से जनता को दीवाना कर सकते थे परन्तु गिरिजी सगठनवादी नेता थे और भाषण की अपेक्षा काम म अधिक यकीन रखते थे। प्रकासम सामिश भोजन पसन्द करते थे और शराब से भी उन्हे परहेज नही था परन्तु गिरि पवित्र शाकाहारी थे और शराब का तो प्रश्न ही नही उठता था। विदेश जाते समय उन्होने अपनी मा को शाकाहारी रहने का जो वचन दिया था वह स्वदेश म ही रहकर निभाया। हो सकता है, इन्ही सब कारणो से वह अपनी बढी हुई आयु म भी इतने स्वस्थ और मजबूत रहे थे और युवको को मात करते थे।

1927 से 1936 के मध्य बगाल नागपुर रेलवे से लगभग छ बार हडताले हुई। बगाल नागपुर रेलवे लगभग 3,000 मील लम्बी थी और उसम 60,000 कमचारी काम करते थे। इस कम्पनी का कायकलाप बगाल की खाडी के तट पर वाल्टेयर से लेकर नागपुर, वतमान उडीसा

---

1 स्वतन्त्रता के पूर्व रेल अधिकतर अग्रजो व रजवाडो की निजी कम्पनियो के द्वारा चलाई जाती थी यद्यपि भारत सरकार का सरक्षण उन्हे प्राप्त था परन्तु कालान्तर म इन सबका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और भारत सरकार के सम्पूर्ण स्वामित्व के अन्तर्गत इनका क्षेत्रो म गठित कर लिया गया—जसे उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दक्षिण पूर्व दक्षिण मध्य।

श्चिम बंगाल, आन्ध्रप्रदेश महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के कुछ भागों में फैला आ था। अन्य रेल कम्पनियों की तरह बंगाल नागपुर रेलवे भी अंग्रेज म्पनी थी और भारत की अंग्रेज सरकार के साथ किन्हीं खास समझौते अपना काम करती थी। एक प्रकार से उन्हें भारत सरकार का संरक्षण ो प्राप्त था। मध्य वर्ग में आर्थिक दबाव पहले ही था। इसी का लाभ उठाकर उक्त रेल कम्पनी मनमानी करती थी और जानती थी कि अगर नौकरी छूट गई तो वे मजदूर एक दिन में भूख मर जाएंगे। 1927 में यूनियन के मंत्री श्री नायडू (डब्ल्यू० वी० आर०) का स्थानान्तरण किसी अंग्रेज अधिकारी के पास कर दिया और अपरोक्ष रूप से यूनियन की गति-विधियों में अवरोध उपस्थित कर दिया। इसी प्रकार कई और चुपकी खोटें कम्पनी की ओर से हुई और यूनियन को कमजोर करने की चालें चलाई जाने लगीं। इसके विरोध में केन्द्रीय विधान सभा में श्री जोगय्या पंतुलू ने आवाज उठाई थी और सरकार ने विश्वास दिलाया था कि रेल कम्पनी के साथ अवश्य कुछ कारवाई करेंगी परन्तु जब पूछताछ का समय आया तो उसका सारा काम अंग्रेज अधिकारी के हाथों में ही सौंप दिया गया और उस अंग्रेज अधिकारी ने बर्खास्त किये गए कर्मचारियों के संबंध में बात करने से लिए कतई इनकार कर दिया। पहले हड़ताल की घोषणा की गई परन्तु रेलवे के एजेंट ने पुनः कुछ आवश्यक एवं संतोषजनक कारवाई का विश्वास दिलाया और हड़ताल की तारीख फिर स्थगित करनी पड़ी। परन्तु जब ऐसा कई बार हुआ और कई बार हड़ताल स्थगित की गई तो कम्पनी की नीयत का साफ पता चल गया कि वह बार बार हड़ताल स्थगित करवाकर मजदूरों का मनोबल गिराकर यूनियन को कमजोर कर रही थी। अन्त में 11 फरवरी को सभी रेलवे कारखानों के कर्मचारियों ने 'औजार छोड़ो' कारवाई कर दी। मजदूरों ने सिगनल केबिन अपने कब्जे में ले लिए और सारी रेलें रोक दी गई। रेलवे ने हस्तक्षेप किया जिसमें अधिकतर यूरोपियन तथा आंग्ल भारतीय ही थे। उन्होंने अत्यन्त क्रूरता से 'हड़तालियों' के साथ व्यवहार किया और फलस्वरूप 14 फरवरी को आम हड़ताल हो गई।

विशेष मांग थी कि जिनको बर्खास्त किया गया है, उन्हें बहाल किया जाए। इसके बाद नौकरी की सुरक्षा और मजदूर को न्यूनतम वेतन पन्द्रह

रुपय (स्मरण रहे उन दिनो मजदूरो को न्यूनतम वेतन छह रुपय से लेकर नौ रुपय मिलता था) उस बडी हडताल मे लगभग 35000 मजदूरो ने भाग लिया था—एक तरह स बी० एन० रेलवे का पहिया जाम हो गया था। उन दिनो एक फौलादी पहलवान बहुत प्रसिद्ध था—वजन चम्पियन कोडी राममूर्ति। उसके बारे म आम प्रचलित था कि वह रेल रोक सकता था। परन्तु गिरि भी कम फौलादी साबित नही हुए। उन्होने भी रेल रोक दी थी।

हडताल के दिनो म उन्होने अट्ठारह घण्टे काम किया है। मजदूरो म भाषण देना, सभा आयोजित करना और साथ ही केन्द्रीय सविधान परिषद के सदस्यो तथा अन्य राजनीतिक नेताओ के साथ निरन्तर पत्र व्यवहार करना आदि वह कभी थकते नही थे।

वह हडतालें भी अनोखी थी। रेल का पहिया जाम अवश्य था पर सवारी गाडिया बराबर चलती थी। केवल माल गाडी रोककर सरकार को बताना चाहते थे कि उनकी बात न मानने से सरकार तथा व्यापार का कितना नुकसान हो सकता था। एक और विशेषता यह थी कि हडतालें अधिकतर शातिपूर्ण और व्यवस्थित रही। हडतालियो ने अपनी तरफ से कभी भी शाति भग नही की।

और इसी बीच मे सयोगवश प्रदेशो म लोकप्रिय सरकारें बनने लगी। यूनियन की मान्यता जो छिन गई थी पुन वापस मिल गई। सबसे बडी बात यह हुई कि स्वय गिरि को बाबली के राजा के विरुद्ध चुनाव लडने के लिए आमन्त्रण मिला। वह आमन्त्रण नही बल्कि एक चुनौती थी और साथ ही काग्रेस के लिए इज्जत का सवाल भी। श्री गिरि ने चुनौती स्वीकार की और खम ठोककर मैदान मे उतर पडे। चुनाव हुआ। बहुत जबरदस्त मुकाबला हुआ और अन्त म विजयश्री माला मजदूर नेता श्री गिरि के गले मे डाल दी जनता ने। और गिरि को मद्रास के मन्त्रिमण्डल म उद्योग एव सहकार्य के साथ श्रम भी सौंपा गया।

मजदूरों का ही एक हिमायती शासन सभालकर मजदूरो के मामले निपटाए यह बात जितनी आसान दिखती है उतनी ही कठिन भी। उनके म ही मदुरा मिल्स म झगडा उठ खडा हुआ।

दा बातें विवाद था—पहली यह कि क्या यूनियन का अधिकार है कि वह मजदूरों को हड़ताल के लिए उकसाए और दूसरी यह कि क्या यह प्रणाली न्यायसंगत है कि दो सप्ताह रात की पाली और एक सप्ताह दिन की पाली का कार्यक्रम रहे। सरकार ने इसके लिए एक जांच कमेटी नियुक्त की जिसने उपयुक्त दोनों बातों को अनुचित ठहराते हुए सिफारिश की थी कि कर्मचारियों का वेतन बढ़ाया जाय और रात की पाली में काम के घंटे कम किए जाएं।

परन्तु मिल के मालिकों ने आनाकानी की तो सरकार ने आदेश दिया कि वेतन का स्तर स्थापित किया जाये। इसका समर्थन दक्षिण भारतीय मिल मालिकों की संस्था ने कर दिया और इस प्रकार गिरि की स्थिति प्रशासक के रूप में भी उतनी उज्ज्वल रही जितनी कि नेता के रूप में थी।

परन्तु यह जनप्रिय सरकार अधिक नहीं चल पाई जैसा कि सर्वविदित है। युद्ध में सहयोग देने के प्रश्न पर कांग्रेस मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया।

और जब भारत स्वतन्त्र हुआ नेहरूजी ने मन्त्रिमण्डल गठित किया तो श्रम मन्त्रालय के लिए नेहरूजी को गिरि से अधिक उपयुक्त व्यक्ति कौन मिल सकता था। पर औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक के बनाये जाने में उन्हें काफी कठिनाइयां उठानी पड़ीं। रक्षा और रेल मन्त्रालय श्रम के सम्बन्ध में श्रम मन्त्रालय से अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखना चाहते थे जो सिद्धान्त के तौर पर गलत था जब एक केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय बनाया गया था और इन सभी कारणों से श्री गिरि ने मन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया।

1957 में उन्हें उत्तर प्रदेश का राज्यपाल बनाया गया। वैसे तो राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि होता है जो प्रदेश की संवैधानिक कार्यवाही आदि की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने का जिम्मेदार रहता है परन्तु यदि वास्तव में उसकी स्थिति देखी जाए तो उसकी काफी जिम्मेदारी होती है और पूरी तरह से केन्द्र अथवा राष्ट्रपति का प्रतिनिधि

होना है और यह आवश्यक कार्य गिरि जी ने किए। उन दिनों उत्तर प्रदेश की कांग्रेस मे आपसी खींचातानी थी परन्तु गिरिजी ने हमेशा इस खींचा-तानी को कम करने की कोशिश की। वह तटस्थ रहे और साथ ही अपना योग्य मार्गदर्शन भी दिया। इन सब कामों के रहते हुए भी उन्होंने अपना मौलिक रुझान नही छोडा और सदा मजदूरों के हित की बात सोचते व करते रहे।

उसके बाद गिरिजी को केरल का राज्यपाल बनाया गया। केरल चूंकि कम्युनिस्ट बाहुल्य प्रदेश रहा है। इसलिए कांग्रेस सरकार के लिए हमेशा ही समस्या प्रधान और नाजुक प्रदेश रहा। एक प्रकार से केरल उनके लिए एक चुनौती था। जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया था और वास्तव मे केरल का शासनकाल गिरि के लिए अत्यन्त संघर्षपूर्ण रहा। वहां उन्हें बडे से बडे खट्टे मीठे और चरपरे अनुभव हुए।

केरल के पश्चात वह मैसूर के भी राज्यपाल रहे और दो वर्ष पश्चात ही 1967 मे उन्हें उपराष्ट्रपति निर्वाचित किया गया। उपराष्ट्रपति का पद हमारे भारतीय संविधान के अनुसार अत्यन्त संवेदनशील होता है। उपराष्ट्रपति को राज्य सभा की अध्यक्षता भी करनी होती है परन्तु गिरि के लिए यह कोई नई चुनौती नही थी। उन्होंने उपराष्ट्रपति की गरिमा को निहायत खूबी से बनाये रखा।

और जब 3 मई 1969 को राष्ट्रपति जाकिर हुसैन का निधन हो गया तो उन्हें कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप मे भी कार्य करना पडा। फिर बाद मे 24 अगस्त 1969 को भारत के चौथे राष्ट्रपति के रूप मे निर्वाचित किए गए। परन्तु इस बात को जितनी सरलता से यहां लिख दिया गया उतना ही प्रचण्ड था चौथे राष्ट्रपति का चुनाव। इसी चुनाव मे संघर्ष शुरू था—दो वादों का, दो सिद्धान्तों का, काले और सफेद का, प्रतिक्रिया और प्रगति का और स्पष्ट था कि सारा देश प्रगतिशील पक्ष का हामी था जो इंदिरा गांधी के नेतृत्व का तलबगार था। कांग्रेस के दो टुकडे हो गए। एक दूसरे ने आरोप प्रत्यारोप लगाए और बाद मे दूध का दूध और पानी का पानी हो गया। श्रीमती इन्दिरा गांधी के उम्मीदवार श्री गिरि भारी बहुमत से जीतकर राष्ट्रपति भवन मे पहुंच गए। यह जीत वास्तव मे गिरि की न

होकर वादा की थी, सिद्धान्तो की थी।

और 1971 मे भारत के करोड़ो श्रमिकों के मान निष्ठावान नेता और प्रतिनिधि का सम्मान किया उन्हें भारत रत्न से अलकृत करके। उनका यह अलकरण वास्तव मे एक मजदूर के प्रति किया गया सम्मान माना जाना चाहिए।

मजदूर नेता राष्ट्रपति तथा अनेक उत्तरदायी उच्च पदो पर काय करने वाले तथा भारत रत्न' स अलकृत श्री वराह गिरि वेंकट गिरि का निधन मद्रास म 24 जून, 1980 को हो गया। सयोगवश इससे एक दिन पूव युवा-नता श्री सजय गाधी का एक विमान दुघना मे देहान्त हो चुका था। भारत को यह दोनो वज्रपात एक साथ सहने पडे थे।

कुमारस्वामी कामराज—1975

भारत के धुर दक्षिण म एक छाटा सा गाव विरदपट्टी। भूखा, नगा और पिछड़ेपन के दलदल मे फसा हुआ विरदपट्टी, जिसम अधिकतर कृषक। धरती का दुलरा वहलाकर दो जून मुट्ठी भर चावल जुटा पान म लीन ता कुछ ताडी का धधा करके पेट भरने म मगन, ताडी का धधा करन वाला एक परिवार—गाव का मुखिया—नत्तनमायकार कुदम्बम कहलाता था। गाव म इस परिवार की इज्जत थी। मुखिया जो होत थ इस परिवार क मद, छाट बड झगडे टटे हो या काइ पचीदा समस्या नत्तनमायकार कुदम्बम का ही योग्य और अन्तिम राय ली जाती थी। सो इसम काइ आश्चय नही कि जब आजाद भारत के प्रधानम त्री प० जवाहरलाल नेहरू का निधन हुआ तब नय प्रधानमन्त्री बनान की कठिन और पचीदा समस्या क महत्वपूर्ण अवसर पर विरदपट्टी क ही इस मुखिया परिवार के एक मद क पास पहुच गया और फिर 19 महीन बाद उस नए प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री का अकस्मात निधन हुआ ता फिर विरदपट्टी के इसी मुखिया परिवार क उसी मद की याग्य और अन्तिम राय ली गई और उस पर अमल किया गया—विरदपट्टी क मुखिया परिवार का यह मद था लौह पुरुष कुमारस्वामी कामराज।

कामराज प्रधान त्र प्रणेता अथवा प्रधानमत्री की कुर्सी पर अन्य दा मुक्त व्यक्ति बठान वाल कामराज का जन्म भारत क धुर दक्षिण म उसी गाव—विरदपट्टी क मुखिया परिवार म 15 जुलाई 1903 का हुआ था। जन्म क समय कक राशि क नक्षत्र समूह म सूय अपनी सम्पूर्ण प्रखरता स

ज्योतिषी था और ज्योतिषिया ने पहले ही अपने ज्योतिष से दरअसल बता दिया था कि बालक कामराज भूर मे ही समान समझेगा।'

परन्तु तब नादद मुनकर उन्हीं दादी अम्मनी यानि अम्मल और मा श्रीमती शिव कामी दोनों अवश्य मुस्कराई होगी और मन ही मन यहा होगा यह तो सभी बालकों के लिए कह दिया जाता है वहीं मूरज और कहा अपना बेटा कामाक्षी (कामराज का नाम यों ही पुकारा जाने लगा था) फिर भी इस मुन्हर कल्पना के सहारे पाला पोसा जाने लगा।

उस दिन बालक कामराज का विद्या आरम्भ संस्कार सम्पन्न हुआ था। एक छोटा सा स्कूल था और उसका अध्यापक बेचारा लगड़ा था, इसी से लोग उस नाम्नी बत्थार (लगड़ा अध्यापक) 'वतुत्तम' पुकारते थे। पिता कुमारस्वामी नाहर ने उस दिन विशेष उत्सव आयोजित किया था। स्वयं खूब सज धजे थे। अपने परिवार की परम्परायुक्त पोशाक पहनी थी उन्होंने और सारा वातावरण पवारी के स्वरों में डूबा हुआ था। बड़े पुजारी रामलिंगम भी विशेष रूप से आमन्त्रित थे। सारा घर मित्रों और रिश्तेदारों से भरा हुआ था।

एक खूबसूरत पालकी में बालक कामराज को बिठाया उसके मामा ने और गांव भर में उस जुलूस को घुमा फिराकर सब गांव वालों को बताया गया कि आज बालक कुमारस्वामी कामराज विद्या आरम्भ करनेवाला है। गांव की महिलाएं अपने अपने दरवाजों पर आ गई देखने और उन्हें चन्दन लगाकर फूल व पान दिए गए। 'आ सरसु आ तू भी धर्मीवाणी हमारा लाडला स्कूल जा रहा है। वह वहां पढ़ेगा ' एक ताड़ के पत्ते पर कामराज का प्रथम अक्षर लिखकर दिखाया गया। और स्कूल जाना शुरू हो गया ।

फिर दशा का पटाक्षेप हुआ। कामराज के पिता चल बसे। मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। फिर भी दादी मां पार्वती अम्मल और मां शिवकामी ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने अपने सारे गहने एक सज्जन साहूकार के पास रख दिए 3000 रुपए में, जिससे उन्हें प्रतिमाह 40 रुपए गुजारे के लिए मिलते रहे बालक कामराज स्कूल जाता रहा।

एक प्रश्न—'घर में पांच हैं माता पिता, दो बच्चे और दादी मां प्रत्येक

कुमारस्वामी कामराज—1975

भारत क धुर दक्षिण म एक छोटा-सा गाव विरदपट्टी। भूखा नगा और पिछडपन क दलदल म फसा हुआ विरदपट्टी, जिसम अधिकतर कृषक। धरती का दुलरा कहलाकर दो जून मुट्ठी भर चावल जुटा पान म तीन ता कुछ ताडी का धधा करक पट भरन म मगन, ताडी का धधा करन वाला एक परिवार—गाव का मुखिया—रत्तनमायकार कुदम्बम कहलाता था। गाव म इस परिवार की इज्जत थी। मुखिया जो होत थे इस परिवार क मर्द छाटे बडे झगडे टटे हो या कोई पचीदा समस्या, नत्तनमायकार कुदम्बम का ही योग्य और अतिम राय ली जाती थी। तो, इसम कोइ आश्चय नहीं कि जब आजाद भारत के प्रधानमन्त्री प० जवाहरलाल नहरू का निधन हुआ तब नय प्रधानमन्त्री बनान की कठिन और पचीदा समस्या क महत्वपूण अवसर पर विरदपट्टी क ही इस मुखिया परिवार क एक मर्द के पास पहुच गया और फिर 19 महीने बाद उस नय प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री का अकस्मात निधन हुआ तो फिर विरदपट्टी के इसी मुखिया परिवार क उसी मद की योग्य और अतिम राय ली गई और उस पर अमल किया गया—विरदपट्टी क मुखिया परिवार का यह मर्द था लौह पुरुष कुमारस्वामी कामराज।

कामराज प्लान के प्रणेता अथवा प्रधानमन्त्री की कुर्सी पर अत्यन्त उपयुक्त व्यक्ति बैठान वाले कामराज का जन्म भारत के धुर दक्षिण म उसी गाव—विरदपट्टी के मुखिया परिवार म 15 जुलाई 1903 को हुआ था। जन्म क समय कक राशि के नक्षत्र समूह म सूय अपनी सम्पूण प्रखरता स

ज्योतिमान था और ज्योतिषियों ने पहले ही अपने ज्योतिष में पढ़कर बता दिया था कि बालक कामराज सूर्य के ही समान चमकेगा।'

परन्तु तब शायद सुनकर उनकी दादी श्रीमती पार्वती अम्मन और मां श्रीमती शिवकामी दोनों अवश्य मुस्करा दी होंगी और मन ही मन कहा होगा यह तो सभी बालकों के लिए कह दिया जाता है कहां सूरज और कहां अपना बेटा कामात्वी (कामराज को कामात्वी ही पुकारा जाने लगा था) फिर भी इस सुन्दर कल्पना के सहारे पाला पोसा जाने लगा।

उस दिन बालक कामराज का विद्या आरम्भ संस्कार सम्पन्न होना था। एक छोटा सा स्कूल था और उसका अध्यापक बेचारा लंगड़ा था इसी से लोग उसे नोन्दी वत्यार (लंगड़ा अध्यापक) वलयुत्तम' पुकारते थे। पिता कुमारस्वामी नाडर ने उस दिन विशेष उत्सव आयोजित किया था। स्वयं खूब सज धजे थे। अपने परिवार की परम्परायुक्त पोशाक पहनी थी उन्होंने और सारा वातावरण पवीरी के स्वरों में डूबा हुआ था। बड़े पुजारी रामलिंगम भी विशेष रूप में आमंत्रित थे। सारा घर मित्रों और रिश्ते नातेदारों से भरा हुआ था।

एक खूबसूरत पालकी में बालक कामराज को बिठाया उसके मामा ने और गांव भर में उस जुलूस को घुमा फिराकर सब गांव वालों को बताया गया कि आज बालक कुमारस्वामी कामराज विद्या आरम्भ करनेवाला है। गांव की महिलाएं अपने अपने दरवाजों पर आ गई देखने और उन्हें चन्दन लगाकर फूल व पान दिए गए। आ सरसू आ तू भी थयीवाणी हमारा लाडला स्कूल जा रहा है। वह वहां पढ़ेगा एक ताड़ के पत्ते पर कामराज को प्रथम अक्षर लिखकर दिखाया गया। और स्कूल जाना शुरू हो गया।

फिर दृश्य का पटाक्षेप हुआ। कामराज के पिता चल बसे। मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। फिर भी दादी मां पार्वती अम्मल और मां शिवकामी ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने अपने सारे गहने एक सज्जन साहूकार के पास रख दिए 3000 रुपये में, जिससे उन्हें प्रतिमाह 40 रुपये गुजारे के लिए मिलते रहे बालक कामराज स्कूल जाता रहा।

एक प्रश्न—'घर में पांच हैं माता पिता, दो बच्चे और दादी मां प्रत्येक

का दो दो अण्डे चाहिए तो बताओ परिवार के लिए कितने अण्डे खरीदने पडेंगे ?

उत्तर— आठ '

अध्यापक ने पूछा—'आठ ?' किसका छोड दिया '

बालक कामराज के गालो पर आंसू लुढक गये। वह बोला—'पिता का '

बालक कामराज ने सुना था कि हाथी के गोबर को लाघने से हाथी की जैसी ही मजबूती आ जाती थी और जहा किसी हाथी का गोबर देखा और कामराज उस पर लाघने के लिए दौड पडा। एक बार विरदपट्टी मे ही एक हाथी बिगड गया। इधर उधर घूम घूमकर नुकसान करने लगा। हाथी अपने महावत के नियन्त्रण मे भी नहीं रहा। सब घबरा गये। हर तरफ भगदड मच गई। तभी कामराज और उनके सहपाठी तगप्पन ने जजीर उठाई और सारा साहस बटोरकर हाथी के पास जा पहुचे। पता नही, हाथी क्या समझा, हाथी बिलकुल गऊ हो गया और अपनी सूड उठाकर अभिवादन करते हाथी ने जजीर अपने ऊपर डाल ली सब आश्चर्य से भौचक्के रह गये। इसी प्रकार कामराज ने बडे होकर भी बडे बडे दिग्गजो को जजीर पहनाई है जिनमे से एक तो राजाजी ही है।

उन दिनो वहा एक चोर था। बडा भयानक चोर जो पुलिस के हाथ लगता ही नही था और सारे विरदपट्टी ही क्या आसपास की बस्ती मे भी उसके किस्से मशहूर थे। कामराज ने अपनी 'बालसेना' के साथ उसे पकडने का बीडा उठाया। जब लोगो को मालूम हुआ तो वह हस दिये परन्तु काम राज की योजना भी अनोखी थी। एक रात वह दिखाई दिया। कामराज भी अपनी योजना से लैस चौकस थे और जैसे ही उन्होने मौका देखा चोर के मुह पर ठण्डा पानी फेंककर दे मारा। अचानक ठण्डा पानी चेहरे पर पडने से वह घबरा गया और फिर पानी मे लाल मिर्च पीसकर मिलाई गई थी। बस जैसे ही उसकी आखो मे मिर्च मिला ठण्डा पानी पडा वह एक प्रकार से अधा हो गया और वह एक कदम भाग नही पाया इस प्रकार कामराज मण्डली ने वह कुख्यात चोर पकड लिया। कामराज की यह आदत शुरू से रही है कि वह अपने विरोधी को पूरी तरह से नाप तोलकर अपना

सुनियोजित योजना बनाते हैं। यही कारण था कि लालबहादुर शास्त्री के निधन पर जब उन्होंने सोच लिया था कि श्रीमती इन्दिरा गांधी को ही प्रधानमन्त्री बनाना है तो फिर उसके लिए एक सुगठित योजना बनाई और प्रधानमन्त्री के चुनाव तक में भी वह अपने लक्ष्य से नहीं डिगे और जैसाकि मद्रास हवाई अड्डे पर उन्होंने सोचा था, वही कर दिया यानी प्रधानमन्त्री की कुर्सी पर श्रीमती इन्दिरा गांधी को प्रतिष्ठित कर दिया चाहे उसके लिए सबसे मुश्किल चुनाव ही क्यों न लड़ना पड़ गया उन्हें।

गणेश चतुर्थी का उत्सव कामराज के स्कूल—क्षेत्रीय विद्याशाला में मनाया गया। प्रत्येक विद्यार्थी से एक एक आना[1] चन्दा लिया गया। कामराज ने भी एक आना दिया परन्तु प्रसाद मिलते समय इतनी भीड़ हो गई कि कामराज पीछे रह गये और जब तक उनका मौका मिला तब तक प्रसाद चुक गया था। थोड़ा सा प्रसाद देखकर उनकी मां श्रीमती शिवकामी को आश्चर्य हुआ 'अरे न नारियल की गिरी है न मिठाई का कोई टुकड़ा ? क्या तुझे कुछ नहीं मिला रे '

मुझे तो इतना ही मिल पाया मां

और लड़कों ने आगे बढ़कर पहले ले लिया होगा ।

तो इससे क्या होता है क्या मैंने चन्दा नहीं दिया था ? मुझे भी पूरा हिस्सा मिलना चाहिए था उन्होंने मुझे कम क्यों दिया ? तुम मास्टरजी से पूछा न ?

परन्तु कामराज के बालक मन में अनजाने ही यह बात बैठ गई है कि यह दुनिया डरपोक और दब्बुओं के लिए नहीं है अगर इस दुनिया में जीना है तो आगे बढ़कर अपना हिस्सा लेना होगा—छीनना होगा।

पिता के अकस्मात निधन से कामराज के जीवन में एक जबर्दस्त झटका आया। घर की रोटी कैसे चले ? यही प्रश्न उनकी दादी और मां के सामने

---

1 मिट्रिक प्रणाली से पहले एक रुपया में सोलह आने हुआ करते थे और एक आने में चार पैसे अथवा बारह पाइयां होती थीं। पैसा आज के पचास पैसे के सिक्के से जरा छोटा और हल्का होता था। पाई और भी छोटी होती थी और यह दाना तांबे और आना (इकन्नी) गिलिट मिश्रित धातु का बना हुआ होता था।

साफ बना लिया वह शादी नही करेंगे [illegible] भाग जायगे और कुमारस्वामी ने शादी नहीं [illegible] सामने रास्ते थे—पहला शादी करके घर बसाकर और [illegible] तेल-तेल लकडी की जुगत म गुजार देना जिन्दगी और दूसरा [illegible] की सेवा का सीधा रास्ता चाहे कितना ही कठिन क्यो न हो। कामराज ने [illegible] चुन लिया।

कामराज जलियावाला हत्याकाड से अत्यत प्रभावित हुए और उनका मन एक भयानक विचित्र आक्रोश से भर गया। उन दिनो उनके ही गाव विरुदपट्टी म डॉक्टर वरदराजुलू नायडू पधारे उनके ओजस्वी भाषण ने आग म घी का काम किया। कामराज ने ही वह सभा सगठित की थी सारा प्रबन्ध युवक कामराज ने ही किया था। डॉक्टर नायडू उनके जोश और सेवा भाव से प्रभावित भी हुए, उन्होने कामराज के अन्दर की भभक रही ज्वाला भली भाति देख ली थी, परख ली थी। बाद म उन्होने कामराज के सम्बन्ध म एक बार कहा था, 'यदि तमिलनाडु काग्रेस को कामराज का नेतृत्व सुलभ न होता तो उसकी भी वही दशा होती जो केरल तथा आध्र काग्रेसो की हुई कामराज का स्थान ऐसे लोगो म सबसे अग्रणीय है जिन्होने देश की सेवा अपना धर्म मानकर तन मन धन से की है ।'

उन दिनो सारे भारत मे विशेष तौर से दक्षिण भारत म छुआछूत का बाजार बेहद गर्म था। सवर्ण हिन्दू हरिजनो की छाया से भी परहेज करते थे। अत स्थानीय काग्रेस ने महात्मा गाधी के निर्देशानुसार अछूतोद्धार आदोलन चलाया और कामराज ने सर्वप्रथम सत्याग्रही के रूप में अपना नाम लिखवा दिया। सत्याग्रह की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय युवक सत्याग्रही कामराज की सत्यनिष्ठा तथा परिश्रम को ही गया और यह पहली सफलता थी उनके राजनतिक जीवन म। सफलता की पहली सीढी पार कर कामराज ने कभी भी नीचे नही देखा, वह ऊपर ही चढते चले गये। नागपुर का झडा सत्याग्रह मद्रास म कर्नल नील की मूर्ति को हटाने का आदोलन महात्मा गाधी का देशव्यापी नमक सत्याग्रह आदि उनके राजनतिक जीवन मे आये और सभी प्रकार की अग्नि परीक्षाओ से वह खरे निकले। इसी बीच म उन्हे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी का सदस्य भी चुन लिया गया जबकि

वह केवल 28 वर्ष के ही थे। तमिलनाडु हमेशा से दो ग्रुपों में विभाजित रहा। ब्राह्मण तथा गैर ब्राह्मण और कांग्रेस में भी दो ग्रुप हो गये—एक राजाजी का दूसरा सत्यमूर्ति का। कामराज ने दूसरे ग्रुप का साथ दिया। अखिल भारतीय गतिविधियों में भाग लेने की वजह से उन्हें केवल तमिल ज्ञान के कारण कठिनाई आने लगी, इसलिए उन्होंने अंग्रेजी पढ़ी और बाद में अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

1934 के प्रान्तीय सरकारों के लिए चुनाव में कामराज का बड़ा योगदान रहा। उन्हीं के अथक परिश्रम और लगन का नतीजा था कि कांग्रेस भारी बहुमत से विधान परिषद् में पहुंची। 1937 में कामराज विरुदनगर के एस क्षेत्र से बिना किसी विरोध के चुने गये जो सदा से अंग्रेजों के वफादार पिट्ठुओं का गढ़ माना जाता था।

'व्यक्तिगत सत्याग्रह' के लिए प्रत्येक सत्याग्रही को महात्मा गांधी के पास पहुंचकर व्यक्तिगत अनुशासन तथा निष्ठा के आधार पर गांधीजी से आज्ञा लेनी पड़ती थी और विरुदपट्टी का साधारण दिखने वाला यह स्वयंसेवक परीक्षा देने वर्धा चल दिया, पर रास्ते में ही पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया और विलोर जेल में डाल दिया। यह उनकी तीसरी जेल यात्रा थी। जेल में ही थे तभी उन्हें विरुदनगर नगरपालिका की परिषद का अध्यक्ष चुन लिया गया।

बम्बई में 8 अगस्त, 42 का ऐतिहासिक कांग्रेस अधिवेशन। कामराज भी वहां उपस्थित थे। अधिवेशन में पारित प्रस्ताव के कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व कामराज पर था क्योंकि वह प्रादेशिक कांग्रेस के अध्यक्ष थे और लौटते समय बजाय वह मद्रास पहुंचते जहां पुलिस उनका इंतजार कर रही थी, वह बीच में ही एक छोटे से स्टेशन अरकोनम पर ही उतर पड़े। वहां जाकर वह अपने साथी कल्यान रामा अय्यर से मिले और आंदोलन की सारी रूपरेखा बनाई। फिर वह रानीपेट गये और रानीपेट से वह वल्लोर खिसक गये। जब उन्होंने राजनतिक काम पूरा कर लिया तब वह अपने गांव पहुंचे और एक रात घर रहकर दूसरे दिन प्रातः ही वह चुपचाप थाने पहुंचे और पुलिस के हवाले कर दिया अपने आपको।

1943 में सत्यमूर्ति के निधन के पश्चात कामराज जब 1945 में जेल

स छूट ता एक तरह से सभी बाता का सामना प्रत्यक्ष रूप से उन्ह ही करना पडा। राजाजी स उनकी पहले ही नही बनती थी और अब तो उनका उनम सीधा मुकाबला था। गाधीजी ने जब राजाजी के सम्बन्ध म हरिजन म लिखा कि राजाजी की बेशकीमती सेवाए यदि तमिलनाडु काग्रेस म नही ली गइ तो यह उचित न होगा क्योकि वतमान म वही उत्तरदायित्व बखूबी निभा सकत है कामराज ने तुरन्त पालियामेंटरी बोड स इस्तीफा न्ने क लिए पशकश कर दी और डॉक्टर वरदराजुलू ने गाधीजी स कहा कि वह मामले के बीच म न पडें, और गाधीजी ने जवाब दिया अच्छा, अब स मै हस्तक्षेप नही करूगा ।'

इस घटना से तमिलनाडु की जनता और काग्रेस मे कामराज की शक्ति तथा लोकप्रियता का सही अनुमान लगाया जा सकता है। राजाजी न एक बार फिर काग्रेस अध्यक्ष के लिए श्री सी० पी० सुब्बया को खडा किया और इस बार फिर वह 56 वाटा से हार गये प्रान्त के मुख्यमत्री के पद के लिए भी कामराज ने राजाजी की नही चलने दी।

कामराज का तमिलनाडू का मुख्यमत्री बनना अप्रत्याशित नही था क्याकि कामराज की कमठता और काम के प्रति ईमानदारी ने तमिलनाडु के प्रत्येक व्यक्ति के दिल म उनके लिए सम्मानित जगह बना ली थी। जसा कि सत थिरवल्लूर ने कहा ह राजा उसी को बनाना चाहिए जिसम चार चीजे हा—प्यार, ज्ञान, स्पष्ट मस्तिष्क और लोलुपता से मुक्ति।'

कामराज का विश्वास था कि मन्त्रिपरिषद जितनी छोटी हो उतना ही अच्छा हाता ह। आदमी के पहचानने म कामराज ने शायद ही कभी गलती की हो। अपनी मन्त्रिपरिषद मे उन्होंने इसी 'पहचान' की कसौटी पर व्यक्तिया को कसकर मत्री बनाया था। भारत म शायद ही कोई ऐसा नेता अथवा मुख्यमत्री हुआ है जितना कामराज जनता के लिए सुलभ थ— हमशा हरएक की उलझन अथवा समस्या को एक अग्रज की तरह सुलझान को तत्पर कामराज छोट स छाट आदमी के लिए सदा मुलभ रहे। परन्तु इसका मतलब यह भी नही कि उन्होंने किसी की अनुचित सहायता अथवा सिफारिश की हो। अग्रेजा की देन—लाल फीताशाही म ग्रस्त भारत के अधिकतर दफ्तरो मे फैले वातावरण को कभी कामराज ने पसन्द नहीं किया

और न ही उन्होंने सरकारी काम में राजनीतिक हस्तक्षेप सहन किया।

उनके विचार में देश के आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में शिक्षा को प्राथमिकता मिलनी चाहिए क्योंकि वह स्वयं भुक्तभोगी थे। उनकी योजना थी कि छह से ग्यारह की आयु के सभी बच्चों को अनिवार्य शिक्षा होना चाहिए। उसी के साथ साथ स्कूल में बच्चों को दोपहर का भोजन देने की योजना कामराज के मन में पनप रही थी। उनका ख्याल था, इससे बहुत बड़ा कलंक दूर हो सकता है जो ऊँच-नीच तथा छुआछूत के कारण हमारे देश के माथे पर लगा हुआ है। शिक्षा के सम्बन्ध में कामराज का एक मत और भी था कि बच्चों को तकनीकी शिक्षा भी देनी चाहिए ताकि हमारे बच्चे डिग्रियां प्राप्त करके भी बेकार सड़कों पर जूतियां न घिसें। इसी प्रकार राजनैतिक लोगों को भी उनके मतानुसार नहीं भुला देना चाहिए जिन्होंने हथेली पर जान रखकर आजादी की लड़ाई में भाग लिया था। उन्हें भी कुछ आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। यह योजना अब कार्यान्वित हो गई है और प्रायः सभी स्वतन्त्रता सेनानियों को पेंशन दी जाने लगी है। गांवों की दशा सुधारने के लिए उन्होंने पंचायत प्रणाली को उचित समझा था।

नौ वर्ष मुख्यमन्त्री के कार्यालय की चारदीवारी में बन्द जन नायक कामराज का मन फिर जनता के मध्य काम करने को मचल उठा। यद्यपि उन्होंने मुख्यमन्त्री काल में भी अपना सम्पर्क शिथिल नहीं किया था और हमेशा जनता से मिलने उनसे बात करने, उनकी समस्याओं को जानने परखने और सुलझाने को प्राथमिकता दी थी।

कामराज का कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर आना देश के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जानी चाहिए क्योंकि इसी घटना से उनका प्रसिद्ध कामराज प्लान सम्बद्ध है। उन्होंने तीव्रता से अनुभव किया था कि किसी भी नेता का एक ही पद पर लगातार बने रहने से कितना असन्तोष फैल सकता था औरों का तो क्या स्वयं नेहरूजी का लगातार प्रधानमन्त्री बने रहना तक बहुत से लोगों को अखरने लगा था विशेषकर चीन के अकस्मात आक्रमण के पश्चात तो यह असन्तोष और भी व्यापकता से जोर पकड़ गया था तो पूर्व इसके कि खुले मुंह विरोध शुरू हो जाए और

इतने दिनो की कमाई हुई लोकप्रियता धूल म मिल जाए। बेहतर है कि स्वय गद्दी छोड दी जाए। जब नेहरू जैसे जननायक और लोकप्रिय नेता की स्थिति बदल सकती थी ता छोटे मोटे मत्रिया की तो बिसात ही क्या थी। इसलिए कामराज का विचार था कि मत्रिया को अपनी कुर्सी से चिपके रहने की प्रवत्ति अथवा लालुपता त्यागकर जनता म फिर लौट जाना चाहिए और आजादी के पहले जैसा ही जनसम्पक स्थापित करना चाहिए। इस योजना म दा लाभ प्रत्यक्ष और तुर त होन वाले थे—पहला सा जी हुजूरी का दायरा जा नेहरू जी के गद गिद बढ गया था वह घटना और बहुत से आत्मा प्रदर्शित दश क हितैषिया की सच्चाई का भी पता चल जाना परन्तु कामराज प्लान' अधिक प्रभावित ढग से चल नही पाया और केवल दो चार चोटी के मत्रियो को छोडकर कोई भी अपनी जगह से नही हिला।

नेहरूजी के निधन के तुरत बाद जो प्रश्न वर्षो से प्रत्येक भारतवासी को परेशान किये हुए था, वह प्रत्यक्ष रूप से आकर खडा हो गया—'नेहरू के बाद कौन'? यह कामराज का बडप्पन था कि बजाय इसके कि वह स्वय ही नेहरू का उत्तराधिकार हथिया लेत उन्होंने 'किंग मेकर' की भूमिका निभाना अधिक उचित समझा। अपन आप ही सारा गणित निपटाकर उन्होन दढ़ता स घोषणा कर दी कि उन्होने इस प्रश्न पर ससद के सदस्यो, पार्टी के नताओ और अ य मत्रिया से विचार विमश किया है और उन्हे पता चला कि वे सभी लालबहादुर शास्त्री को प्रधानमत्री बनाना चाहते है और चूकि यह चयन सवसम्मति से हुआ है, तो शास्त्री जी को भी कोइ आपत्ति नही है और शास्त्री जी भारत के प्रधानमत्री बना दिये गये।

और इसी प्रकार की घटना दोहराई गई फिर 19 महीने बाद, जब शास्त्री जी का अचानक ताशक द मे निधन हो गया और भारत को फिर एक प्रधानमत्री की दरकार आ पडी।

भारत के प्राय सभी प्रमुख मत्री तथा प्रमुख नता दिल्ली पहुच रहे थे, शास्त्री जी के दाह सस्कार म सम्मिलित हाने के लिए। काग्रेस अध्यक्ष श्री कामराज का भी मद्रास से आना था। उनके हवाई जहाज मे कुछ

विलम्ब था और हवाई जहाज की प्रतीक्षा म बैठ कांग्रेस अध्यक्ष ने मन ही मन अगला प्रधानमंत्री चुन लिया था।

परन्तु इस बार मोरारजी भाई किसी भी प्रकार के झांसे म आने वाले नहीं थे। पिछली बार तो उन्हें बहला दिया गया था पर इस बार तो वह अड हुए थ। साफ तौर से चुनाव होगा। उम्मीदवार थ मोरारजी भाई और कामराज के मन म चुना हुआ प्रत्याशी इंदिरा बहन'। और बचपन म दो अण्ड प्रति व्यक्ति का हिसाब स पाच जनो के परिवार के लिए आठ अण्ड का हल निकालने वाले कामराज का गणित इस बार भी चौकस उतरा और उनके प्रत्याशी को प्रधानमंत्री बना दिया गया।

फिर कांग्रेस के अध्यक्ष बने निजलिंगप्पा। और संयोगवश कांग्रेस के प्रतिक्रियावादियों का प्रभाव बढने लगा। राष्ट्रपति के चुनाव के लिए जिसे चुना जाना था उसकी ही कलई खुल गई। श्रीमती इन्दिरा गाधी सतर्क हो गई, उन्होंने श्री वी० वी० गिरि का नाम प्रस्तुत किया, कांग्रेस की एकता सकट मे पड गई। निजलिंगप्पा अपनी जिद पर अडे रहे उन्होंने जनता की नब्ज पहचानने से साफ इन्कार कर दिया जब कि जनता इंदिरा गाधी के पीछे थी। और कांग्रेस के दो हिस्से हो गये। नई और पुरानी कांग्रेस और बदकिस्मती म कामराज पुरानी कांग्रेस मे रह गये। यद्यपि उन्होंने हमेशा कोशिश की कि गलतफहमियों के बादल छटे और दोनो कांग्रेस फिर एक हो जाए।

उनके सामने तो नही, पर उनकी मृत्यु के पश्चात अवश्य तमिलनाडु की दोनो कांग्रेसो ने हाथ मिला लिया।

2 अक्तूबर, 1975 को विरदपट्टी का नत्तनमायकर कुदम्बम परिवार का लोहा जैसा मजबूत मर्द कुमारस्वामी थोडी बीमारी के बाद ही सहिष्णुता और भावात्मक एकता की विरासत छोड़कर चलता बना।

देश ने उसे 'भारत रत्न' से मरणोपरान्त अलंकृत किया। अलंकरण उनकी बहन ने प्राप्त किया।

मदर टैरेसा—1980
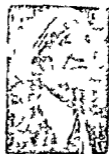
कलकत्ता म मौलाली क्षेत्र म जाडा गिर्जाघर है, उसक सम्मुख 54 ए आचाय जगदीश चन्द्र बोस रोड पर स्थित है मिशनरीज आफ चैरिटी', उसे मन्दिर कहा जाए तो उचित होगा क्योंकि उसमे एक देवी का वास है। जीवित, हाड मास की चलती फिरती देवी। उस देवी मे भरा हुआ है संसार भर का प्यार पीडा, करुणा और सेवा का महासिन्धु—मानवता के व्यापकतर उस पक्ष के प्रति जो पीडित है त्रसित है, शोषित है और उपेक्षित उन चन्द लोगो के हाथो, जिन्हे अपने अतिरिक्त किसी गैर की चिन्ता नही है, जिनका दृष्टिकोण नितान्त सिकुड गया है, जिनका सोच मकडी के समान स्वकेन्द्रित हो चुका है कि उन्हे अपने दायरे से बाहर बिल्कुल नही दिखाई देता, और न वह कुछ सोच सकते हैं। देना उन्होने कभी सीखा नही और पाने के अतिरिक्त कुछ सोचा नही।

कहते है, प्यार की कोई सीमा नही होती, राष्ट्रीयता नही होती, धर्म नही होता, सम्प्रदाय नही होता। होता है केवल कर्म और उसे प्रेरित करने वाली भावना। इसी कथन को सत्य प्रमाणित किया जाता रहा है समय-समय पर, जब जब प्रात स्मरणीय विभूतियो ने जन्म लिया और इस ससार की सारी पीडा आत्मसात कर ली—उन विभूतियो को हम कृष्ण, बुद्ध ईसा, मोहम्मद, लेनिन व गाधी के नामो म जानते आए है और ऐसी ही महान विभूतियो मे जुडा है नाम एक और मदर टैरेसा।

यूगोस्लाविया के स्कोप्जे नामक छोटे से नगर मे अब से बहत्तर वर्ष पूर्व 27 अगस्त, 1910 को एक अल्बेनियन कृपक दम्पति के घर मे एक

बालिका का जन्म हुआ जिसका नाम रखा उन्होंने एग्नस गोनक्शा वेजविशहू । माता पिता की धार्मिक प्रवृत्ति का प्रभाव बालिका एग्नस पर आरम्भ से ही पडा और बारह वष की अल्पायु से ही एग्नस किसी अनात पुकार की ओर आकर्षित होन लगी थी, वह खोजने लगी थी वह महासुख जो कभी कम नही होता और जो कभी क्षय नही होता अपने नगर के गिरजे म जाकर उन्ह वह अज्ञात पुकार और स्पष्ट जान पडती थी। उनके पादरी वह पुकार स्पष्टतर करत और एग्नेस को लगता कि उन्ह कही चला जाना चाहिए, चला जाना है उस ओर जहा वह अज्ञात परन्तु स्पष्ट आवाज सकेत कर रही है क्योंकि वहा ही वह दिव्य, महासुख उपलब्ध होगा।

30 दिसम्बर 1925 को उनके देश के कुछ लोग सेवा-काय के लिए भारत की ओर चले गय जहा उन्हाने कलकत्ता चुना अपनी सेवा का काय क्षेत्र, उनम से कुछ के पत्र आते और एग्नेस को लगता कि वह आवाज उसी ओर सकेत करती आ रही है और उन्होन भी निश्चय कर लिया कि वह भी उसी दैवी पुकार के प्रतिउत्तर म अपना समस्त जीवन मानवता की सवा मे लगा देंगी।

"प्रसन्न ह वह लोग जिनकी सबसे बडी इच्छा यह है कि प्रभु द्वारा अपेक्षित काय करें

प्रभु उन्ह सम्पूण सतोष प्रदान करेंगे"—मथ्यू 4 5

वह अपने माता पिता को अत्यन्त प्यार करती थी फिर भी उनसे भी व्यापक और महान थी सम्पूण मानवता पीडित, त्रपित अपेक्षित जिसके लिए उन्हे बुलाया जा रहा था और वह अपने अट्ठारवे वष म भगवान के समक्ष समर्पित हो गईं। "यह सुन्दर पुष्प तोड लो प्रभु ! देर होगी तो भय है कि कहीं यह धूल मे न झर जाए और तेरी माला मे गुथने से वचित रह जाए। अपने हस्त स्पश का सम्मान दो और तोड लो मेरे प्रभु !!"

एग्नेस एक वर्ष आयरलैण्ड के रथफनहैम म लारेटो सघ मे शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात और लोरेटो मे दीक्षित होकर 1929 म बगाल म सेवाकाय के लिए चुन ली गइ। दो वष तो उन्हाने केवल प्रायना चिन्तन

और अध्ययन म विता दिय। तत्पश्चात वह टरसा का नाम धारण कर अपने इच्छित क्षेत्र म आ गइ।

सबस पहले सिस्टर टैरसा को अध्यापन काय सौंपा गया। कलकत्ता की मुग्गी झोपडी क्षेत्र म स्थित सत मरीज हाई 'स्कूल म भूगोल पढाने के काय स अपना नया मिशनरी जीवन आरम्भ किया सिस्टर टरेसा न। कालान्तर म वह उस स्कूल की प्रधान अध्यापिका भी हो गई थी, परन्तु सम्पूण विराम वह नही था।

10 सितम्बर 1946 का दिन था वह, सिस्टर टैरेसा छुट्टिया मनाने दार्जिलिंग जा रही थी रल स। रल की खिडकी स वह न्ख रही थी रेलवे लाइन के पास ही बिखरी हुई कीडे मकोडो की जिन्दगी बिताने वाले असहाय पीडित वचित, उपक्षित—स्त्रिया जिनके तन पर मात्र लज्जा ढाक्न क लिए कपडा था—बच्चे, जिन्हें इसकी भी आवश्यकता नही थी और पुरुष—अध नग्न उन्ह दखकर आश्चय होता था कि वे सब जीवित हैं ता क्या, कैंस। स्वास्थ्य शब्द का अथ उन्ह जन्म से ही नही मिला। उनके लिए 'स्वास्थ्य' का अथ था 'जीना' सिफ जीना—मरने तक जीना। भूख उन्ह विरासत म मिली थी। रोग उनके भाग्य का सयोग था। पीडा उन्ह प्रारब्ध की उपलब्धि स्वरूप मिली थी। उपक्षा से पूरी तरह से समझौता कर लिया था उन्होंने और उन सबका निदान उन्हें कभी स्वप्न मे भी नहीं सूझा था—और वह सब दृश्य भाग रह थे साथ साथ उस रेल की खिडकी स लगे, सटे जहा बैठी थी मदर टरेसा और जा रही थी दार्जिलिंग छुट्टिया बिताने आराम से। उन्ह रेल की गद्देदार सीट चुभने लगी असख्य बिच्छुओ क डका के समान।

प्रसन्न ह वह लोग जो शोक स तप्त ह।
प्रभु उन्ह सम्वेदना प्रदान करेंग"—मथ्यू 5 2

वह द्रवित हो उठी। उन्हे लगा, जसे वह उपक्षित लाग उनसे करुणा की भिक्षा माग रहे थे। उनके लिए कुछ करने के लिए उन्ह अपने 'बडो' से और रोम से आज्ञा लेनी थी, अन्तुरन्त उन्हाने अपने निणय के सम्बन्ध म अपन स 'बडा' तथा रोम की मुक्ति स्थि और कलकत्ता स्थित तत्कालीन कलकत्ता के आकविशप पैरेरा से कान्वेन्ट से बाहर रहने की अनुमति मागी

ताकि वह उस पीडित व उपेक्षित जन समुदाय की सेवा भली भांति कर सकें। वह चाहती थी कि गरीबो को वह सभी वस्तुए मुफ्त उपलब्ध कराई जा सके जिन्ह धनी खरीद सके और दे सके। आर्कविशप परेरा ने सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी और रोम से भी पवित्र पिता, पोप पियुस XII ने भी उत्तर वापसी डाक से सिस्टर टरेसा को बाहर जाने की अनुमति के साथ भिक्षुणी बन रहने तथा कलकत्ता के आर्कविशप की आज्ञाओ के अन्तर्गत धार्मिक जीवनयापन करते रहने का भी आदेश प्रेषित किया और सिस्टर टेरेसा के सम्मुख सेवा का विस्तृत आकाश स्वत खुलता चला गया परत दर परत। उन्होंने लारेटो के लिबास के स्थान पर सफेद भारतीय साडी पहनना चुना जिस पर चौडी एक पट्टी और उसके ऊपर दो पतली नीली पट्टियां का बार्डर था, पैरो मे चप्पल धारण की और कंधे पर लगाया क्रॉस—भगवान ईशू की सलीब पर बलिदान मुद्रा म टगे रहने का—उन्होने भी तो मानवता के लिए ही वह अपार वेदनामय कष्ट सहा था।

"प्रसन्न ह वह लोग जिन्ह मृत्यु दण्ड मिलता है
क्योंकि वह वही करते ह जो प्रभु चाहता है"—मथ्यू 5 7

अपने नये काम को निपुणता प्राप्त कर पाये, इसलिए वह पटना म 'अमेरिकन मडिकल मिशनरी सिस्टर्स' मे शामिल हो गइ जहा उन्होंने तीन महीने का प्रशिक्षण प्राप्त किया 'नर्सिंग' पाठ्यक्रम का एक वर्ष पश्चात 1948 म एक निजी घर मे अपना सर्वप्रथम स्कूल खोला जिसम झुग्गी झोपडी के असहाय बच्चो को लिया।

कलकत्ता म तीन हजार स भी अधिक झुग्गी झोपडी आबाद हैं परन्तु कलकत्ता म रहने वाले धनाढय पूजीपतियो क ध्यान म शायद तीन बार भी इनके बार मे विचार नही आया होगा और यदि आया भी होगा कभी तो यह ही बहुत गन्द है'! कलक है मानवता के नाम पर यह लोग !! पता नही इनका इन्तजाम क्यो नही करती सरकार !!! खुद तो मर ही रहे है 'अपनी सडी टूटी दुर्गन्ध से हम भी मारकर ही रहेगे !!' परन्तु कलकत्ता की ऊची आलीशान अट्टालिकाओ मे रहने वाले—सिल्क के कुर्ते, सोने क बटन और प्रत्येक उगली म हीरे पन्ने की जडी अगूठिया और चुन्नटदार

महीन फिल्ले की धोती व पाव म बढिया स्लीपर पहनने वाले वह अमीर शेवरलेट और इम्पाला म घूमने फिरने वाले इतना सोचने अथवा बडबडा लेने के अतिरिक्त कुछ नही करते माना इतना कुछ सोच लेने स ही उनका फज पूरा हो जाता है—ज्यादा पिघला किसी का मन तो किसी समाज सवी सस्थान को द दिया दान ताकि समाज म प्रतिष्ठा बनी रह विधायक अथवा ससद बनने का यदि शौक चराया कभी, तो उस समय उस 'प्रतिष्ठा' को भुना लिया जा सके।

परतु वह महिला जो इस देश म जन्मी नही, पली नही बडी नही हुई इस कलकत्ता म आकर मानवता के उस कलक को कलेजे स लगाने के लिए यूगोस्लाविया से यहा आ गई।

सबसे पहले मदर टैरेसा न तेलजला और मोतीझील नामक दो गन्दी बस्तियो मे प्रयास किया अपना सेवा काय शुरू करन के लिए। वहा उन्ह एक सज्जन मिल गये—श्री माइकल गोम्स। सरकारी कमचारी थे। उन्होने आगे बढकर अपना निवास स्थान मदर टैरेसा को समर्पित कर दिया स्कूल चलाने के लिए। उन्होने आस पास की झोपडी पट्टियो से लगभग इक्कीस बच्चे एकत्रित किये और उन इक्कीस बच्चो से स्कूल का श्री गणेश किया गया। दूसरे दिन बीस बच्चे और जुड गय। प्रतिक्रिया काफी उत्साहवधक रही। उस रात मदर टैरेसा ने अपनी डायरी मे लिखा था—

'जो बच्चे साफ नही थे मैंने उन्हे नहलाया धुलाया। उन सभी को साफ रहन की शिक्षा दी और पढाया भी। ब्लक बोड का काम हम लागो न फश स लिया है धरती पर ही लिख लिख कर ही उन धरती के ही बच्चो को अक्षर-बोध कराया है सिलाई की क्लास के बाद हम सब उन्ह देखन गये जो बीमार ह और उस शुभ व उत्साहवधक आरम्भ के लिए लाख लाख बार कृतज्ञता व्यक्त की उस प्रभु के प्रति जिसने बुलाकर उन्हें यह काम सौंपा था।"

धन की समस्या ने कभी भी मदर का सेवापथ नही रोका। वह जब इस काम के लिए निकली थी तो केवल पांच रुपये थे उनके पास परतु उन पाच रुपया के अतिरिक्त एक और अनोखा धन था उनके अपने ईशू का अपने प्रभु का। उन्होंने स्वय से कहा था,

प्रभु की सत्ता और उनकी एकात्मकता पर मन स विश्वास कर लो फिर दखो, सारी चीजे स्वत ही तुम्ह मिलती चली जाती ह अत भविष्य का चिन्ता मत करो भविष्य तो स्वय अपना प्रबन्ध करके आयगा ।" "जब तक अपन वरिष्ठो पर निर्भर रहते हो, तब तक स्वय को चिन्तामयी परिस्थितियो से उलझा हुआ पाते हो " बीस बच्चो से जमीन का ब्लक बाड बनाकर शुरू करने वाला स्कूल आज इतना बढ गया है कि उसम लग भग छ सौ बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं और इसीलिए जसा उनके एक प्रशसक श्री मालकम मुग्गेरिज ने कहा था "जब मैं कलकत्ता के बारे म सोचता हू और उसकी विचित्र परिस्थितियो के सम्बन्ध मे सोचता हू तो वह अत्यन्त अदभुत लगता है कि एक व्यक्ति' केवल बाहर निकलता है और उन परिस्थितियो से निपटने का फैसला कर लेता है" इसी सदभ म मदर टेरेसा ने समझाकर कहा था, 'यह सब 'वही'करते है, मैं नही। मुझे इसका पूरा विश्वास हो गया है और इसीलिए मैं किसी स क्या डरू मैं जानती हू कि यह जो कुछ भी कर रही हू मेरा थोडे ही है। उनका ही काय है यह सब। मेरा होगा तो मेरे मरने के बाद यह भी समाप्त हो जाएगा पर यह काम तो रहेगा मर मरन के बाद भी ।"

एक दिन मदर कलकत्ता की भीड भरी सडक से होकर जा रही थी कि तभी उन्होंने एक स्त्री का सडक पर ही एक ओर पडे हुए पाया और उस स्त्री के शरीर पर चीटिया लगी हुइ थी उसकी उस वीभत्स दशा को देखकर मा द्रवित हो गइ। उन्होंने उस स्त्री को उठा लिया और एक यान मे डालकर सीधी पास के एक हस्पताल म जा पहुची। परन्तु यह क्या? उस स्त्री को लेने के लिए डॉक्टरो ने मना कर दिया, नर्सो न छून तक स इन्कार कर दिया। किन्तु मा भी दढता स जम गइ और वह वहा से तब तक नही हटी जब तक हस्पताल म उस स्त्री को भरती कर नही लिया गया ।

इसी प्रकार उन्होने कलकत्ता के फुटपाथो पर लोगो का अत्यन्त करुणा जनक एव अमानवीय ढग व स्थिति म मरते दखा था, जबकि कलकत्ता के किसी अन्य स्वस्थ व्यक्ति को इसकी चिन्ता कभी भी नही हुइ। मदर टरसा नगर पालिका के अधिकारियो स मिली और फुटपाथो पर कीडो स बिल-

बिलात हुए मानवो का रखन के लिए कोई स्थान की माग की ताकि कम से-कम वह लाग मर ता शान्ति से मरें स्वास्थ्य अधिकारी मा का काली मा के मन्दिर ले गए और वहां एक धमशाला दिखाई जहा लोग पूजा-अचना करने के पश्चात आराम किया करते थे। वास्तव म वह भवन खाली ही था और स्वास्थ्य अधिकारी ने मा से पूछा कि 'क्या उन्ह वह स्थान स्वीकाय हो सकेगा।' अधा क्या चाहे दो आखें मदर टॅरसा ने तुरन्त स्वीकार कर लिया वह रिक्त स्थान। चौबीस घटो के भीतर ही वह अपने रोगियों को ले आई और निस्सहाय, पीडित और मृत्यु के निकट पहुच हुए रोगियों के लिए एक 'घर' का रूप द दिया काली मा के चरणो म पडे उस रिक्त स्थान को। नाम रखा उस 'घर' का निमल हृदय'।

ससार म ऐसे भी लाग ह जिन्हे केवल इस बात का शौक है कि अमुक वस्तु अमुक व्यक्ति अथवा समाज, समुदाय उनका है, चाहे उस वस्तु, व्यक्ति, समाज अथवा समुदाय की स्थिति कितनी भी बिगड क्या न जाए शाचनीय हो जाए उन्हे इसस कोई सरोकार नही, बस यदि चिन्ता है तो इतनी कि उनके 'स्वामित्व' पर आंच न आ पाए और ऐसे खाखले तथा *कथित 'स्वामी' प्रत्यक देश समाज अथवा समुदाय में मिल जाते हैं* इसी प्रकार की घटना काली मन्दिर मे भी तब घटी जब निमल हृदय की निमल रश्मिया चारा आर शीतलता फैलाने लगी और मा नित नये रोगी का शाति और 'सुन्दरता स मरने के लिए काली मां के चरणो मे लाने लगी। सहसा कुछ सकुचित तथा कट्टरपथी, पाखण्डी हिन्दुओ को आभास हुआ कि उनका 'धम नष्ट हो रहा है', उनकी काली मा अपवित्र की जा रही है एक विधर्मी द्वारा

बजाय इसके कि वह स्वय भी इसी प्रकार का सेवा काय करते, उन्होंने इसकी विपरीत दशा म कदम उठाया और मदर टॅरसा को उनके 'निमल हृदय', मन्दिर की धमशाला से हटा लेने के लिए आवाज बुलन्द कर दी। यद्यपि निमल हृदय की स्थापना नगर निगम की सम्पूर्ण सहमति से की गई थी परन्तु वहा तो उसके विरोध म प्रदशन किये जाने लगे, नारबाजी शुरू हो गई—

और एक दिन मा ने उन प्रदशनकारियो से साफ कह दिया, '

आप मेरे प्राण लना चाहते है तो खुशी से ले लीजिय पर कृपया इन बेचारो को परेशान मत कीजिय इन्हे शाति से मर लेन दीजिये ।"

एक बूढा पुजारी कुछ कहने क लिए बढा—उसका स्वास्थ्य भी अच्छा नही था मा ने उस स्नेह से अपन पास बैठा लिया और शात रहने के लिए विनय की ताकि वह स्वस्थ रहे चीखन चिल्लाने से उसकी हालत और बिगड जायगी मा के इस व्यवहार से कुछ शाति का वातावरण लौटा प्रदशनकारी भी मौन हो गय और वापस हो गये। मा न उस बूढे और अस्वस्थ पुजारी की सेवा उनके जीवन पयत की और आज मन्दिर मे कोई विरोध नही है, कोई भेद भाव नही है। मदर टैरेसा, मा काली का एक अग बन चुकी ह, निमल हृदय नित विशाल होता जा रहा है मदर का कहना है, 'तीस वर्षों से मैंने मा काली के मन्दिर म उनकी सेवा की है और अब स्थिति यह है कि मा काली का सम्पूण सरक्षण मुझे प्राप्त है '

और निरन्तर सेवा काय चल रहा है। आरम्भ म मदर और उनकी सहचरी सिस्टरें कलकत्ता की सडको पर या गलियो म पडे हुए किसी भी रोगी को उठा लाती थी और अपने निमल हृदय म रखकर उसकी चिकित्सा-उपचार करती थी या तो वह स्वस्थ हो जाता है नही तो वह शाति से मर तो सकता है। जीवन भर जितन अभावो और अपेक्षाओ को सहा है, उसे यदि अपनी अन्तिम घडियो मे शाति, स्नेह और अपनत्व मिल जाए तो फिर उसे 'स्वग' आकाक्षा क्यो हो अन्तिम समय ही, कम स कम उसे यह आभास तो हो जाए कि वह भी उसी परमपिता परमात्मा की सन्तान है जिसने ससार की अन्य सुन्दर और वभवशाली वस्तुओ का निर्माण किया ह। उन्हे भी उतना ही स्नेह और अपनत्व मिलता है जितना किसी और को। 'निमल हृदय' म उन पर स्नेह की वर्षा हो जाती है। अपनत्व का स्नेहपाश प्राप्त होता है। उन्हे हाथो स साफ किया जाता है, नहलाया जाता है। उनके घावो पर मरहम-पट्टी की जाती है दवा दारू दी जाती है बिलकुल उसी तरह जैसे किसी का उसके अपने परिवार म प्राप्त होती है अपनी मा के हाथो स अपनी बहन के प्यार प्यार हाथो स। अन्त म उन्हे भगवान के अस्तित्व का विश्वास दिलाया जाता है— भगवान आइन और बरबस सन डेविड के अमर गीत की पक्तियो वातावरण म निराहित होने लगती हैं—

प्रभु मेरा प्रकाश है, मेरा मुक्ति बोधक है
मुझे किसी का भय नहीं रहेगा।
सभी संकटों से मेरी रक्षा करते हैं प्रभु,
कभी भी नहीं डरूंगा मैं ।
मैंने एक चीज चाही है प्रभु से
केवल चीज मांगता हूं मैं।
जीवन भर रहूं प्रभुगृह में ही मैं
ताकि उनका मार्ग दर्शन प्राप्त हो—डविड 27

निमल हृदय म बच्चा को भी रखा जाता ह उन्ह पढा लिखाकर होन-हार बनाया जाता है। उन्ह विश्वविद्यालय स्तर तक अनुदान के सहयोग म पढाया जाता है। कुटीर का अन्य प्रकार क रोजगारो का प्रशिक्षण दिया जाता है। उनम से कुछ बच्चा के अच्छे, खाते-पीते परिवारो म सम्मान-पूवक स्थान मिल जाता है। वह वहा गोद ले लिए जाते है। कुछ सम्मान-पूवक कोई काम करने लग जाते हैं और कुछ वहा शिशु भवन म ही रहकर सेवा-काय अपने जीवन का उद्देश्य व लक्ष्य बना लेते ह और निमल हृदय म सेवा करने लग जाते है।

कुष्ठ समाज का भयानकतम कलक है। मदर ने इस कलक को भी अप-नाया है और निमल हृदय म इसकी व्यवस्था की ह। 1957 म पाच कुष्ठ रोगी आये थ क्याकि उन्हें समाज ने बहिष्कृत कर दिया था और उनके पास सिवाय इधर उधर पडे रहने क और भिक्षा मागने क और कोई चारा नही रह गया था। परन्तु मा ने उन्ह स्वीकारा। धीरे धीरे रोगिया की सख्या बढी और मा ने सभी को अपने 'घर' मे स्थान दिया। उनका उपचार किया ताकि समाज म वह पुन प्रवेश पा सकें। कालातर उनके इस अद्भुत मान-वीय काय की सहायता के लिए अनेक डॉक्टर भी आ गये जसे एक डॉक्टर सेन। मा ने स्वय सीखा और अन्य सिस्टरो को भी शिक्षण दिलवाया ताकि सुचारु रूप म उन कुष्ठ रोगिया की सेवा चिकित्सा परिचर्या की जा सके। सरकार ने भी सहयोग का हाथ बढाया और चौतीस एकड जमीन दी है जहा शान्ति नगर स्थापित किया गया है, जिसम कुष्ठ रोगिया के इलाज के साथ साथ उन्ह समाज मे पुन: प्रस्थापित करने के लिए कुछ काम धधा भी

सिखाया जाता है।

इसके अतिरिक्त मदर ने परिवार नियोजन पर भी विशेष ध्यान दिया है और मदर तथा उनके अधीनस्थ काय करने वाली सिस्टस जनता म पहुचकर प्राकृतिक ढग से परिवार नियोजन करने की ओर प्रेरित करती हैं। उन्ह स्वय भी इस विद्या म प्रशिक्षण और अनुभव ज्ञान प्राप्त होता है। 1970 के सितम्बर म पहला केन्द्र खुला था। इस समय उस केन्द्र से चार सौ स भी अधिक स्त्री पुरुष लाभ उठाते है।

इसके साथ ही, ऐस दम्पतियो को भी सहयोग दिया जाता है जिन्ह सन्तान नही है। एक महिला बुरी तरह से परेशान थी, दस वष हो गये थे विवाह हुए, पर सन्तान का मुख दखना उस नसीब नही हुआ था। वह मदर के केन्द्र म पहुची। उसकी स्थिति का सम्पूण अध्ययन किया गया और तीन महीना क लगातार उपचार और कन्द्र की बताई गई प्रक्रियाओ के अनुसार चलन पर वह महिला गभवती हो गई। खुशी से वह फूली नही समाई और कइ मीलो की यात्रा करके वह महिला मदर टरेसा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने पहुची—"आपके ही कारण हमारा परिवार बिखरने से बच गया मा! अब हम, जब हम चाहगे, सतान हो सकती है " उसने मदर टेरेसा से करबद्ध प्रसन्नचित्त होकर कहा था

और जो दम्पति केन्द्र नही पहुच पाते है, उनकी सेवा के लिए सिस्टस स्वय पहुचती है और उन्हे सही सलाह दती है। मदर टैरेसा क इस प्रयास से परिवार नियोजन के अभियान को काफी बल मिला है।

उनका सेवा काय कलकत्ता से आरम्भ होकर वही सीमित नही रहा। भारत के अनेक नगरो के अतिरिक्त विदेशो मे भी फला। नेपाल पाकिस्तान, मलाया यूगोस्लाविया, सयुक्त राष्ट्र माल्टा, इग्लैंड आदि अनेक देशो म भी मदर टैरसा की सेवा गतिविधिया चलाई जा रही ह।

और इन सबके लिए कृतज्ञता व्यक्त करन के लिए मदर टेरेसा को विभिन्न तरीको से सम्मानित किया है। 18 अक्तूबर 1979 को नोबेल शाति पुरस्कार दिया गया जिसके अन्तगत उन्ह एक लाख अस्सी हजार की राशि प्रदान की गई। 31 अगस्त, 1962 का रोमन मग्सेव पुरस्कार, मनीला फिलीपाइन्स म अन्तर्राष्ट्रीय सदभाव के लिए पुरस्कार, 6 जनवरी

1971 मे पोपजान शाति पुरस्कार अक्तूबर, 1971 म कनेडी अ तर्राष्ट्रीय पुरस्कार, 29 अक्तूबर, 1971 को अमरिका के कैथोलिक विश्वविद्यालय स डॉक्टर आफ ह्यूमन लैटस की मानद उपाधि, भारत स अ तर्राष्ट्रीय सद-भाव के लिए जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार भारत से ही 'भारत रत्न इसस पूव भारत म ही अप्रल, 1962 मे 'पद्मश्री', विश्वविद्यालय स सर्वोच्च सम्मान— दशी कोत्तम' आदि से सम्मानित किया जा चुका है जबकि यह सम्मान शृखला समाप्त नही हुई है ।

इन सम्मानो क अतिरिक्त भारत की प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने मदर टेरेसा को भारत भ्रमण के लिए वायु तथा रल से नि शुल्क सुवि-धाए दे दी हैं ताकि उन्ह मानव सेवा मे किसी प्रकार का विघ्न न पड़े ।

मदर टेरेसा ने सभी पुरस्कारा का केवल इसीलिए स्वीकार किया है और भविष्य मे भी, आशा है, करेंगी, कि इन पुरस्कारो अथवा सम्माना से मिली धनराशियो से उन्हे अपन सेवा अभियान मे बडा सहयाग मिलता है । धन तो उन्हे चाहिए ही जिसकी स तान की सवा क लिए उन्ह धन की आवश्यकता है । वही ता देता है—

माध्यम तो कोई-न कोई बनाना ही पडता है 'उसे ।

आचार्य विनोबा भावे—1983

आंध्र प्रदेश के नलगुण्डा जिले में एक गांव है पोचमपल्ली। वहां आचार्य विनोबा भावे नक्सलवादियों की गतिविधियों से प्रभावित हरिजनों की दशा का सर्वेक्षणार्थ रुके हुए थे कि एक दिन कुछ निर्धन हरिजन उनके पास पहुंचे और अस्सी एकड़ भूमि की आवश्यकता व्यक्त की ताकि उनकी रोटी चल सके। विनोबाजी ने उसी सायं प्रार्थना सभा में अस्सी एकड़ भूमि की बात रखी। एक अमीर किसान उठा और बोला "मेरे पास पांच सौ एकड़ जमीन है श्रीमान! मैं उसमें से सौ एकड़ जमीन भेंट करने के लिए तैयार हूं।"

विनोबाजी ने सहर्ष उस भेंट को स्वीकार कर लिया और तभी से सूत्रपात हुआ उनके बहुचर्चित, लोकप्रिय, बहुजन हिताय भूदान आंदोलन का। विनोबाजी तेलंगाना में इक्यावन दिन रहे और उस अवधि में उन्हें 12,201 एकड़ भूमि भेंट की गयी जिसे उन्होंने भूमिहीनों को वितरित कर दिया ताकि उनकी रोटी चल सके।

फिर वह अपने आश्रम वापस चले गये। गांधीजी ने कहा था जब तक देश में एक आंख भी आंसुओं से गीली है, तब तक सच्ची स्वतंत्रता नहीं आएगी। साम्यवादी भी गरीबों के अधिकारों तथा समानता के लिए (रक्तिम) क्रांति की बात करते हैं, परन्तु पोचमपल्ली में उस सायं की प्रार्थना सभा की घटना! और फिर तेलंगाना में प्राप्त भूमि का वितरण!! विनोबाजी ने सोचा कि यदि इसे पूरे देश में चलाया जाए तो? उनकी

आत्मा मे स्वीकारा उस और अस्सी दिन ठहरने के पश्चात् विनोबाजी दशव्यापी (भूदान) पद यात्रा पर निकल पडे।

विनोबाजी 27 महीने बिहार मे ठहरे, जहा उन्हें जयप्रकाश नारायण का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। जे० पी० ने तो विनोबाजी के भूदान यज्ञ अपना 'जीवन दान ही कर दिया और अहिंसक क्राति मे विनोबाजी को लगभग तीन लगभग तीन लाख छोटे बडे भूमिस्वामियो से 22,23,47535 एकड भूमि प्राप्त हुई। विनोबाजी ने सारा देश अपने पैरो से नाप डाला। लगभग साढे वर्षों की अवधि मे। वे चलते रहे लोग उनका अनुकरण करते रहे भूमिस्वामियो ने उनकी थाली मे जितनी भूमि डाली उतनी ही उन्होने भूमिहीनो मे बाट दी। 40,000 मील की पद यात्रा की उन्होने। देश के भिन्न भिन्न प्रान्तो के लगभग 4,000 गावो और नगरो के लगभग 250 लाख भारतवासियो से भेंट की और 16,77 71। 6 हेक्टर भूमि दान मे प्राप्त की जिसमे से लगभग एक तिहाई भाग 5,1,4,294, हैटर भूमि वितरित कर दी गयी। शेष दो तिहाई का वितरण किया जाना शेष है क्योकि कुछ भाग काश्तकारी के योग्य नही है और कुछ झगडे' मे पडी है।

विनोबाजी की पदयात्रा सदा सुलभ अथवा निष्कटक नही रही। कई बार ऐसा हुआ, जब उन्हें धर्मा ध, पाखण्डियो और रूढिवादियो का कोप-भाजन होना पडा। पर तु विनोबाजी भी अपनी बात के पक्के थे। वह उस मन्दिर मे स्वय नही गये जिसके द्वारा हरिजनो के लिए ब द कर दिए गये थे। वह बिहार की यात्रा कर रहे उन्हें वैद्यनाथ धाम के प्रसिद्ध पवित्र स्थान पर आमन्त्रित किया गया और उन्हें विश्वास दिलाया गया कि जितने भी हरिजन उनके साथ होंगे उन्हें भी प्रवेशानुमति दी जाएगी। वह मदिर पहुचे। उनके पीछे अन्य भक्तजनो एव स्वयसेवको की टोली भी थी, जिसमे स्पष्ट है हरिजन भाई-बहने भी थी। विनोबाजी अपनी टोली के साथ कुछ पग आगे बढे होंगे कि मन्दिर के पण्डे अपने लठैतो के साथ उन पर टूट पडे। विनोबाजी और उनके निहत्थे स्वयसेवको पर उन लठैत गुण्डो की लाठिया बरसने लगी। विनोबाजी के कान पर भी एक भरपूर प्रहार पडा लाठी का। वह घायल हो गये और सदा के लिए श्रवण शक्ति गवा बैठे। यह घटना है 19 सितम्बर, 1953 की।

आदि शंकराचार्य की तरह आचार्य विनोबाजी ने अपनी पदयात्रा की अवधि देश के विभिन्न भागों में आश्रमों को स्थापित किया। यह आश्रम बोध गया में समन्वय आश्रम, पठानकोट में प्रस्थान आश्रम, इन्दौर में विसर्जन आश्रम, बंगलौर में विश्वनीड़म आश्रम और असम के लखीमपुर जिले में मैत्री आश्रम के नाम से जाने जाते हैं और अत्यन्त रचनात्मक कार्य कर रहे हैं। 'मैत्री' नामक एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है, ब्रह्म विद्या मन्दिर से।

कालान्तर में उन्होंने अपने परमधाम आश्रम को ब्रह्म विद्यामन्दिर में परिवर्तित कर दिया और ब्रह्मचारणी महिलाओं के हाथों सौंप दिया उसे व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए। विनोबाजी ने 'जयजगत' का नया नारा दिया जिससे उनके दृष्टिकोण का पता चलता है कि उन्होंने देश प्रदेश की सीमाओं को तोड़कर विश्वबंधुत्व की भावना लेकर कितना व्यापक सोच था उनका।

बापू के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में विनोबाजी ने बापू की परम्परा को देश में न केवल जीवित रखा, बल्कि उसे आगे भी बढ़ाया। अहिंसा और शान्ति के परम उपासक व प्रचारक व बापू के पदचिह्नों पर चलकर विनोबाजी 'शान्ति सेना' को जीवित रखा और उसे आगे भी बढ़ाया, शान्ति सेना ने विशेष तौर से साम्प्रदायिकता की आग से जूझने में एक खास भूमिका निभाई—राजनीति से हटकर।

अपने पदयात्रा अभियान के दौरान विनोबाजी ने चम्बल की घाटी में डाकुओं की ज्वलंत समस्या को हाथ में लिया और बिल्कुल गैर सरकारी तौर पर उसे सुलझाने का बीड़ा उठाया। विनोबाजी उस विकट समस्या की जड़ तक गये। बरसों से चली आ रही उन परिस्थितियों के सामाजिक व मनोवैज्ञानिक पक्ष को समझने की कोशिश की। कोई भी व्यक्ति डाकू शौक से नहीं बन जाता है। कुछ कारण और विवशताएं उसे विवश कर देते हैं बन्दूक थामने के लिए। कहीं यह कारण किसी छोटी सी तकरार से आरम्भ होकर राई का पर्वत का रूप धारण कर लेती। तो कहीं समाज अथवा और कानून (पुलिस) द्वारा बात बढ़ाने को विवश कर देती है और एक समय आता है जब वह व्यक्ति रक्तपात और लूटपाट के उस घिनौने

पशे को छोडना भी चाहे तो उस पर थापी गयी थोथी 'आन' उसके पांव म जजीर बन जाती है और बीहडा म जीवन-भर भटकने पर मजबूर कर दती है। विनोबाजी ने उन्ही विवश 'गैर समाजी' मुजरिमो के सिरा पर महानुभूति का हाथ रखा। सहानुभूति और प्यार का भूखा आदमी पानी-पानी हो गया। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व राजस्थान की सीमाओ पर बिखरी हुई चम्बल घाटी के आस पास क्षेत्रा म दौरा किया विनोबाजी न और लगभग 22 डाकू सरदारा को शस्त्र त्यागकर सरकार के समक्ष स्वय को समपण कर देने के लिए तैयार कर लिया। उनम से बहुतो के सिरा पर तो इनाम तक घोषित किया हुआ था, हजारा का।

22 मई, 1960 भिण्ड मे 'शस्त्र से विदाई' का वह अनूठा समारोह आयोजित किया गया। विनोबाजी एक मच पर विराजमान थे। उनके साथ सरकार के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। पाश्व म महात्मा गाधी का विशाल चित्र सुशोभित था। मानो उन्ही के पावन आशीवाद तल किया जा रहा था समपण उन अहिंसक प्रवृत्ति का जिसने उन लोगो को न घर का छोडा था न घाट का। समस्त विश्व चकित था उस अनोखे समपण पर। ऐसी अनोखी घटनाए भारत म ही हो सकती हैं। इस अहिंसा के जादू भरे शस्त्र से जीत ली थी आजादी उस साम्राज्य से जिसमे सूय डूबता नही था।

महाराष्ट्र के कोलाबा जिले म स्थित गगोडा ग्राम म 11 नवम्बर, 1895 का चित्त पावन ब्राह्मण परिवार म विनोबाजी का जन्म हुआ था। उनके पिता श्री नरहरि राव बडौदा म कपडा तकनीक विद थ। उन्होंने ही खादी कपडे की तकनीक आरम्भ की थी जिसे कालान्तर मे ब्रिटिश सरकार ने अपने सिपाहियो की वर्दी के लिए चुना। विनोबाजी की माताजी श्रीमती रुक्मणी दवी अत्यन्त पुण्यात्मा एव धार्मिक महिला थी। सदा ही उनक मधुर कठ से मराठी सतो के पद्याश मुखरित होत रहत थे, चाह वह कितनी ही व्यस्त रही हो अपन गृह-काय म। विनोबाजी के भावी निर्माण म अपरोक्ष रूप स उनकी माताजी का अमूल्य योगदान रहा। वह विनोबा जी को विनय क नाम म पुकारा करती थी। किसे मालूम था कि रुक्मणी दवी का लाडला विनय आगे चलकर वास्तव म विनय की।

मूर्ति बन जाएगा।

आरम्भिक शिक्षा के पश्चात् बालक विनोबा को अपने पिता के पास बड़ौदा चला जाना पड़ा जहां 1913 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की और माध्यमिक (इण्टरमीडिएट) कक्षा में प्रवेश लिया। विनोबाजी बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे उनकी स्मरण शक्ति अत्यन्त विलक्षण थी। जो भी पढ़ लेते बिल्कुल चित्रवत याद कर लेते थे। बड़ौदा के प्रसिद्ध पुस्तकालय नित जाते थे और धर्म, साहित्य और इतिहास आदि की पुस्तकों का पारायण करते। इस सबके अतिरिक्त गणित में विशेष रुचि रखते थे। गणित की यथार्थता और सुस्पष्टता से वह बहुत प्रभावित थे और बाद में वही यथार्थता व सुस्पष्टता उनके जीवन चरित्र का अंग बन गयी।

परन्तु कॉलिज की पढ़ाई से उन्हें सन्तोष न मिला, क्योंकि उनका अन्तर कुछ और ही चाह रहा था और उनका मन विहग वह सब छोड़कर कहीं और ही जगह उड़ जाने के लिए तड़प रहा था।

और एक दिन उन्होंने अपने सारे प्रमाण-पत्रों को मोड़ा और अपनी मां के समक्ष रसोईघर में चूल्हे के हवाले कर दिया।

'यह क्या कर रहा है रे विनय?" उनकी मां ने पूछा।

'यह मेरे स्कूल व कॉलिज के सर्टीफिकेट हैं मां।

'तेरे काम नहीं आयेंगे?'

"काम नहीं आयेंगे मां, तभी तो इन्हें सही स्थान पर ही पहुंचा रहा हूं। मेरा रास्ता अलग है।"

और जिस 'अलग रास्ते' पर वह चले तो फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा और न ही अपने उस निर्णय पर पछताए।

काशी में उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। उसी समय महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय खोला। उद्घाटन भाषण देने के लिए मालवीयजी ने दक्षिण अफ्रीका से आए नये सत्याग्रही बरिस्टर मोहनदास करमचन्द गांधी को आमन्त्रित किया था। अपने उद्घाटन भाषण में गांधीजी ने भारत के सभी रजवाड़ों के राजों नवाबों से अपने हीरे जवाहरात बेचकर जन साधारण में आ मिलने का आवाहन किया। विनोबाजी ने गांधीजी का भाषण समाचार पत्र में दूसरी

सुबह पढ़ा तो तुरंत ही एक पत्र गांधीजी को लिखा और उनमें धर्म एवं राजनीति में सम्बंधित अपनी कुछ शंकाएं पूछीं। लौटती डाक से गांधीजी का उत्तर प्राप्त हुआ उन्हें जिसे पढ़कर जहां उनकी शंकाओं का समाधान मिला वहीं ही कुछ और प्रश्न जाग उठे। विनोबाजी ने वह प्रश्न लिख भेजे और फिर वापसी डाक से गांधीजी का उत्तर प्राप्त हुआ।

उनका बेचैन मन विहग और भी अधिक भड़क उठा। उन्हें लगा कि उनका लक्ष्य अब उनसे दूर नहीं था। उन्होंने फिर एक पत्र प्रेषित किया गांधीजी के पास और गांधीजी ने तुरंत लिखा कि विनोबाजी की सारी समस्याओं का समाधान पत्राचारों से नहीं मिलेगा, अच्छा हो यदि वह स्वयं गांधीजी से मिल लें।

और विनोबाजी पहली रेलगाड़ी पकड़कर गांधीजी से उनके नये-नये खुले कोचरब आश्रम में जा मिले। यह मिलन था—प्यासे का नदी-तट से, अतृप्ति का तृप्ति से समस्याओं का समाधानों से और शिष्य का उसके गुरु से। यह अद्वितीय शुभ दिन था 7 जून, 1916। विनोबाजी चले थे हिमालय शांति की खोज में और शान्ति उनके मन में घर कर चुकी थी। गांधीजी में उन्हें उस अथाह शांति के साथ साथ क्रांति की ज्वाला भी धधकती हुई दिखाई दे रही थी। देश की आजादी जो विनोबाजी के मन में एक चिंगारी बनकर सुलग रही थी, गांधीजी के सान्निध्य में आकर और भी तीव्रता से भड़क उठी थी।

6 अप्रैल, 1921 को गांधीजी के ही आदेशानुसार विनोबाजी ने साबरमती आश्रम से वर्धा आश्रम का संचालन संभाल लिया, और तब से 1947 तक विनोबाजी ने अपनी आत्मा की अनुसंधानशाला में स्वयं का 'शोध' किया। दो दशकों से भी अधिक अवधि में किया गया स्वशोध विनोबा जी को संतों की पंक्ति में बठाने भर के लिए पर्याप्त था।

विनोबाजी के मौन साधक ने गांधी जी द्वारा चलाए गए अनेक कार्यक्रमों में सक्रियता से भाग लिया। गांधीजी के खादी, ग्रामोद्योग, बेसिक शिक्षा तथा सफाई आदि रचनात्मक कार्यक्रमों पर विनोबाजी के एकाग्र सहयोग एवं तल्लीनता की अमिट छाप पड़ी है।

वर्धा आश्रम में पूरे ग्यारह वर्ष, आठ महीने और उन्नीस दिन रहकर

25 दिसम्बर, 1932 को विनोबाजी वर्धा नगर से दो मील दूर हरिजनों के गांव—नलवाडी चले गये। नलवाडी में वे अपने ही कते सूत के पारिश्रमिक पर ही जीवन निर्वाह करने लगे। पारिश्रमिक बहुत ही कम बन पाता था फिर भी विनोबाजी उसी में गुजारा करते थे। परिणाम यह निकला कि जुलाई, 1938 में बीमार पड गये। गांधीजी ने उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए किसी पहाडी स्थान पर कुछ समय बिताने के लिए सलाह दी परन्तु उन्होंने वर्धा से पांच मील दूर पवनार नदी के तट पर स्थित पवनार ग्राम के एक टीले को ही 'पहाडी स्थान' बना लिया। तीन महीने उस पहाडी स्थान पर रहकर विनोबाजी ने स्वास्थ्य लाभ कर लिया। वहां वह जिस कुटिया में रहे उसको नाम दिया परमधाम आश्रम जो उनका प्रमुख केन्द्र बन गया।

नागपुर ध्वज सत्याग्रह में बडे जतन से काय किया और 17 जून, 1923 में स्वयं को गिरफ्तार करवाकर बारह महीनों का कारावास भोगा। वह कारावास उनके जीवन का सर्वप्रथम जेल अनुभव था।

गोलमेज सम्मेलन की असफलता के पश्चात ज्योंही गांधीजी लंदन से बम्बई उतरे, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। विनोबाजी तब जलगांव में थे। वहां उन्होंने एक जन सभा में बोलते हुए अंग्रेज सरकार के प्रति ललकार कर कहा था, "अंग्रेजों का (अन्त) समय निकट आ पहुंचा है" साथ ही उन्होंने वास्तविक स्वराज्य स्थापित करने के लिए आपसी सहयोग के लिए आवाहन किया जिसके लिए उन्हें पुनः छः महीने की जेल यात्रा करनी पड गयी। जेल में अपने अन्य सत्याग्रहियों सहयोगियों के अनुरोध पर विनोबाजी ने नियम से प्रति रविवार गीता पर प्रवचन देना आरम्भ कर दिया। इन प्रवचनों को महाराष्ट्र के समाज सुधारक कथाकार साने गुरुजी[1] लिपिबद्ध

---

1 साने गुरुजी ने बाद में केवल इसीलिए आत्महत्या कर ली थी कि वह स्वतंत्र भारत में पनप रहे भ्रष्टाचार और सामाजिक कुरीतियों से समाज सुधार नहीं कर पाए थे और यह कहकर आत्महत्या कर ली थी कि जब मैं समाज सुधार नहीं कर सकता तो मुझे इस समाज में जीवित रहने का भी कोई अधिकार नहीं है। महाराष्ट्र तथा मराठी भाषा भाषी क्षेत्रों में अब भी उनकी स्मृति में साने गुरुजी 'कथा माला' के नाम से कथा गोष्ठियां आयोजित की जाती हैं। परन्तु समाज आज भी ज्यों का त्यों ही है बल्कि और भी अधिक भ्रष्ट।

करते गये गए और कालान्तर मे मराठी म प्रकाशित भी किया। फिर इस पुस्तक का अनुवाद हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य बीस भाषाओ म भी प्रकाशित किया गया।

विनोबाजी की राष्ट्रव्यापी ख्याति उस समय विशेष रूप से हुई जब गांधीजी ने द्वितीय विश्व युद्ध मे भारत को जबरदस्ती घसीट लेने के विरोध म अक्तूबर 1940 म व्यक्तिगत सत्याग्रह क लिए विनोबाजी को सर्व प्रथम सत्याग्रही के रूप म चुना।

17 अक्तूबर, 1940 को विनोबाजी न सत्याग्रह किया, स्वय को गिरफ्तार करवाया और तीन माह का कारावास भोगा। दूसरी बार पहले कारावास से दुगने समय के लिए और तीसरी बार एक वर्ष के लिए जेल यात्रा की।

कवल सात महीने पश्चात ही 'भारत छोडो' की 42 महाक्रान्ति के अन्तगत जब फिर देशव्यापी गिरफ्तारिया हुई तब विनोबाजी भी 9 अगस्त को अपने आश्रम से गिरफ्तार कर लिये गय।

तीना वर्षों का कारावास भोगने के पश्चात जब विनोबाजी अपन पवनार आश्रम लौटे, तब उन्होंने अपने को सम्पूर्ण रूप स ग्राम सेवा म लगा लिया। वह वहाँ स चार मील दूर सुरगाव मे जाकर सफाई का कार्य करते थे और इस प्रकार उन्होने अपने को राजनीति से पृथक कर लिया।

देश विभाजन क समय गाधीजी की तरह विनोबाजी न भी शरणार्थियो के पुनर्वास काय के लिए काय किया और तत्कालीन साम्प्रदायिक आग बुझाने का भी अथक प्रयास किया। लगभग दस महीने विनोबाजी ने दिल्ली, राजस्थान हरियाणा और पजाब मे जाकर वहा पुनर्वास काय किया। विशेषकर हरिजनो की दरिद्र अवस्था को सुधारने क लिए विनोबाजी ने उपयुक्त राज्यो के अतिरिक्त मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु आन्ध्र और केरल का भी भ्रमण किया।

अपन आश्रम लौटकर उन्होने 'कचन मुक्ति' अभियान चलाया जिसके

अन्तगत उन्होंन सवसाधारण से स्वय को कचन से मुक्त हो जाने का अनुरोध किया क्योंकि समाज की बहुत बड़ी बुराइ और अभिशाप का मूल कारण यह कचन (सोना, धन आदि) ही होता है। जिसके पास अधिक कचन है वह अधिक सोना द डाले ताकि उसे कचनहीनो मे बराबर बाट दिया जाए या जिन्ह उसकी उचित आवश्यकता है, उन्ह द दिया जाए। समाज को समानता के स्तर पर लाने का यह अनोखा अभियान उनका बना विनोबाजी का प्रसिद्ध भूदान आ दोलन का जब तेलगाना मे सहसा कुछ हरिजन अपनी झोली पसारकर खड़े हो गय थे अस्सी एकड जमीन क लिए ताकि उनकी रोटी चल सके उसी साझ प्राथना सभा म एक धनी किसान ने आग बढकर विनोबाजी को अपनी एक सौ एकड जमीन राजी खुशी स दे दी थी।

गाधीजी के न रहने पर देश को गाधीजी के स्थान पर एक आध्यात्मिक समाज सुधारक सतनुमा नेता की आवश्यकता पडी और उसन वह गौरव समर्पित किया विनोबाजी के चरणो मे आध्यात्मिक एव सामाजिक (कभी कभी राजनैतिक भी) गुत्थिया सुलझाने क लिए समय समय पर देश के नेता उनके चरणो म पहुचत रहे।

परन्तु, शायद, विनोबाजी को प्रदशनी की वस्तु की नाइ जीना स्वीकार नहीं हुआ। उन्होने महसूस किया कि अब दश को उनकी वास्तविक आवश्यकता नही है। और उन्होन निश्चय कर लिया कि वह अपने हाड मास के पिंजडे की तीलिया तोडकर अपन अनन्त मे जा मिलगे, उन्होने सब तज दिया। खाना, पीना दवा तक सब तज दिया प्रधानमत्री और राष्ट्रपति से लेकर साधारण स्वयसवक के अनुरोध को अनसुना कर दिया उन्होने। मन विहग तो याकुल था उड जाने को बिल्कुल तत्पर था लौटन को अपने अन त नीड म जा बसने क लिए।

अपने निर्वाण से कुछ वर्षों पूव विनोबाजी न जन धम का भी सूक्ष्म अध्ययन किया था और उन्ही की प्रेरणा से जैन धम के प्राय सभी विद्वानो ने अनेक धम ग्र थो का निचोड एक ग्र थ 'समण सुत्तम म एकत्रित किया

था। साथ ही विनोबाजी को उस ग्रन्थ म पूण रूप म सशोधन करने का अधिकार भी दिया था—क्या भगवान महावीर की ही प्रेरणा नहा थी कि उन्होंने अपना पार्थिव शरीर त्यागन का ढग जैन साधुओ के सथार का तरीका ही अपनाया और अन्त म भगवान महावीर के प्रयाण का ही दिन चुना—दीपावली का पावन पव।

15 नवम्बर, 1982 को जब सब समस्त देश उस निविड अधकार को पराजित करने मे लगा था, दीप घर-घर पर दीपावली सजाने मे व्यस्त था। तब विनोबाजी ने चुपके से बुझा दिया अपना जीवन दीप।

14 नवम्बर 1982 की रात उनकी दशा काफी गम्भीर थी, वैसे डाक्टरी जाच के अनुसार उनकी भौतिक स्थिति बिल्कुल ठीक थी। पानी तक लेना उन्होंने त्याग दिया था। सभी का आग्रह उन्होंने टाल दिया था। उस रात उनकी एक फ्रासीसी शिष्या ऋता पेरिस से बडी कठिनाई से पहुची थी। पाच दिन पहले श्रीमती इन्दिरा गाधी रूस के राष्ट्रपति ब्रेजनेव की अन्त्यष्टि के कायक्रम के बीच मे से ही लौट आई थी स्वदश और सीधी पवनार आश्रम पहुची थीं उसी एक आग्रह से किन्तु विनोबाजी नहीं माने थे। इस पर भी ऋता को विश्वास था कि विनोबाजी उनके कहने से कम-से-कम पानी अवश्य ले लेंगे। 15 तारीख को प्रात ऋता ने एक पर्चे पर लिखा कि बाबा मेरे कहने से आपको कम से-कम पानी तो पीना ही पडेगा।" बाबा न उस पढा, ऋता को पहचाना और सकेत से कहा पानी तू ही पी ले।' मत्यु को गले लगाने से दो घण्ट पहले भी इतनी जागरूकता मजाक !!!

विनोबाजी ने कभी भी स्वय को विशेष व्यक्ति नहीं माना। वे सदा कहते थे, 'मैं रोग से तो मरूगा नही इसलिए जब भी मरू तो मुझे खूब गा बजाकर ले जाना। दिडियो को भी साथ ले लेना जो रास्त भर गाते-नाचते जाएगे।" और वास्तव म उनकी शव-यात्रा म दिडियो ने हसी खुशी से भाग लिया था। (महाराष्ट्र म दिडी गाने-बजाने वाले लोग होते है और विभिन्न उत्सवो पर इन्हें गाने बजाने के लिए बुलाया जाता है)।

भारत सरकार चाहती थी कि उनकी मृत्यु पर राष्ट्रीय शोक मनाया जाए किन्तु विनोबाजी न तो अपने को विशेष व्यक्ति मानते नहीं। इसीलिए न तो उनके आश्रमवासी व अनुज आदि उस राष्ट्रीय शोक के लिए राजी हुए नहीं 'भारत रत्न' स्वीकारने में जब विनोबाजी के स्वर्गवास के दो माह तथा ग्यारह दिन पश्चात राष्ट्र ने 26 जनवरी, 1983 को अपने गणतन्त्र दिवस के पवित्र पर्व पर उन्हें मरणोपरान्त अलंकरण से विभूषित किया गया था।

अब्दुल गफ्फार खा—1987

मैं जन्मजात सिपाही हू और आजीवन सिपाही ही रहूगा, मरूगा तब भी एक सिपाही की तरह " भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सभापति का पद ग्रहण करने से इनकार करते हुए नम्रतापूवक कहा था अब्दुल गफ्फार खा न, तब काग्रेस के सभापति को राष्ट्रपति का सम्मान दिया जाता था और राष्टपति कहा भी जाता था। वास्तव म अब्दुल गफ्फार खा जीवन भर एक सिपाही की तरह जूझत रह और अत म मत्यु स लडत हुए हमार बीच म उठकर स्वग सिधार गए (बुद्धवार तदनुसार 20 जनवरी 1988 की सुबह)। उन्होन अपने चालीस वष के आजाद मुल्क पाकिस्तान म लगभग पचीस वष व दी बनकर गुजारे। वह या तो जेलो मे रहे, या उन्ह नजरबद रखा गया। उनके लिए स्वतत्रता गुलामी का ही दूसरा रूप धारण करके आई थी। दश के विभाजन के अवसर पर जब उनकी सलाह लिए बिना उनका 'पख्तूनिस्तान पाकिस्तान की झोली म डाल दिया गया था तब वह एक असहाय ममने की मानिन्द महात्मा गाधी के पास पहुचे और बोले— यह क्या हो गया महात्मा जी, आपन तो हम भेडियो के सामने फक दिया " और वह चालीस वष तक भेडियो से जूझते रह

सघर्षों और जलयात्राओ का क्रम जो 6 अप्रैल, 1919 स अग्रेज सरकार द्वारा जारी किए गए रौलट एक्ट' का विरोध करने के फलस्वरूप आरभ हुआ था, वह उनकी अन्तिम सास तक चलता रहा। सिफ सैयाद

बन्सत रहे सरकारें बन्दगी रहीं। परन्तु वे और मजबूत यहां रहे। 6 अप्रैल 1919 को उतमानजायी में रौलट एक्ट के विरोध प्रदर्शन के लिए एक सभा आयोजित की गई थी। उस सभा में ही अपने विचार प्रस्तुत करने के अपराध में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था।

अब्दुल गफ्फार खां का सम्पूर्ण जीवन धारा महात्मा गांधी के अहिंसा के सिद्धांत और आदर्श से मेल खाती थी। महात्मा गांधी तो एक ऐसे गुजराती वैश्य परिवार में जन्मे थे जिनकी जड़ें जैन धर्म और दर्शन से जुड़ी हुई थीं। इसलिए अहिंसा के प्रति महात्मा गांधी की आस्था अधिक स्वाभाविक जान पड़ती है परन्तु अब्दुल गफ्फार खां के सम्बन्ध में बात बिल्कुल विपरीत थी। उनका जन्म पठान वंश में हुआ था। पठान कबीला बन्दूक चलाना जन्मजात आचार और प्रतिशोध संस्कारों से प्रदत्त विचारों का हकदार था। ऐसे पठानों का अहिंसा की ओर झुक जाना निःसन्देह संसार का एक अजूबा था। पठानों के सम्बन्ध में एक बार महात्मा गांधी ने कहा था— पठान बहादुर और बढ़िया योद्धा होते हैं। उनकी बहादुरी और शस्त्रयुक्त चरित्र की प्रशंसा करके ही उनका शोषण किया गया है। पठानों को उनकी इसी प्रतिभा को पहचानना चाहिए जो केवल अहिंसा से ही सम्भव है " जिन पठानों के बच्चा बच्चा अचूक निशाने के लिए जग प्रसिद्ध है वही पठान यदि शस्त्रों का परित्याग करके अहिंसा का व्रत धारण कर लें तो वास्तव में उनकी अहिंसा सच्चे अर्थों में अहिंसा मानी जानी चाहिए। 6 अप्रैल, 1945 की उस शाम को दिल्ली के गांधी मैदान में अब्दुल गफ्फार ने एक सभा को सम्बोधित करते हुए कहा था— 'अदम तशदद (अहिंसा) का व्रत तो हमने लिया है जो मुकम्मल तौर से हथियारों को बरबाद कर चुके हैं।" (जिन्होंने कभी शस्त्रों का स्पर्श नहीं किया उनके लिए अहिंसा का क्या मतलब ?)

अब्दुल गफ्फार खां का जन्म सीमा प्रान्त के उतमानजायी गांव में हस्तनगर (अष्टनगर) के जमींदार सरदार बहराम खां के यहां सन् 1890 ई० में हुआ था। पठानों में, तब, नवजात शिशु की जन्मतिथि लिखकर रखने का रिवाज नहीं था। शायद, इसी कारण उनकी जन्मतिथि निश्चित रूप से मालूम नहीं है फिर भी महीना जेठ का था। वह अपने पिता की

चौथी संतान थे। पिता बहराम खां ईमानदार और खुदापरस्त इंसान थे। गरीब लोग अपनी धरोहर उनके पास इतमीनान से रख जाते थे। अंग्रेज अधिकारी भी उनकी इज्जत करते थे और उन्हें चचा पुकारते थे।

पखतून क्षेत्र कई संस्कृतियों का संगम स्थान रहा है। सिन्धु घाटी की सभ्यता, आर्य संस्कृति, कुषाण काल में बौद्ध, हूण और इस्लाम एक के बाद एक कई संस्कृतियों और सभ्यताओं ने अपनी सुगंध यहां की मिट्टी में मिलाई है। यह वही सौभाग्यशाली स्थान है जहां कभी यूनान, ईरान, चीन और भारत की पावन और सनातन संस्कृतियां मिली थीं। सिकन्दर महान के इतिहासकारों के इतिहासों में, चीन के बौद्ध भिक्षु हुआनशियान के यात्रा वर्णनों में, सम्राट अशोक के शिलालेखों में, कनिष्क के बौद्ध लेखों में, महमूद गजनवी के समय अलबरूनी की टिप्पणियों में और अब्दुल फजल के अकबरनामा में इस स्थान का उल्लेख भरपूर किया गया है।

पखतून मूलतः हिन्दू थे। अब भी वहां के हिन्दू स्वयं को पखतून समझते हैं। जिस प्रकार हिन्दुओं में बहुत समय तक पढ़ने लिखने का अधिकार केवल ब्राह्मणों का ही था, उसी प्रकार इसलाम धर्म के प्रचलन के पश्चात भी उनके सोच में परिवर्तन नहीं आया। मुल्लाओं ने प्रचार किया, शिक्षा ग्रहण करना धार्मिक पाप है, अतः पखतून जाति आज की दौड़ में पिछड़ गई। 1849 से 1901 तक उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत पंजाब का ही भाग बना रहा फिर भी शिक्षा व सामाजिक कल्याण सम्बन्धी सुविधाओं से वंचित रहा।

परन्तु सरदार बहराम खां ने मुल्लाओं के फतवों की चिन्ता नहीं की और अपने बच्चों को स्कूल भेजा। अब्दुल गफ्फार खां के अग्रज पहले ही बम्बई से डॉक्टरी पास करके इंग्लैण्ड चले गए थे। अब्दुल गफ्फार खां ने हाई स्कूल पास किया। वह रेखागणित में कुशाग्र थे। इसी कारण, उनके बड़े भाई डॉक्टर खां साहब ने उन्हें अभियान्त्रिकी का अध्ययन करने के लिए इंग्लैण्ड बुलाना चाहा था। यात्रा का सारा प्रबन्ध हो गया परन्तु उनकी मां ने उन्हें भी उतनी दूर भेजने के लिए साफ़ इनकार कर दिया और उन्हें स्वदेश ही रह जाना पड़ा। फिर उन्होंने फौज में भरती होने का अवसर केवल इसी कारण ठुकरा दिया कि उन्हें मालूम हुआ कि गोरा

हिन्दुस्तानियों को, चाहे वे कितने ही ऊंचे स्तर पर क्यों न हों, अंग्रेजों की तुलना में हीन ही समझा जाता है (क्योंकि वे गुलाम हैं, और गुलाम मालिक की बराबरी नहीं कर सकता)। इसलिए वह फौज में भी नहीं गए और अपने देशवासियों की दशा सुधारने का प्रन ले लिया। 1910 में देवबन्द जैसे प्रगतिशील इसलामिक शिक्षा संस्थानों के सहयोग से पूरे प्रांत में स्कूल खोले और सभी पख्तून माता पिताओं को अपने बच्चों को उन स्कूलों में पढ़ने के लिए भेजने का अनुरोध किया ताकि देश के स्वतन्त्रता संग्राम के लिए उन स्कूलों के छात्रों को तैयार किया जा सके।

सन् 1912 में उनका विवाह हुआ और एक वर्ष पश्चात उन्हें एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उसी वर्ष वह आगरा गए और मुसलिम लीग के जलसे में भाग लिया। वहीं उन्होंने मौलाना अबुलकलाम आजाद का भाषण सुना। वापस पहुंचकर पूरे उत्साह से शिक्षा प्रचार और तेज कर दिया। वह अपने क्षेत्र के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा के आलोक से प्रदीप्त कर देना चाहते थे। वह स्थान-स्थान पर जाकर लोगों को शिक्षा का महत्त्व समझाने लगे और अनुरोध करने लगे कि सभी अपने बच्चों को स्कूल भेजें।

उनकी यह गतिविधियां निश्चित रूप से धर्म के ठेकेदारों को फूटी आंख न सुहाईं। इससे उन्हें उनकी सत्ता उनके हाथों से फिसलती लगी और उन्होंने अब्दुल गफ्फार के विरुद्ध अपने आका[1] अंग्रेजों के कान भरना शुरू कर दिया। अब्दुल गफ्फार की सारी जन कल्याणकारी गतिविधियों को राजनीतिक रंग में रंगकर सन्देह के गिलासों में प्रस्तुत किया गया। अंग्रेज सरकार चौकन्नी हो गई। अब्दुल गफ्फार की प्रत्येक गतिविधि पर कड़ी नजर रखी जाने लगी। सरकार को यह बिल्कुल पसंद नहीं आया कि जो पठान शिक्षा के प्रकाश से नितांत निरस्त कर दिए गए थे, उन्हीं उपेक्षित पठानों को पिछड़ेपन के अंधकार से निकाल समाज में आगे प्रकाश में लाकर सबके साथ खड़ा कर दिया जाए, और वह भी कहने सुनने योग्य बन जाएं ऐसा हो जाने से सरकार के लिए परेशानियां बढ़ जाएंगी और कठमुल्लाओं को भय था कि उन्हें पूछने वालों की संख्या कम हो जाएगी।

---

1 मालिक

दोना चाहते थे कि पठानो को जहालत (अज्ञानता) की कीचड म
रहना चाहिए ताकि उनका उल्लू सीधा रह। वे समाज क सामन
मनमाने ढग से प्रस्तुत कर सकें और कोई उनके काम म आप
उगली न उठा सक।

और एक दिन अब्दुल गफ्फार को गिरफ्तार कर लिया गय
उनकी पहली गिरफ्तारी थी। उनक लहीम शहीम हाथ पाव म
सरकार की हथकडी-बेडी छोटी पड गइ और उन्हे पहनकर व
चलने योग्य नही रह। अत पुलिस अधिकारी को नियम और रि
विपरीत 'कैदी' को टाग पर ले आना पडा और न्यायाधीश क सा
करना पडा।

न्यायधीश न पूछा, "क्या तुम बादशाह खान हो ?"

(तब तक पख्तून उन्ह प्यार से बादशाह खान कहत लग थे)

मुझे मालूम नही,' उन्होने उत्तर दिया।

"सरकार के खिलाफ साजिश करने वालो के साथ उठते-बैठते

'मैं जिन लोगो के साथ उठता बैठता हू वे मलिक है, खान हैं,
वफादार हैं।'

और बस। उन्ह जेल भेज दिया गया, मुकदमा खत्म / औ
शुरू।

सजा समाप्त हो जान पर वह अपने गाव गए तो उनके पी
फौज भी जा धमकी। पूरे गाव को घेर लिया गया। गाव वालो क
घुटनो पर बैठा दिया गया और चारो तरफ तोपें लगा दी गईं।
तीस हजार रुपयो का दण्ड घोषित कर दिया गया परन्तु वसूल कि
एक लाख रुपया। डेढ सौ से अधिक लोगो को जमानत के तौर
कर लिया गया। पिता बहराम खा को इसी बात की प्रसन्नता
उन्हे भी उसी जेल में रखा गया था जिसम उनके नूरे नजर[1] अब्दुल
खा बद थे। (चाहे दोनो मिल कभी नही सके थे)

छ महीनो के पश्चात उन्ह फिर मुक्त कर दिया गया परन्तु

कुछ समय पश्चात नौशहरा बम काट के सिलसिले मे, बाजार से उन्हे और उनके चचेरे भाई को फिर पकड लिया गया। दूसरे दिन उन्हे न्यायालय म प्रस्तुत किया गया तो पहले उन्होने पूछा—

'क्या पकडा गया हूम ?'

'एक मामले की तहकीकात के लिए '

'क्या वह तहकीकात मेरी गिरफ्तारी से पहले नही की जा सकती थी ?'

'यह हम पर निभर करता है कि पहले पकडें और फिर तहकीकात करें या पहले तहकीकात करें फिर गिरफ्तार करें।"

'आखिर मैं इसान हू मेरी हैसियत का ख्याल तो कीजिये। बिना वजह इस मुसीबत म डाल दिया गया मुझे। मैं भाग तो जाता नही। आप मुझे तभी गिरफ्तार कर सकते थे जब मैं कसूरवार ठहरा दिया जाता।" और सुनवाई खत्म हो गई। अब्दुल गफ्फार फिर वापस आ गए।

उसके पश्चात अपने माता पिता की इच्छानुसार उन्होने एक और विवाह किया। (मुसलमानो म तो चार विवाह करने की इजाजत है)

खिलाफत आन्दोलन[1] मे महात्मा गाधी, मौलाना आजाद, अली बधु और हकीम अजमल खा जसे राष्ट्रीय नेताओ के साथ अब्दुल गफ्फार खा ने सक्रियता से काम किया। 1920 की अगस्त मे अठारह हजार पठान अपनी जमीन जायदाद बेचकर अब्दुल गफ्फार के नेतत्व मे काबुल के रास्ते तुर्की चल दिए। हिजरत के उस जत्थे म नव वर्षीय सरदार बहराम खा भी उत्साहपूर्वक चल रहे थे। परन्तु उन्हे काफी कठिनाई से समझा बुझा कर घर पर वापस कर दिया गया। काबुल म उनका दल बादशाह

1 खिलाफत आन्दोलन। अग्रजो ने भारत की तरह, तुर्की के सुलतान से भी प्रथम विश्व युद्ध म सहयोग के बदले कुछ राजनीतिक सुविधाए देने का वायदा किया था परन्तु बाद भी उन्होने वैसी ही वायदाखिलाफी की थी। इस कारण ही भारत के मुसलमान भी रुष्ट थे और उन्होने विरोध (खिलाफत) की आवाज उठाई थी। अनेक मुसलमान अपना सब कुछ बेचकर तुर्की को हिजरत (प्रस्थान) करके सुलतान का पक्ष मजबूत करना चाहते थे। यह हिजरत खिलाफत आन्दोलन का एक अग थी। प्रत्येक मुसलमान का तब फर्ज बन गया था कि वह सब तज कर हिजरत (प्रस्थान) करे।

अमानुल्लाह ा मिला। लेकिन राजनीतिक दबाव क कारण उन्हे रोक कर स्वदेश वापस कर दिया गया।

उसी वर्ष दिसम्बर म नागपुर म आयोजित खिलाफत अधिवेशन म गांधी जी का ध्यान सीमा प्रात से पधारे पख्तून कमठ कार्यकर्ता अब्दुल गफ्फार खा की आर आकर्षित हुआ। नागपुर अधिवेशन म ही शान्तिपूर्ण और न्यायपूर्ण तरीके से पूर्ण स्वराज्य की माग का प्रस्ताव पारित किया गया और नागपुर काग्रेस म ही मिस्टर जिन्ना काग्रेस मच पर अन्तिम बार दिखाई दिए थे। नागपुर स लौट कर अब्दुल गफ्फार खा ने अपने क्षेत्र म आजाद हाई स्कूल खोला और कई साथियो के सहयोग से इस्लाह उल अफगानिया नामक विशुद्ध गैर राजनीतिक सस्था की बिस्मिल्ला (श्रीगणेश) की।

अग्रेजो ने सरदार बहराम खा को पट्टी पढाई कि वह अपने बेटे अब्दुल गफ्फार खा को समझाए कि गाव गाव घूमते रहने की बजाए घर पर आराम से बैठते क्यो नहीं, स्कूल खोलकर और पठानो को तालीम (शिक्षा) की ओर झुकाकर वह क्या गुनाह कमा रहे हैं जबकि इस्लाम म यह सब मना है अग्रेज भली भांति जानते थे कि अब्दुल गफ्फार खा अपनी धुन के पक्के थे और वह किसी की बात मानते नहीं। जब बेटा बाप की बात नहीं मानता तो दोनो म निश्चित रूप से ठन जाती, झगडा होता और इस फूट से अग्रेजो को लाभ होता। उनकी 'फूट डालो और राज करो की चाल सफल हो जाती।

परन्तु अब्दुल गफ्फार ने अपने पिता को समझाया, "अगर सब नमाज म दिलचस्पी छोड दें तो क्या आप मुझे भी नमाज छोड देने की राय देंगे?"

कभी नहीं,' बहराम खा ने तुरन्त उत्तर दिया, और कहा 'मैं महजबी फरायज छोडने की राय कभी भी नहीं दे सकता '

तो फिर कौम को तालीम देना उतना ही पाक[1] और सवाब[2] है

---

1 पवित्र 2 पुण्य

अब्बू '

मैं समझ गया तुम ठीक कहते हो।"

अंग्रेजों की चाल बेकार हो गई। फलतः 17 दिसम्बर 1921 को सीमांत प्रांत अपराध नियम की धारा 40 का बहाना लेकर तीन वर्ष का सश्रम कारावास दे दिया गया। उनका अपराध था—हिजरत और आजाद स्कूल खोलना। मुकदमे की पेशी पर न्यायाधीश उपायुक्त ने बार-बार पुलिस से पूछा "अफगानिस्तान से वापस आने क्या दिया गया" और बार बार अब्दुल गफ्फार ने न्यायाधीश की बात काटते हुए कहा, 'एक तो आप हमारे मुल्क पर कब्जा जमाए हुए हैं फिर हमारे ही मुल्क में हमारे आने जाने पर रोक लगाते हैं।'

जेल में उनकी भेंट पंजाब केसरी लाला लाजपत राय और कांग्रेस के कई अन्य वरिष्ठ नेताओं से हुई। इस बार उनका स्वास्थ्य गिर गया। उनका वजन घट गया और दांतों में पायरिया हो गया। वह बीमार पड़ गए। फिर भी उन्होंने नित कुरआन पढ़ने की दैनिक क्रिया बन्द नहीं की। कैद से बाहर आए तो उनका मन कई नई उत्साहपूर्ण योजनाओं से भरा हुआ था। वह अपने समाज और क्षेत्र के बाहर भी पहचाने जाने लगे थे।

1926 में सरदार बहराम खां का स्वर्गवास हो गया। परम्परा और पुराने रिवाजों के अनुसार मुल्लाओं को धार्मिक कर्मकाण्ड करने और उपदेश देने के लिए पारिश्रमिक' दिया जाता था। मातम पुर्सी (सम्वेदना व्यक्त) करने के लिए एकत्रित बिरादरी से अब्दुल गफ्फार खां और उनके अग्रज डॉक्टर खां साहब ने कहा कि वे अपने स्वर्गवासी पिता की स्मृति में दो हजार रुपये खर्च करना चाहते हैं या तो उस राशि को रिवाज के अनुसार गुड़ और साबुन खरीद कर बिरादरी में बंटवाने में खर्च कर दिया जाए या पख्तून बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल को दे दी जाए और पूछा कि बिरादरी को कौन सा विकल्प पसंद है। आमंत्रित बिरादरी ने एक मन से सलाह दी कि राशि स्कूल में दे दी जाए। यह एक प्रगतिशील और रचनात्मक कदम था यद्यपि मुल्ला लोग जल भुन कर खाक हो गए।

अब्दुल गफ्फार खां अपनी पत्नी व बहन के साथ हज करने गए। वहां से वह यरुसलम गए। इराक जैसे कई मुस्लिम देशों का भ्रमण भी किया

और वहां की स्थिति का अध्ययन किया। तुर्की में उन्होंने मालूम किया कि किस प्रकार खलीफा को हटाकर कमाल अता तुर्क ने प्रजातंत्र स्थापित किया। अब्दुल गफ्फार खां को यह जानकर खुशी हुई कि कई देशों में यह विश्वास जड़ें जमाता जा रहा था कि भारत की आजादी मध्य पूर्व एशिया तथा कई उपनिवेशों में ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य अस्त होने का कारण बनेगी। सभी भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष की ओर उम्मीद लगाए हुए हैं। वह स्वदेश लौट कर स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय हो गए—न केवल अपने ही देश के लिए बल्कि अन्य पराधीन देशों की मुक्ति के लिए भी।

विदेश में ही उनकी पत्नी का पांव फिसल गया। चोट इतनी घातक सिद्ध हुई कि वह बच नहीं पाईं और अब्दुल गफ्फार उन्हें गंवा कर देश लौटे। उसके पश्चात उन्होंने दोबारा शादी नहीं की यद्यपि उनकी अवस्था तथा आयु इसके अनुकूल थी। धर्मानुसार भी कोई रुकावट नहीं थी।

अंग्रेज 'फूट डालो और राज करो' की अपनी प्रसिद्ध चाल में सफल हो ही गए। 1924-29 की अवधि में भारत में हिन्दू मुसलमानों के बीच वैमनस्य का बीज बो ही दिया। देश के अधिकांश भागों में साम्प्रदायिक झगड़े कोढ़ की तरह फूट पड़े। अन्य नेताओं की तरह अब्दुल गफ्फार खां भी उस आग को बुझाने में लग गए।

1929 में उन्होंने खुदाई खिदमतगारों का संगठन शुरू किया। 'खुदाई खिदमतगार' एक गैर-राजनीतिक स्वयंसेवी संस्था थी। उस संस्था में भरती होने के लिए प्रत्येक प्रत्याशी सदस्य को शपथ लेनी पड़ती थी कि वह न कभी हिंसा करेगा, न ही बदले की भावना में बहककर प्रतिकार करेगा। खुदाई खिदमतगारों की कमीजें लाल होती थीं और उनका ध्वज भी लाल होता था (कुछ लोगों को उनके लाल ध्वज के कारण यह गलत फहमी हो जाती थी कि वह साम्यवादी थे। परन्तु इसमें क्या शक है कि वह प्रगतिशील तो थे)। खुदाई खिदमतगारों का लाल कुर्ती (रेडशर्ट्स) भी कहा जाता था। अब्दुल गफ्फार खां को लाल कुर्ती का सेनापति चुना गया था। सेनापति की पद संज्ञा से उनके संगठन को सैनिक संगठन समझा जाता था परन्तु वह बिल्कुल सैनिक संगठन नहीं था। सेना की तरह वे लोग अनुशासित जरूर थे। उनके पास शस्त्र के नाम पर एक ढोल और मशक बीन

बाजा होता था जिसकी धुन पर वे नाच करते थे। हिंसक लेशमात्र नही थे। 1929 मे लाहौर काग्रेस के पश्चात उसका विस्तार किया गया। केवल छ महीनो म उसकी सदस्यता पाच सौ से बढकर पचास हजार तक पहुच गई।

नमक सत्याग्रह के एतिहासिक अवसर पर 23 अप्रैल, 1930 का उतमानजायी म भी एक सभा आयोजित की गई और अब्दुल गफ्फार खा ने सविनय आ दोलन का आह्वान किया। पेशावर पहुचन से पूव ही सीमात अपराध नियम की धारा चालीस के अ तगत उ ह गिरफ्तार कर लिया गया विचारणीय है कि या तो सीमात अपराध नियम की धारा चालीस काफी व्यापक थी या सरकार के तरकश म इस नियम क तीर के अतिरिक्त काई अ य नही था। जुम कुछ भी हा पर नियम वही एक। वैसे, तब तक अब्दुल गफ्फार खा का बादशाह खा अथवा सीमात गाधी के नामो से पहचाना और पुकारा जाने लगा था।

गाधी इरविन समझौता हुआ। प्राय सभी राजनीतिक बदी जेलो से रिहा कर दिए गए, पर तु अब्दुल गफ्फार खा का मुक्त नही किया गया। गाधी जी न उसका विरोध किया और माग की कि 'अब्दुल गफ्फार खा भी काग्रेसी है, उ हान भी सविनय आदोलन मे भाग लिया था। उसी कारण उ हे गिरफ्तार भी किया गया था। इसलिए उ ह भी छोडा जाए। सरकार ने उ ह मुक्त कर दिया।

राजनीतिक वातावरण मे सुधार आया। सरकार के दृष्टिकोण म उत्साहपूण चिह्न दष्टिगाचर होने लग। लदन म गोल मेज सम्मेलन आयोजित किया गया। अब्दुल गफ्फार खा न सम्मेलन को एक धोखा बताया और उसम भाग लने से इनकार कर दिया। उन्होने पशेनगायी की थी कि सम्मलन दिखावा है और समय की बरबादी है, वास्तव म हुआ भा वही। सम्मलन म कुछ भी निणय नही लिया गया और गाधी जी का खाली हाथ लौटना पडा। और आत ही सभी राजनीतिक कायकर्ताओ का फिर गिरफ्तार कर लिया गया।

छ वर्षां के बाद सबको रिहा कर दिया गया। प्रातीय स्वायत्तता दी गइ। अब्दुल गफ्फार खा अपन प्रात म पहुचे ता उनक स्वागत म उनके

देशवासियों ने आंखें बिछा दीं, प्रांतों में विधान सभाओं के लिए चुनाव किए गए और अधिकांश प्रांतों में कांग्रेस ने विजयी होकर अपनी सरकारें बनाई। सीमान्त प्रान्त में भी कांग्रेस ने डॉक्टर खां साहब के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल गठित किया।

तत्कालीन राष्ट्रपति (तब कांग्रेस के सभापति को राष्ट्रपति ही कहा जाता था) पं० जवाहरलाल नेहरू ने अब्दुल ग़फ्फार खां के सम्मान में आयोजित एक विशाल सभा में कहा था 'वह न सिर्फ फ़कीर ए-अफ़ग़ान हैं बल्कि उन्हें फ़कीर-ए-हिन्द कहना ज्यादा मौजूं होगा' (वह न केवल अफ़ग़ानी संत हैं बल्कि उन्हें भारतीय संत कहना अधिक उचित होगा) उन्होंने अपने भाई के मन्त्रिमण्डल में शामिल होने से नम्रतापूर्वक इनकार कर दिया और वह सदा एक सिपाही की भांति सेवा करते रहे। वह अपनी यात्राओं में अत्यंत संक्षिप्त सामान लेकर चलते थे—केवल एक पोटली (गठरी), में जिसमें शायद कुर्ता शलवार का एक जोड़ा कपड़ा और एक चादर और तौलिया रहता होगा—न बक्सा, न बिस्तर।

उन्हें बाग़बानी का बड़ा शौक था। फल फूल के वृक्षों की जानकारी प्राप्त करने के लिए वह सदा लालायित रहते थे। एक बार, कांग्रेस कमेटी की बैठक में प्रस्तुत किए जाने वाले एक प्रस्ताव पर सरदार वल्लभ भाई पटेल से विचार विमर्श कर रहे थे, साथ ही एक अन्य कांग्रेसी सदस्य से बाग़बानी पर बात भी करते जा रहे तभी किसी ने उनसे पूछा, 'यह आप को मालूम है कि जिस रेज़ल्यूशन पर वोटिंग होगी और आप वोटिंग में शामिल होने जा रहे हैं, वह है क्या ?" बिलकुल एक निष्ठावान सिपाही की तरह उन्होंने भोलेपन से उत्तर दिया, "मालूम करने के लिए है ही क्या उसमें, हम तो, जहां हमारे नेता—महात्मा गांधी इशारा करेंगे हम उसको ही अपना वोट दे देंगे।"

सीमांत गांधी एक बार अपने नेता महात्मा गांधी को लेकर अपने गांव उतमानजायी पहुंचे। रात में गांधी जी को खुले में बाहर सुलाने का प्रबन्ध किया। परन्तु रात में गांधी जी को सामने कमरे की छत पर किसी की छाया चलती फिरती दिखाई देती रही। दूसरे दिन जब उन्होंने पूछा तो सिपाही अब्दुल गफ्फार खां ने सकुचाते हुए बताया कि कुछ शरारती सर-

फिरा स हिफाजत के लिए उन्होंने स्वय या किसी और को नियुक्त किया था। परन्तु बापू न बजाए स तुष्ट या प्रसन्न होन के अहिंसा पर एक लम्बा भाषण द डाला। जिसका सार था कि निर्भीकता ही अहिंसा है।

सन् 42 की क्रांति, सम्पूर्ण देश एक नय उत्साह म अपन नेता क करो या मरो के महामन्त्र को कार्यान्वित करन म तल्लीन। सीमान्त प्रांत म भी कुछ उत्साही नवयुवक रेल की पटरियां उखाड़ने, सरकारी सम्पत्ति नष्ट करन आदि जस सुझाव लेकर सीमान्त गांधी के पास पहुंच। उन्होंन नवयुवकों को इस शर्त पर अनुमति देना मंजूर किया कि जो भी यह सब करें वह उसे स्वीकारने और पुलिस के हवाले स्वय को सौंपने का नैतिक साहस भी रखें। इस शर्त से उनमें नैतिकबल उत्पन्न हुआ बहादुरी व सच्चाई की मिसाल कायम करने का साहस जागृत हुआ।

अन्तरिम सरकार स्थापित हो जाने के पश्चात सरकार के उपाध्यक्ष प० नेहरू (अध्यक्ष लॉर्ड माउंटबेटन थे) सीमा प्रांत के दौरे पर पधारे। वहां मुसलिम लीग के उपद्रवियों की अप्रत्याशित शरारतों से दोनों खान बन्धु चिन्तित थे। लीगियों न प्रदर्शन की योजना भी बनाई थी, फिर प्रदर्शन तो रोका भी नहीं जा सकता था। जिस मार्ग के द्वारा नेहरू जी को हवाई अड्डे से निकलकर डॉक्टर खां साहब के निवास पर जाना था, उसके दोनों ओर पांच हजार लीगी उपद्रवी भालों, कुल्हाड़ियों और तलवारों स लैस खड़े थे। जैसे ही एक मोटर गाड़ी म नेहरू जी को लेकर डाक्टर खां साहब हवाई अड्डे से बाहर निकले, विरोधी नारों से आसमान गूंज गया। कुछ न पत्थर भी फेंके डाक्टर खां साहब झपट कर मोटर स बाहर निकल और रिवॉल्वर तान कर खड़े हो गए

फिर नेहरू जी को पेशावर से सरदारयाब जाना था। उनके साथ अब्दुल गफ्फार खां थे। पहाड़ी रास्ता था और कुछ अन्य अधिकारियों, स्वयंसेवकों के साथ सभी पैदल चल रहे थे। वहां का पालिटिकल एजेंट शेख महबूब अली एक धोखेबाज और अविश्वसनीय अधिकारी था। फिर भी डाक्टर साहब उसके विश्वास के चक्कर म पड़ गए और अपने साथ पुलिस की गारद नहीं ली। जैसे ही वह सब पहाड़ियों के बीच पहुंचे दोनों तरफ से पत्थरों की बारिश होने लगी। अब्दुल गफ्फार न अपने लहीम शहीम

शरीर से नेहरू जी को छुपा लिया और जितनी जल्दी हो सका, वे सब उस खतरनाक रास्ते को पार करके सड़क पर इंतजार करती हुई मोटर गाड़ियों में जा बैठे (उल्लेखनीय है यद्यपि यहां कुछ अप्रासंगिक है इतने खतरनाक अवसर पर नेहरू जी एक क्षण के लिए भी घबराए नहीं थे।) गाड़ी पर पत्थर पड़े, आगे की सीट पर बैठा हुआ सिपाही थोड़ा झुका और संभल कर गोली हवा में दागता हुआ चिल्लाया, 'दफा हो जाओ—जादो!' विडम्बना यह कि शेख महबूब अली साहब पहले से वहां से खिसक गए थे, जिनके कन्धों पर सुरक्षा का प्रबन्ध था।

फिर वह वक्त भी आया जब देश का विभाजन कांग्रेस और लीग ने स्वीकार कर लिया। लार्ड माउंटबैटन, नेहरू और पटेल को विभाजन का कड़वा गरल पिलाने में कामियाब हो गए। सीमा प्रांत में तब भी कांग्रेस की सरकार बनी हुई थी परन्तु गरल पान के पश्चात सीमा प्रांत पाकिस्तान के हवाले कर दिया गया। बापू उस समय पूर्वी बंगाल के नोआखाली में साम्प्रदायिक आग बुझाने में लगे हुए थे। बंटवारे का समाचार उन्हें भी मिल गया था। उन्होंने आचार्य कृपलानी से पूछा, "प्रोफेसर! क्या तुमने भी बापू से पूछना आवश्यक नहीं समझा?"

अब्दुल गफ्फार बिलकुल टूट गए थे। विभाजन के अप्रत्याशित आघात से अत्यन्त व्याकुल थे। वह गांधी जी के पास पहुंचे और बोले, "आपने तो हमें भेड़ियों के सामने फेंक दिया सब जानते हैं कि हम पख्तून, आपके साथ रहे और आजादी के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी दी हम रेफरेण्डम (जनमत संग्रह) क्या मानें? जब हम हिन्दुस्तान बनाम पाकिस्तान के सवाल पर ही चुनाव जीत चुके हैं, रेफरेण्डम अगर होना ही है तो पख्तूनिस्तान बनाम पाकिस्तान पर होने दो'

परन्तु बिखरा हुआ दूध कौन समेट पाता। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि नेहरू, पटेल आदि कुछ जल्दबाजी कर गए। परोक्षत उनके मन में यह विचार पैठ गया था कि यदि यह अवसर गंवा दिया, चाहे देश काटकर ही क्यों न प्राप्त हुआ हो तो फिर उनके जीवन काल में हिन्दुस्तान आजाद नहीं हो सकता। काश कोई मिस्टर जिन्ना की बन्द अलमारी में उनके फेफड़ों के एक्स-रे चित्र देख लेता जिससे पता चल जाता कि उनके

फेफड ज्यादा से ज्यादा दो वर्ष चल सकेंगे और जिन्ना के अतिरिक्त मुसलिम लीग में उतना मजबूत और जिद्दी नेता था भी नही—('फ्रीडम एट मिडनाइट')

अब अब्दुल गफ्फार के जीवन की दूसरी यात्रा आरम्भ हुई। उन्होंने पाकिस्तान को ही ईमानदारी से अपना मुल्क स्वीकार कर लिया। पाकिस्तान की विधान सभा म उन्होंने स्वय विश्वास दिलाया, 'अब मेरा और मेरे खुदाई खिदमतगारो का कोई ताल्लुक इण्डियन नेशनल काग्रेस से नही है।" परन्तु तत्कालीन प्रधान मत्री लियाकत अली खा न पखतूनो को हिन्दू और देशद्रोही कहकर उनकी निन्दा की परन्तु सदर (राष्ट्रपति) मिस्टर जिन्ना ने अपने प्रधान मत्री की उस अभद्रता के लिए उनसे क्षमा मागी और उन्हें भोज पर आमत्रित किया। वहा, उन्होने अब्दुल गफ्फार खा से पूछा—

'आप हमारे साथ काम क्यो नही करते ?'

"हमारी तहरीक (आदोलन) तो पूरे तौर से गरसियासी (अराजनीतिक) है, पहल हमने लीग ही की तरफ हाथ बढाया था लेकिन वहा से नाउम्मीद हो जाने के बाद ही हम काग्रेस की तरफ मुडे। क्या आप हमारी खिदमात इस्तेमाल फरमाएगे ?"

"क्यों नही मैं तो उनका फायदा उठाना चाहता हू।'

"मैं यकीन के साथ कह सकता हू कि सामाजिक तौर से पिछडे हुए लोगो को सियासी ढग से भी ऊपर उठाया नही जा सकता।"

मिस्टर जिन्ना बेहद प्रभावित हुए। उन्होंने अब्दुल गफ्फार को सीने से लगा लिया और कहा—

"आप जो चाहे, मैं देने को तैयार हू।'

'मैं सिर्फ आपका यकीन चाहता हू कायदे आजम।"

और इस सब के बावजूद 15 जून, 1948 को पाकिस्तान सरकार ने अब्दुल गफ्फार को गिरफ्तार कर लिया। आरोप था—'राजद्रोह'। 8 जुलाई, 1948 को एक अधिनियम द्वारा प्रदत्त असाधारण शक्ति के अतर्गत 'शाति और सुरक्षा के लिए सभी आपत्तिजनक' सस्थाओ को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। इसी प्रकार 1956 म भी उन्हे गिरफ्तार

इसलिए किया गया था कि सरकार की समझ में वह देश की सुरक्षा व अखण्डता के विरुद्ध जनता को भड़का रहे थे।

शांति सुरक्षा और अखण्डता को इतना व्यापक बहाना बना लिया गया है कि इनके अन्तर्गत किसी भी देश की कोई भी सरकार अपना उल्लू सीधा कर सकती है और किसी भी व्यक्ति या संस्था को गैरकानूनी घोषित कर सकती है और जेलें भर सकती है। वास्तव में यह फैसला कौन करे कि देश की शांति सुरक्षा और अखण्डता को किससे हानि पहुंच रही है—सरकार से या किसी व्यक्ति अथवा संस्था से ?

एक हजार खुदाई खिदमतगारों को जेल में ठूस दिया गया। बाबरा मस्जिद में नमाज़ के लिए एकत्रित लोगों पर गोली चलाई गई। उनकी गरदनों में कुरान के गुटके तावीज़ की तरह बंधे हुए थे। ज्यादातर बंदूक की गोलियां उन तावीज़ों को बेधती हुई नमाजियों की गरदनों के आर पार हो गईं।

जेल में अब्दुल गफ्फार खां का स्वास्थ्य गिर गया। पायरिया पहले से ही था। उसके कारण पूरे दांत निकालकर नए दांतों का जो सेट लगाया गया वह उनके जबड़े में मसूड़ों के अनुकूल नहीं बैठा, और वह कष्टदायी अधिक हो गया। भारत व अफगानिस्तान के प्रधानमंत्रियों ने उन्हें शुभ कामनाएं प्रेषित कीं और स्वास्थ्य लाभ की कामना की। मक्का शरीफ में भी उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए विशेष नमाज अदा की गई। 5 जनवरी, 1954 को उन्हें रिहा कर दिया गया परन्तु पंजाब से बाहर जाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

सीमा प्रांत में प्रवेश की निषेधाज्ञा हट जाने पर ही वह अपने घर जा सके। वह वहां पहुंचे तो वहां की जनता ने अपने हर दिल अज़ीज़ (लोकप्रिय) नेता को सर पर उठा लिया। फिर उन्होंने पाकिस्तान में 'एक यूनिट स्कीम' का विरोध किया, क्योंकि उस प्रणाली के अंतर्गत सम्पूर्ण पश्चिमी पाकिस्तान को एक प्रांत और पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बंगलादेश) को दूसरा प्रांत बना देने की योजना थी। हो सकता है इस प्रणाली से सरकार को प्रशासन में आसानी होती परन्तु राजनीतिक तौर पर निश्चित रूप से घातक प्रमाणित होती।

परन्तु शायद इसी के फलस्वरूप एक बड़ी संस्था—पाकिस्तान नेशनल पार्टी का उदय हुआ जिसमें छह विपक्षी दल मिल गए। पार्टी के अध्यक्ष चुने गए अब्दुल गफ्फार खां। पाकिस्तान नेशनल पार्टी ने सरकार की 'एक यूनिट स्कीम' का विरोध किया। राष्ट्रपति शासन के प्रदेश —बलूचिस्तान में प्रवेश करने की निषेधाज्ञा भंग करने के अपराध में अब्दुल गफ्फार खां को फिर गिरफ्तार कर लिया गया और अन्य विपक्षी नेताओं के साथ उन्हें चौदह वर्षों की जेल हो गई।

कालान्तर में सरकार का तख्ता पलटा। सेना ने शासन संभाला। जनरल अयूब राष्ट्रपति की कुर्सी पर बैठे। अब्दुल गफ्फार खां की बढ़ती उम्र और तन्दुरुस्ती का ध्यान में रखते हुए सज़ा पूरी होने से पहले ही छोड़ दिया गया। साथ ही उनसे अपेक्षा की गई कि वह देश की अखण्डता और सुरक्षा के प्रतिकूल गतिविधियों से वह स्वयं को अलग रखेंगे।

लेकिन एक विशेष न्यायाधिकरण ने उन्हें नोटिस दिया कि कई बार विध्वंसकारी गतिविधियों में भाग लेने के फलस्वरूप जेल जाने के कारण उन्हें सार्वजनिक जीवन से क्यों न अयोग्य घोषित कर दिया जाए और 1966 तक उन्हें किसी भी निर्वाचक संस्था की सदस्यता के अधिकार से वंचित कर दिया गया। जब इतने से भी बात नहीं बनी तो राजविरोधी गतिविधियों में भाग लेने के जुर्म में उन्हें 12 अप्रैल, 1961 को गिरफ्तार कर लिया गया। आरोप था खासतौर से—वह अपने सीमा प्रांत के क्षेत्र को आज़ाद करने के लिए अफगानिस्तान से मिलकर एक राज्य स्थापित करने का षडयंत्र रचने वाले थे। जिसके वह स्वयं बादशाह बन जाना चाहते थे। शायद अयूब साहब को अब्दुल गफ्फार के परिचित उपनाम—बादशाह खां से उस सफेद झूठ को गढ़ने की प्रेरणा मिली होगी। इस बार सरकार की नीयत उन्हें जेल से छोड़ने की नहीं थी। हर बार छह महीनों की अवधि समाप्त होने पर सज़ा का समय छह महीनों के लिए बढ़ाती रही।

अन्तर्राष्ट्रीय सक्षमा (एम्निस्टी इण्टरनेशनल) ने जो सभी देशों में बन्द दीर्घकालिक राजबंदियों को मुक्त कराने के लिए आंदोलन करती है अब्दुल गफ्फार खां को रिहा करने की मांग की और उन्हें 'वर्ष का बंदी

सुना।

अगले वर्ष, जुलाई में उनके गिरते हुए स्वास्थ्य को लेकर पाकिस्तान नेशनल असेम्बली में कार्य स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। असेम्बली के अध्यक्ष ने गृहमंत्री की चिकित्सा सम्बन्धी रिपोर्ट का उल्लेख करते हुए बताया कि अब उनका स्वास्थ्य सामान्य है। वह नियमित भोजन करते हैं उनके पाँव में तकलीफ पुरानी है जिसका इलाज विशेषज्ञों द्वारा करवाया जा रहा है। परन्तु पन्द्रह दिन पश्चात एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कुछ दिनों से वह गम्भीर रूप से बीमार चल रहे थे। उनके अनुरोध पर उनकी पसन्द के डॉक्टर के साथ उन्हें मुलतान भेज दिया गया है।' फिर दूसरी विज्ञप्ति में कहा गया उन्होंने डाक्टर की सेवा मना कर दी है और वह तीन दिन से भूख हड़ताल पर हैं। इन तीनों वक्तव्यों में कितना झूठ है, कितना सच पाठक स्वयं परख सकते हैं।

अन्ततोगत्वा, 30 जनवरी 1964 को उन्हें इस भय के कारण छोड़ दिया गया कि कहीं जेल में ही उनकी मृत्यु न हो जाए। सितम्बर में इलाज के लिए इंग्लैंड जाने की इजाजत दे दी गई। भारत में भी उन्हें इलाज के लिए आमंत्रित किया गया और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में रखा गया। तब, एक अपराह्न इन पंक्तियों के लेखक ने भी उनके दर्शन किए थे। वह महान शहीम शरीर जिसे 6 अप्रैल, 1945 की शाम को दिल्ली के गांधी मैदान में प्रवचन देते हुए देखा था एक व्हील चेयर पर सिकुड़ा हुआ रखा था। हजारों पख्तूनों का नेतृत्व करने वाला उनका सेनापति उस समय बहादुरी से जूझ रहा था—मृत्यु से। जूझते ही उसका सारा जीवन व्यतीत हुआ था—कभी विदेशी सरकार से तो कभी स्वदेशी सरकार से। मैंने वह अवसर खोने नहीं दिया। उन्हें नमस्कर प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद की मुद्रा में अपनी उंगलियां केवल उठा । (झूठी दिलासा देते हुए मैंने) उनसे कहा, आप बहुत जल्दी ही तन्दुरुस्त हो जाएंगे । वह मुस्कराए। मानो उन्होंने मेरा झूठ पकड़ लिया हो। फिर भी अपने दोनों पतले पतले हाथों को ऊपर उठाते हुए किंचित माथा झुका लिया। मानो वह कहना चाहते हों, 'अब तो ऊपर पहुंचकर ही तन्दुरुस्ती ठीक होगी '

उस समय उनसे अधिक मैं स्वय को असहाय अनुभव कर रहा था।

किन्तु वह वास्तव मे स्वस्थ होकर अपने देश वापस चले गए। फिर वह काग्रेस के शताब्दी समारोह मे भारत की जनता और सरकार के निमन्त्रण पर पधारे थे। बिना किसी सहारे के एक पोटली बगल म दबाये हुए वह दिल्ली हवाई अड्डे पर हवाई जहाज से मुसकराते हुए उतरे थे। बम्बई म आयोजित शताब्दी समारोह मे भी भाग लिया। महात्मा गाधी के कन्धे से कन्धा लगाकर स्वतन्त्रता सग्राम मे जूझने वाला मात्र सेनानी बैठा था मच पर, सीमात गाधी। फिर दिल्ली म उन्ह अन्तर्राष्ट्रीय मन भावना के लिए जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

एक वष पश्चात् उन्हें फिर भारत आना पडा। उनका स्वास्थ्य पुन बिगड गया था। उन्ह बम्बई के हॉस्पिटल मे भरती किया गया और अच्छे से अच्छा इलाज शुरू हो गया। इलाज प्रभावी प्रमाणित हुआ। भारतीय चिकित्सको ने गव एव सन्तोष की सास ली। उन्होने बादशाह खा को खतरे से बाहर कर लिया था। उन्हे दिल्ली ले जाया गया परन्तु दिल्ली जाते ही उनके चिराग की लौ पुन कापने लगी। तुरन्त उपचार आरम्भ हो गया परन्तु उनकी चेतना वापस नही लौटी। फिर भी, वह अन्दर से काफी ठीक थे।

14 अगस्त, 1987 को भारत ने उन्हें 'भारत रत्न' से अलङ्कृत करके उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। वह रोगग्रस्त हास्पिटल म पडे थे। उनकी ओर स उनके पुत्र वली खा ने अलकरण प्राप्त किया।

एक विशेष विमान द्वारा उन्हें पेशावर भेजा गया। उनके साथ उच्च स्तरीय डॉक्टरी दल और मन्त्रिमण्डल के कई वरिष्ठ मन्त्री पेशावर तक गए। पेशावर के लेडी रीडिंग हास्पिटल म उन्हे भरती कर दिया गया।

छ महीने की अचेतन अवस्था म अन्दर स स्वस्थ, जूझते हुए एक सिपाही की तरह 20 जनवरी 1988 को मृत्यु को गले लगा लिया। क्या वह पराजय थी ? हां वह पराजय थी उनके समक्ष खडी मृत्यु की जिसे

उनके लिए इतनी लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी।

अपनी अंतिम इच्छा के अनुसार उन्हें जलालाबाद में दफनाया गया। जलालाबाद जो हजारों वर्षों से अनेक संस्कृतियों का प्रमुख केन्द्र बना रहा। उसी जलालाबाद की मिट्टी में वह अमर सेनानी भी मिल गया जिसकी असंख्य सेवाओं से यह उपमहाद्वीप कभी भी ऋणमुक्त नहीं हो सकता।

मरूदूर गोपाळन रामचंद्रन
—1988

उन्हें लोग प्यार से एम० जी० आर० कहते थे। समस्त तमिळ प्रदेश उनके नाम का दीवाना था उन तीन अक्षरों (एम० जी० आर०) में अदभुत सम्मोहन शक्ति थी, अथाह आकर्षण था जिसके कारण वह अपने तमिळों के प्राण बने हुए थे और उनके मन मानस पर एकछत्र राज्य करते थे। एम० जी० आर० अपने देशवासियों के अभिन्न अंग हो गये थे। एक बार एक फ्रांसीसी पत्रकार उनसे भेंट करने और उनके सम्बन्ध में लिखने उनके मकान पर पहुंचा। उस समय वह किसी फिल्म शूटिंग के लिए बाहर गए हुए थे परन्तु पत्रकार के सत्कार का पूरा प्रबंध कर दिया था। अपनी गाड़ी भी उपलब्ध कर दी थी। पत्रकार महाबलीपुरम देखने गया। जब वह एक गांव में रुका तो सभी गांव वालों ने एम० जी० आर० की गाड़ी पहचान ली। बच्चे गाड़ी को घेरकर खड़े हो गये और ताली बजा बजाकर एम० जी० आर० के नाम का कीर्तन करने लगे, स्त्रियां अपना काम बिसार कर गाड़ी और गाड़ी में बैठे (एम० जी० आर० के) अतिथि को निहारने लगीं, और पुरुषों ने आगे बढ़कर अतिथि की अगवानी की और सत्कार किया। दुकानदारों ने पत्रकार से किसी भी खरीदी गई वस्तु की कीमत लेने से मना कर उंगलियां रखते हुए इनकार कर दिया। पत्रकार चकित रह गया यह सब देखकर। जब उनकी गाड़ी से ही जनता में इतना उत्साह उमड़ सकता तो फिर गाड़ी के मालिक की बात ही क्या है।

एम० जी० आर० ने अपने देशवासियों में भरपूर प्यार लुटाया था

क्योंकि उनके अनुसार वे ही उनकी सम्पत्ति व प्रीति के सच्चे हकदार हैं वह उनकी हर तरह से सहायता करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। उनके कट्टर आलोचक 'तुगलक' के सम्पादक, प्रसिद्ध व्यंगकार चो० रामास्वामी ने एक बार कहा था—'हाँ केवल एक व्यक्ति है, जिसके सम्मुख भात पकाने हेतु चावल खरीदने के लिए पैसे मांगने के लिए, अपने चरहे पर उबल हुए पानी को छोड़, जाकर हाथ पसार सकते हैं और वह व्यक्ति है एम०जी०आर०।" क्योंकि वह स्वयं भीषण अभावों की सकरी गलियों से गुजर चुके थे। उन्हें मालूम था कि गरीबी क्या होती है, भूख कैसी होती है अभाव कितने दारुण होते हैं।

उन्होंने बचपन से ही रोटी कमाना शुरू कर दिया था। पढ़ाई लिखाई भी इसी कारण ज्यादा नहीं कर सके। नाटकों में छोटा छोटा अभिनय करके अपने परिवार का पेट पालते थे। जब कुछ बड़े हुए तो फिल्मों में काम मिलने लगा। उन दिनों वह 'एलीफेंट गेट' (हाथी द्वार) पर रहते थे। उस दिन उन्हें काम मिलने की पूरी आशा थी। पास में, पैसे भी एक तरफ के ट्राम-भाड़े के लिए ही थे। वापसी में काम मिलने और उसकी अग्रिम राशि की प्रत्याशा में वह न्यूटोन स्टूडियो पहुंचे परन्तु वहां उन्हें न काम मिला न पैसा। उन्हें निराशा पैदल घर लौटना पड़ा था फिर भी उनकी मां ने उन्हें सदा ही आशावादी बने रहने और काम के लिए जयत रहने की शिक्षा दी थी। मां का प्रभाव उन पर बहुत पड़ा था। मां के साथ साथ वह अपनी बड़ी बहन का प्यार करते थे और उनका आदर करते थे। उनके निधन पर एम० जी० आर० को बहुत दुख हुआ था फिर भी अपनी मां की शिक्षा के अनुसार वह फिर कमर कसकर खड़े हो गये थे।

बहुत से अभिनेता जरा सी प्रसिद्धि और समृद्धि अर्जित कर लेने पर ही जमीन पर पांव रखकर चलना भूल जाते हैं परन्तु एम० जी० आर० सफल अभिनेता बन जाने के बाद भी अपने अतीत को भूले नहीं इसीलिए वह गरीबों से दूर नहीं भागे। और उन्होंने अपनी इस आदत अथवा छवि का भरपूर निभाया और उससे आनन्द भी उठाया। किसी की मदद करके उन्हें मानो आंतरिक सन्तोष और अलौकिक आनन्द मिलता था।

सिनेमा के पर्दे पर भी वह ऐसे ही बहादुर नायक की भूमिका करते जो

अन्याय के खिलाफ सैंकडो संघर्षों से जूझता था और दलितो व प्रताड़ितो को न्याय दिलाकर सुखी व सम्पन्न बनाता था। इस प्रकार एम० जी० आर० बुराइयों से भिड जाने वाले वीर नायक और गरीबो के एक मजबूत पक्ष धर की छवि लेकर जनता जनार्दन के मन मानस पर छाते चले गये।

पर्दे के बाहर भी वह दोनों हाथों से धन लुटाते जब कभी किसी फिल्म शूटिंग के लिए किसी गाव मे जाते तो उस क्षेत्र के प्राय सभी गरीब किसानो व मजदूरो के सामने एम० जी० आर० अपनी जेबें खाली कर देते, साथ ही यूनिट के सह कर्मियो की सहायता करने से पीछे नही हटते। एक बार एक लाइटमैन का पाव बिजली का करण्ट लीक हो जाने से जल गया। एम० जी० आर० उस सैट पर ही काम कर रहे थे। सूचना मिलते ही उन्होने निर्देशक से कहकर शूटिंग बन्द करवा दी और तुरन्त लाइटमैन को हास्पिटल पहुचाकर अपने खर्चे पर पूरे इलाज की व्यवस्था की। साथ ही यूनिट के सभी कर्मियो के लिए रबड के जूते मगवा दिये।

एम० जी० आर० का जन्म कैंडी (श्रीलका) मे 17 जनवरी, 1917 को एक मल्याली परिवार मे हुआ था। उनके पिता श्री गोपाळन मैनन कैंडी मे मजिस्ट्रेट थे। तब भारत व सिलोन (श्रीलका) एक ही ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रशासित होते थे। एम० जी० आर० अपने माता पिता की पाचवी सन्तान थे। जन्म के दो वर्ष पश्चात ही श्री गोपाळन का देहात हो गया और उनकी पत्नी श्रीमती सत्यभामा को अपने शोक-सतप्त एव अनाथ परिवार के साथ तजावूर चला जाना पडा था।

बालक मरूदूर (गोपाळन रामचन्द्रन) आरम्भ से ही सुन्दर और सुदर्शन था। अपनी सात वर्ष की आयु से ही मदुरै मे मदुरै ओरिजनल बॉए कम्पनी के नाटको मे काम करने लगा। सुन्दरता और सुडौल छरहरे शरीर के कारण उसे स्त्री पात्र आसानी से मिलने लगे जिन्हे वह बडी सहजता से निभा देता था। कुछ समय के पश्चात 1930 मे 'सती ळीळावती' मे पुरुष बनकर पुलिस की भूमिका मे रजतपट पर अवतरित हुए। वह उनका महत्व पूर्ण प्रवेश था परन्तु गरीबो व दलितो की सहायता करने वाले समाजसेवी की भूमिका उन्हें 1954 मे 'माळैक्ळ्ळन' नामक चोलपट मे मिली। उसके पश्चात् उसी प्रकार के कई चोलपट बने और उन सभी मे एम० जी० आर०

उसी प्रकार वे दलितो के हित के लिए जमीदारो अथवा प्रशासको से मुकाबला करते हुए दिखाए गये। फिल्म मे उनकी प्रत्येक गतिविधि पर प्रेक्षकों ने दिलो-जान से प्रशसा लुटाई। उनके सघर्षों मे उनके द्वारा सहन की जाने वाली तकलीफो के साथ सहानुभूति रखने वालों की आखें डबडबाई रहती। प्रेक्षको के हृदय चीत्कार कर उठते विशेषकर स्त्रिया दहाड मार कर रोने लग जाती। जब वह (फिल्मो मे ही) उन पर विजय प्राप्त करके रजतपट पर प्रकट होते तो सिनमागृह तालियो की गूज से फटने सा लगता। उनके परवर्ती चित्र—मम योगी, नाडाडि मन्नम और एग वीट्टू पिळ्ळै आदि में उन्होने अपनी इसी छवि को बनाए रखा और समस्त तमिळ-भाषी प्रेक्षकों के मन प्राण पर छा गये। युवक एम०जी०आर० को अपना आदर्श मानने लगे। पुरुषो के मन उनके प्रति प्रशसा और आदर से भर गए। युवतिया एम०जी०आर० के चित्रो को अपने पर्सों अथवा ब्लाउजो मे छुपा कर रखने लगीं। स्त्रिया उनकी भक्त हो गई और आरती उतारने लगी। सभी को विश्वास था, यदि कोई उन्हे गरीबी, शोषण और भ्रष्टाचार की त्रासदी से मुक्ति दिला सकता है तो वह मात्र एम०जी०आर०।

एम०जी०आर० नायक (हीरो) थे और वह सदा ही नायक बने रहे। उनका उद्दीप्त, गोरा रगरूप और निमल कचन सी काया सदा ही आकर्षण व सम्मोहन का केन्द्र बनी रही। फिर, इस रूप को बनाने और स्थिर रखने के लिए वह सदा जतनशील रहे। कुछ लोगो का तो यह भी कथन है कि तंग बसमम' (एक प्रकार की आयुर्वेदिक औषधि जिसके निर्माण मे स्वर्ण भस्म भी मिलाई जाती है) का सेवन किया करते थे। सेवन करते हो, या न करते हो परन्तु यह सत्य है वह हर काम नियम से करते थे। भोजन करने का समय निश्चित था तो वह सदा उसी समय पर भोजन करते थे, चाहे वह फिल्म की शूटिंग मे हो, चाहे वह मत्रिमण्डल की मीटिंग मे घर पर हो अथवा दौरे पर बाहर। भोजन उसी निश्चित समय पर करते थे। साथ ही अन्य लोगो को भी इसी बात की सलाह देते थे। थोडा व्यायाम और योग भी करते थे। सिगरेट और शराब से हमेशा परहेज करते रहे और अपनी उपस्थिति मे किसी दूसरे को भी पीने नही देते थे। पोस्टर पर उनका चित्र देखते ही लोग अपनी सिगरटें फेंक देते थे, पीने का प्रश्न तो उठता ही

भी काम किया था। 1962 म भारत चीन सघप के समय तत्कालीन प्रधान मत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा युद्ध के लिए आर्थिक सहयोग के लिए अपील क उत्तर म एम०जी०आर० न एक लाख रुपय भेंट किये थे, जिसमे स पहली किस्त के रूप म पच्चीस हजार रुपय उसी समय तत्कालीन मुख्य-मत्री कामराज को दिये थे। एक प्रेस सवाददाता की टिप्पणी कि वह भेंट एम०जी०आर० ने अपनी छवि और प्रचार के खातिर दी थी, कामराज न तुरत मुहतोड उत्तर दिया था कि उन्ह (एम०जी०आर० को) इस प्रकार के प्रचार की आवश्यकता नही है। उनकी इस भेंट को केवल पैसे की मे मत तोलिये, बल्कि इसके पीछे उनके सद्भाव, अन्तर्बोध और ध्यान दीजिये।

म जब एम०जी०आर० मुख्यमत्री थे तब एक भूतपूर्व व स्वर्गीय ी कक्कन की पत्नी उनसे भेंट करने उनके निवास स्थान पर निष्ठावान, स्वार्थहीन काग्रेस कार्यकर्ताओ तथा ाए एक पैसे का मुह नही देखा और जब मत्री उनके निधन के बाद उनका अनाथ परि- मकान मे डेढ सौ रुपय मासिक भाडे पर पास था, बेच बेचकर घर चलाती आ गई थी। मकान का किराया मकान खाली कर देने की धमकी ी के निवास स्थान—रामावरम ा प्रशसक एकत्रित थे। श्रीमती के उद्यान के एक कोने मे ी म निकले। सदा की भाति के लिए एम० जी० आर० र किया। तभी उनकी दृष्टि डी उन्होंने तुरन्त गाडी उन्होंने श्रीमती कक्कन के धैय का बाध टूट उन्ह बस ही सहारा

नही। उ ह उसमे घ्रुण स घणा थी। इसी प्रकार शराब के प्रति उनका अरुचि प्रसिद्ध थी। एक बार तमिळ फिल्म समाज के प्रसिद्ध हास्य अभिनेता एन० एस० कृष्णन दिन भर की थकावट उतारने के लिए अपने घर म ही मदिरा की बोतल लकर बैठ ही थे कि फोन आया कि एम०जी०आर उनस मिलने आ रहे है। कृष्णन ने तुरन्त बोतल अलमारी म बन्द कर दी। एम० जी० आर० के आकर चले जाने के बाद जब वह दोबारा बोतल गिलास लेकर बैठे तो फिर फोन खडक उठा। इस बार अमुक निर्देशक आ रहे थे। कृष्णन न फिर बोतल अलमारी म ब द कर दी। अपने सचिव क प्रश्न का उत्तर देत हुए कृष्णन ने कहा "एम०जी०आर० शराब के विरुद्ध भाषण देते और मैं शराब पी नही पाता लेकिन इन निर्देशक महोदय के आ जाने पर मैं शराब इसलिए नही पी पाऊगा कि वह कुछ छोड़ेंगे ही नही"

प्रसिद्ध अभिनेत्री क०आर० विजया तब नई-नई फिल्मो म आई थी और एम०जी०आर० क साथ एक फिल्म 'नळ्ळ नीरम' कर रही थी। एक सैट पर वह बार बार कॉफी पी रही थी। एम०जी०आर० न उसे बुलाया और इतना अधिक कॉफी पीन क लिए मना किया। कॉफी ज्यादा पीने की हानिया उसे समझाइ। और वास्तव म विजया न कॉफी कम कर दी—कम स-कम एम० जी० आर० की शूटिंग सट पर तो कम कर ही दी।

अपनी फिल्मी भूमिकाओ स एम०जी०आर० स्वय भी प्रभावित हुए। अभावो और उनस जूझते रहने म उन्होने अपना बचपन व्यतीत किया था। गरीबी का दश कितना घातक होता है उस उन्होने भली भाति भोगा था। इसीलिए वह समाज सेवा की ओर झुके। 1953 म उन्होन द्रविड मुनेत्र कषगम म प्रवेश लिया। उसके सस्थापक श्री सी० एन० अन्नादुरै ने एम० जी० आर० क रग रूप और लोकप्रियता का भरपूर उपयोग किया।

एम०जी०आर० भी अन्ना से बहुत प्रभावित हुए और उनके निर्देशन म उन्होने खूब जमकर काम किया। 1972 म एम०जी०आर० ने करुणानिधि स मतभेद होने के कारण एक अलग कषगम गठित किया और नाम दिया अन्ना द्रविड मुनेत्र कषगम जो कालातर म आल इण्डिया (अखिल भारतीय) अन्ना द्रविड मुनेत्र कषगम कहलाइ जाने लगी।

बस, इसस पूर्व एम० जी० आर० न काग्रेस म कामराज क नेतत्व तले

भी काम किया था। 1962 म भारत चीन सघष के समय तत्कालीन प्रधान मत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा युद्ध के लिए आर्थिक सहयोग के लिए अपील के उत्तर म एम०जी०आर० न एक लाख रुपय भेंट किय थे, जिसम से पहली किस्त के रूप मे पच्चीस हजार रुपय उसी समय त कालीन मुख्य मत्री कामराज को दे दिये थे। एक प्रैस सवाददाता की टिप्पणी कि वह भेंट एम०जी०आर० ने अपनी छवि और प्रचार के खातिर दी थी कामराज न तुरन्त मुहतोड उत्तर दिया था कि उन्हे (एम०जी०आर० को) इस प्रकार के प्रचार की आवश्यकता नही है। उनकी इस भेंट को केवल पसे की तराजू म मत तोलिये, बल्कि इसके पीछे उनके सद्भाव, अन्तर्बोध और निष्ठा को ध्यान दीजिये।

1979 म जब एम०जी०आर० मुख्यमत्री थे तब एक भूतपूव व स्वर्गीय काग्रेस मत्री श्री कक्कन की पत्नी उनस भेंट करने उनके निवास स्थान पर पहुची। श्री कक्कन उन कुछ निष्ठावान, स्वाथहीन काग्रेस कायकर्ताओ तथा मत्रियो मे स थे जिन्होने अपने लिए एक पैस का मुह नही दखा और जब मत्री थ तब ही उनका देहान्त हुआ था। उनके निधन के बाद उनका अनाथ परिवार तमिलनाडु हाउसिंग बोड के एक मकान म डेढ सौ रुपय मासिक भाडे पर रह रहा था श्रीमती कक्कन, जो उनके पास था, बेच बेचकर घर चलाती रही परन्तु अन्त मे भूखे सो जाने की नौबत आ गई थी। मकान का किराया भी वह नही द पा रही थी और बोड ने मकान खाली कर देने की धमकी दे दी थी। इसलिए श्रीमती कक्कन मुख्यमत्री के निवास स्थान—रामावरम पहुच गइ। वहां उनस पहले अनेक याचक तथा प्रशसक एकत्रित थे। श्रीमती कक्कन किचित निराश हुइ फिर भी रामावरम के उद्यान के एक कोने मे चुपचाप खडी हो गइ। कि तभी मुख्य मत्री गाडी मे निकले। सदा की भाति एकत्रित जन समूह का अभिवादन स्वीकार करने के लिए एम० जी० आर० ने हवा म हाथ लहराते हुए इधर उधर दृष्टिपात किया। तभी उनकी दृष्टि सकोच से दबी हुई सिकुडी हुई एक महिला पर पडी उन्होंने तुरन्त गाडी रुकवाई और सीधे उस महिला के पास गये। ज्योही उन्होने श्रीमती कक्कन की पीठ पर सम्वेदनापूवक अपना हाथ रखा महिला के धैय का बाध टूट गया। वह फूट फूटकर रोने लगी। एम०जी०आर० उन्हे वसे ही सहारा

देकर अपने घर म ले गय। आदरपूवक बिठाया और उनका वृतात सुना। एम० जी० आर० ने तुरत उ ह आश्वस्त किया कि हाउसिग बाड वाल मकान म जब तक वह चाह, बिना भाडा दिय रह सक्ती हैं। इसके अति रिक्त पाच सौ रुपय प्रतिमाह अनुग्रह राशि दन की व्यवस्था भी कर दी फिर अपनी ही गाडी म उ ह उनक घर भेजा। कुछ दिन पश्चात एक सावजनिक सभा म उनका अभिन दन किया गया और उ ह मकान दिय जाने और अनुग्रह राशि की सरकारी विज्ञप्ति की प्रतिलिपि उ ह चादी की एक मजूपा म रखकर भेंट की गई—आज कितन राजनीतिक नेता अथवा मत्री है जो अपने विपक्ष के किसी मतक सदस्य की असहाय पत्नी की इस प्रकार आदरपूवक सहायता करें? और, क्या उक्त घटना और दृश्य एम० जी० आर० के किसी फिल्म का कोई दश्य नही लगती?

इस प्रकार के टुकडे अनक है। शायद इसीलिए उनकी जनता ने उ ह असीम स्नेह दिया था। इदय खानि' (फल का हृदय) और इदय देय्वम (देवता का हृदय) कहना शुरू कर दिया था। एम० जी० आर० की प्रथम सफल फिल्म—'नाडाडि म नम' के सौ दिन हो जाने के बाद आयोजित एक समारोह म अन्नादुरै ने कहा था—' एम०जी०आर० एक फल की तरह है जो वृक्ष से पककर टूटने वाला है। मैं इसी प्रतीक्षा मे रहा हू कि कब यह टपके और मैं अपने हाथ फैला दू जैसी मैंने इच्छा की थी फल मेरी झोली मे ही आ गिरा है और मैंने उस फल को अपने हृदय म छुपा लिया है '

उ हे 'पोनमनचेमळ' (स्वण हृदय वाळा पुरुष) कैसे कहा जाने लगा, इसकी भी कथा उतनी ही दिलचस्प है, एक बार फिल्म निर्माता निर्देशक चि नप्पा देवर हरीकथा के एक माहिर कलाकार कृपान द वारियार को लेकर एम० जी० आर० के पास पहुचे। निर्माता चि नप्पा दवर की कुछ फिल्मो मे एम०जी०आर० न काम किया था और दोनो के सबध मधुर थे। चिन्नप्पा दवर ने कृपान द वारियार का परिचय दत हुए बताया कि कृपान द वारियार मरुधमलै मे भगवान मुरुगा का एक म दिर बनवान के लिए धन एकत्रित करत हुए एम० जी० आर० के सम्मुख उपस्थित हुए हैं

त्यागपत्र दिया था जबकि उनके 18 वर्षीय शासन काल में बीस अधिकारियों को सजा छाटनी पड़ी। इस अकेली दुर्घटना से सम्पूर्ण नौकरशाही की नैतिकता जमीन से जा मिली जो किसी भी प्रशासन के लिए एक बड़ी क्षति और लज्जा की बात है। एम०जी०आर० ने बिहार के (भूतपूर्व) मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्रा के बदनाम प्रेस विरोधी कानून से बहुत पहले अपने साम्राज्य में प्रेस के खिलाफ एक नियम लागू किया था जिसके अन्तर्गत सभी अधिकारियों द्वारा केवल सामान्य आंकड़ों के अतिरिक्त कुछ भी सूचना देने पर पाबन्दी लगा दी गई। उनके राज्य में लगाया गया गुण्डा एक्ट तो पूरे देश के कानूनों से निराला ही था उक्त एक्ट के अन्तर्गत पुलिस ने एक महीने में औसतन पचास व्यक्तियों को नजरबन्द किये रखा था।

प्रत्येक प्रत्याशी प्रशासक की भांति, एम० जी० आर० ने 1977 में भ्रष्टाचार जड़ से उखाड़ देने का वायदा लेकर मुख्यमंत्री का पद ग्रहण किया था परन्तु शीघ्र ही वह भ्रम काफूर हो गया। केरल से सशोधित स्प्रिट का गैर कानूनी दूसरी तरफ मोड़ा जाना, विदेशी जलपोतों की खरीद में हेरा फेरी का आरोप और देसी दारू के लाइसेंस के आवंटन में गड़बड़ी ने एम० जी० आर० की छवि को धूमिल ही किया।

फिर भी उनकी छवि उनके कुछ क्रांतिकारी एवं रचनात्मक कार्यक्रमों के कारण अक्षुण्ण बनी रही। राज्य के पचास लाख बच्चों का मध्याह्न का भोजन का प्रबन्ध किया। और गरीब बच्चों को जूते, कपड़े (यूनिफार्म) और दांतों का पाउडर उपलब्ध करवाया। केवल मध्याह्न भोजन के ही कारण राज्य को दो सौ करोड़ रुपयों का बोझ वहन करना पड़ा। तमिळनाडु औद्योगिक उत्पादन की तालिका में तेरहवें स्थान पर उतर गया जबकि एम०जी०आर० के पदासीन होने से पूर्व, राज्य दूसरे स्थान पर था।

एम०जी०आर० का सार्वजनिक जीवन कांग्रेस से ही आरम्भ हुआ था वह खद्दर पहनते थे चरखा चलाते थे और भगवद्गीता का पाठ करते थे। धर्म के प्रति उनकी आस्था तब और अधिक बढ़ गई थी जब उनकी बिल्कुल स्वस्थ बहन का अनायास निधन हो गया और फिर 18 वर्षों तक जूझने के पश्चात् उनकी प्रथम पत्नी उन्हें छोड़ स्वर्ग सिधार गई थी। बस वह नास्तिक द्रविड़ आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के बावजूद कर्नाटक स्थित

मूकाम्बिका मदिर म जाकर नियमित पूजा करने लगे थ। उन्ह पूर्ण विश्वास था कि कोई शक्ति अवश्य होती है, हम सबसे परे—दूर जो यह सब नियत्रित करती है। 1984 म जब वह गुर्दे फेल हो जाने म अमरीका क एक हस्पताल मे जीवन मरण का नाटक खेल रहे थ और जब उनकी वाणी न जवाब दे दिया था, उनकी पार्टी क कार्यकर्ताओ ने अपने नेता के स्वास्थ्य लाभ के लिए उसी मदिर मे पूजा की थी।

उनकी इच्छा शक्ति प्रबल थी। इसी कारण वह स्वय भाषण देत थ। इससे पूर्व भी जब उनके एक साथी अभिनेता एम०आर० राधा न ईर्ष्यावश उनकी गर्दन पर घातक आक्रमण किया था, तब भी वह अपनी फिल्म के कथोपकथन स्वय ही बोलते थ—डब नही करवाते थे। तब भी उन्ह अपनी छवि की चिता थी। सफेद फैज कैप, काला चश्मा, सफेद चुस्त और लम्बा कुर्ता, कलाई पर बडी घडी, जिसमे ससार के प्रमुख स्थानो का स्थानीय समय देखा जा सकता था। सफेद लुगी पावो मे चप्पल अथवा पम्प जूत और कधा पर सुशोभित रगीन कारचोबी कढा हुआ शाल, यही थी उनकी बाहरी छवि जो उनक लिए एक प्रकार स ट्रेडमार्क थी। यही ट्रेडमार्क उनक निधन क पश्चात उनक शव के साथ भी चिपका रहा।

गत तीन वर्षों से वह अपने गुर्दों क साथ एक पराजित लडाई लडते आ रहे थ परतु विडम्बना यह कि उनकी मृत्यु हृदय गति रुक जान से हुई। 22 दिसम्बर, 1987 को कत्थिपारा के चौरास्ते पर आयोजित सार्वजनिक सभा म भाग लेने के कारण वह थककर चूर चूर हो गय थे। उक्त समारोह म प्रधानमत्री ने प० जवाहरलाल नेहरू की प्रतिमा का अनावरण किया था। दूसर दिन साय पाच बजे एम०जी०आर० ने अपन हृदय रोग विशेषज्ञ डा० मुतुस्वामी को बुलाया और बताया कि वह बेचैनी महसूस कर रहे थे। डा० मुतुस्वामी के कान खडे हो गय। उ होने तुरत एम०जी० आर० का पिछले 38 वर्षों स इलाज कर रहे उनके निजी डॉ० बी० आर० सुब्रह्मणियम को सम्पर्क किया और वह तुरत पहुच गए। आते ही उन्होने एम०जी०आर० का रक्तचाप देखा, जो काफी गिर गया था। ई०सी०जी० स दिल की धडकन देखी जो बहुत अनियमित थी। लगभग सात बजे डाक्टर न हास्पिटल चलने की सलाह दी किन्तु सदा की तरह, अपनी आदत व जिद के अनुसार

एम० जी० आर० ने सलाह टाल दी। उनकी पत्नी श्रीमती जानकी भी हॉस्पिटल ले चलने के लिए राजी नहीं थी—अब जोर-जबरदस्ती तो की नहीं जा सकती थी। डॉक्टर सुब्रह्मणियम का आना बाद चार और हान वाली भारी क्षति का पूरा-पूरा आभास हो गया था। उन्हें खेद था कि वह अपनी बात मनवा नहीं सके थे।

रात के दस बजे उन्होंने एक प्याला शारबा लिया और बिस्तर पर जा लेटे। दो घंटे बाद वह फिर उठे, कुछ बेचैनी महसूस की, मूत्रालय गए और चार सौ सी० सी० पेशाब किया। फिर उन्होंने एक प्लेट चावल का दलिया खाया। पचास मिनट के बाद ई०सी० जी० से निलयी हृद् क्षिप्रता मालूम हुई जिसका मतलब था कि हृदय के दाहिने और बाएं दोनों निलय तीव्रता से धड़क रहे थे। उसके दस मिनट बाद उनका हृदय रुक गया। डॉ० कल्याण सिंह ने बताया कि हृदय गति रुक गई। यद्यपि उसके पुन चलाने और जीवित करने की कोशिश की गई कुछ और प्रयास किए जाते रहे परन्तु तीन बजे प्रात सब हारकर बैठ गए और उन्हें मृत घोषित कर दिया गया।

वैसे इस अंत का आभास पार्टी में प्राय सभी को था और सभी इस आघात के लिए तैयार थे मगर प्रतीक्षा में नहीं थे। परन्तु न जाने क्या एम० जी० आर० इसके लिए तैयार नहीं थे—इसीलिए उन्होंने 'उनके बाद कौन?' के खास प्रश्न का उत्तर नहीं खोजा था।

उनकी आंखें बन्द होते ही सारा प्रशासन ताश के महल की तरह ढह गया। सब कुछ अस्त-व्यस्त हो गया। एम०जी०आर० का पार्थिव शरीर उनके निवास स्थान से ले जाकर सार्वजनिक दर्शनों के लिए राजा जी हाल के बाहर सीढ़ियों पर रख दिया गया। सब ओर रुदन और क्रन्दन था स्त्रियां अपने केश नोच रही थीं, युवकों ने क्षुब्ध होकर हिंसा आरम्भ कर दी थी। पुरुषों को भी शोक कम नहीं था। पार्थिव शरीर के आस पास शोक संतप्त परिवार जनों प्रशंसकों तथा पार्टी व प्रशासन के प्रमुख लोगों के बीच एम०जी०आर० की पत्नी श्रीमती जानकी रामचन्द्रन और पार्टी की प्रचार सचिव तथा एम०जी० आर० के अनेक फिल्मों की नायिका कु० जयललिता भी उपस्थित थीं। परन्तु शव यात्रा आरम्भ होते ही जयललिता को जबर-

दस्ती वहां से हटा दिया गया।

दिल्ली से प्रधानमत्री तथा अन्य नेता तुरन्त मद्रास पहुचे। राष्ट्रपति वेंकट रमण वहा पहले स ही थे, वहा वह किसी समारोह म भाग लेने गए थ। वह केवल श्रद्धांजलि अर्पित करके दिल्ली वापस चले गय। राष्ट्रीय शोक मनाया गया।

और फिर उन्हें मरणोपरात भारत रत्न' स सम्मानित किया गया।

●●